विजय मिली विश्राम न समझो

आचार्य चतुरसेन

भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली-110032

भारत की स्वतन्त्रता का हरण

अत्यन्त प्राचीन काल से भारत मानव जाति की सभ्यता और उन्नति का स्रोत रहा है। ईसा की 18वीं शताब्दी तक विदेशियों के लिए भारत धनधान्य से पूरित सम्पन्न और सुसंस्कृत देश था उस समय योरोप में बड़ी-बड़ी व्यापारिक मण्डियां वेनिस (इटली) जेनेवा आदि समुद्रतटों पर स्थित थीं। वहीं से योरोप का माल भारत आता और भारत का वहां जाता था।

योरोपीय नाविक कोलम्बस ने सबसे पहले भारत पहुंचने के लिए समुद्री मार्ग खोजने का प्रयत्न किया, परन्तु वह अमेरिका को ही ढूंढ कर उसे भारत समझता रहा। परन्तु पुर्तगाल का रहने वाला वास्कोडिगामा अफ्रीका के नीचे से केप ऑफ गुडहोप नामक अन्तद्वीप का चक्कर लगाता हुआ 22 मई 1498 ई० को मालाबार तट पर कालीकट के निकट आकर ठहरा। कालीकट का राजा जोमारिन था। इस राजा ने वास्कोडिगामा का स्वागत किया और अपने राज्य में व्यापार करने की आज्ञा दी। पुर्तगालियों ने कालीकट में कोठी बनाई, तीन वर्ष बाद उस कोठी की किलाबन्दी कर ली और अल्बुकर्क नामक सेनानी को रक्षक नियत किया। अल्बुकर्क ने किनारे-किनारे उत्तर की ओर बढ़ कर ई० 1506 में गोआ प्रदेश पर कब्जा कर लिया। 1510 में पुर्तगालियों ने कालीकट के राजा से झगड़ा करके उसकी कोठी में आग लगा दी और नगर को लूट लिया, इससे पुर्तगालियों की जड़ भारत में जम गई।

शासन की दृष्टि से उस समय भारत में अनेक छोटे-बड़े राज्य थे, जो एक दूसरे के साथ बहुत कम सम्बन्ध रखते थे। पुर्तगालियों ने सवा सौ वर्षों तक भारतीय व्यापार से इतना रुपया कमाया, जिसे देखकर अन्य योरोपीय व्यापारी दंग रह गये। पुर्तगालों के अधिकार में मंगलौर, कोचीन, लंका, द्वीप, गोआ बम्बई के टापू तथा नेगापट्टन पूरी तरह आ गये। पुर्तगाली कट्टर ईसाई थे, जहां-जहां इनका कब्जा हो गया, वहां के लोगों को जबरन ईसाई बना लिया। आगे चलकर इन्होंने अपना व्यापार बंगाल में भी फैलाया। परन्तु इस समय तक मुगल साम्राज्य की जड़ें पक्की हो चुकी थी। शाहजहां दिल्ली के तख्त पर था। मुगलों ने पुर्तगालियों को कत्ल कर उन्हें भारत से बाहर खदेड़ दिया।

पुर्तगालियों के बाद भारत में डच आए। मुगल बादशाहों ने इन्हें व्यापार करने और कोठियां बनाने की इजाजत दे दी। सबसे पहले पुलीकट और मद्रास के उत्तर तथा दक्षिण मे उन्होंने कोठियां बनाईं। ई० 1663 तक आगरे में भी एक कोठी बन गई। सूरत अहमदाबाद तथा बंगाल के चिनसुरा में भी कोठियां बना लीं।

16वीं शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेज भी भारत मे आने लगे। इन्होंने डचों से संघर्ष करके उन्हें भगाकर अपने पैर जमाए। सन् 1600 में इंग्लैंड की रानी एलिजाबेथ ने ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना की जिसने भारत में अपना व्यापार फैलाया। इस समय दिल्ली के तख्त पर जहांगीर राज्य कर रहा था। जहांगीर ने अंग्रेजों को व्यापार करने और अपनी सुरक्षा के लिए किलेबन्दी करने की छूट दे दी। उन्होंने मद्रास और विशेषकर बंगाल में अपनी बड़ी-बड़ी कोठियां बना लीं और व्यापार के साथ-साथ भारत पर शासन करने का जाल भी फैलाते रहे। अन्ततः इसमें वे सफल हुए। उनके शासन की जड़ें जमती देख बंगाल वासियों ने विरोध किया और गुप्त आन्दोलन किए जिसमें 'संन्यासी विद्रोह' प्रसिद्ध है। इसी विद्रोह ने बन्देमातरम् को जन्म दिया।

—चतुरसेन

विजय मिली विश्राम न समझो

स्वतन्त्रता संग्राम साहित्य खण्ड-1

वन्दे मातरम्

सुजलां सुफलां मलयज शीतलां
शस्य श्यामलां मातरम्।
शुभ-ज्योत्स्ना-पुलकित-यामिनीम्
फुल्ल कुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्
सुहासिनी सुमधुरभाषिणीम्
सुखदां वरदां मातरम्॥
कोटि-कोटि कंठ कलकल निनाद कराले
कोटि-कोटि भुजैधृत खर करवाले
के बोले मा तुम अबले
बहुबलधारिणीं नमामि त्वां
रिपुदलधारणीं मातरम्॥
तुमि विद्या तुमि धर्म
तुमि हृदि तुमि मर्म
त्वं हि प्राणा: शरीरे।
बाहुते तुमि मा शक्ति
हृदये तुमि मा भक्ति
तोमारई प्रतिमा गड़ि
मंदिरे - मंदिरे।
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरण-धारिणी
कमला कमलदल विहारिणी
वाणी विद्यादायिनी
नमामि त्वां।
नमामि कमलां अमलां अतुलां
सुजलां सुफलां मातरम्॥
वन्दे मातरम्॥
श्यामलां सरलां सुस्मितां भुषितां
धरणीं भरणीं मातरम्॥
वन्दे मातरम्...

वन्देमातरम्

राष्ट्रीय-गीत

1872 में बंगला के प्रख्यात उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने एक क्रांतिकारी उपन्यास लिखा—'आनन्दमठ'। इस उपन्यास में उन्होंने एक गीत लिखा जो 'वन्देमातरम्' नाम से विख्यात हुआ। भारत को ब्रिटिश सरकार से स्वतन्त्र कराने लिए आतंकवादी दल के युवकों को आनन्दमठ और वन्देमातरम् से भारी प्रेरणा मिली। राष्ट्रीय चेतना के लिए वन्देमातरम् गीत देशभक्त जनता में लोकप्रिय हो गया। इसे बच्चे, युवा, बूढ़े गा-गाकर भारतमाता की वन्दना करने लगे।

कांग्रेस के अधिवेशनों की कार्यवाही का आरम्भ वन्देमातरम् को उच्च स्वर एवं लय के साथ गाकर किया जाता था। आतंकवाद दल का तो वह स्वाध्याय-गीत था।

क्रांतिकारी जब फांसी पर चढ़ने जाते थे तब वन्देमातरम् गाते हुए मस्त भाव से जाते थे और फांसी के फंदे को चूमकर जयघोष करते थे—'वन्दमातरम्'। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सभी धर्मों के क्रांतिकारी इसे अपना प्रेरणा गीत मानते थे। सरदार भगतसिंह ने वन्देमातरम् की गूंज से जेल की दीवारें हिलायी थीं।

1937 में जब अनेक प्रान्तों में कांग्रेसी सरकारें बनीं, तब स्कूलों में प्रारम्भिक गान वन्देमातरम् गाने का आदेश दिया गया। स्कूलों, राष्ट्रीय पर्वों पर गीत के आरम्भ की छः पंक्तियां ही गाने का नियम है। वन्देमातरम् गान ने स्वाधीनता आन्दोलन में भारी भूमिका निभाई थी, अतः संविधान के निर्माण के समय इसे सम्मानीय स्थान दिया गया।

1961 में बालकों में नैतिकता एवं राष्ट्र भक्ति के संस्कार पैदा करने पर विचार के लिए डॉ० सम्पूर्णानन्द की अध्यक्षता में एक कमेटी बनाई, उस समिति ने सुझाव दिया कि विद्यार्थियों को राष्ट्रगीत वन्देमातरम् भी याद होना चाहिए।

राष्ट्रीय भावना

एक बार अमेरिका के न्यूयार्क नगर में एक अन्तर्राष्ट्रीय सभा हुई। अनेक देशों के प्रतिनिधि उसमें सम्मिलित हुए। सब अपने साथ अपने-अपने देश का झंडा लाए थे। उस समय भारत अंग्रेजों के अधीन था और यहां अंग्रेजों का सरकारी झंडा यूनियन जैक था। उस अन्तर्राष्ट्रीय सभा की कार्यवाही आरम्भ होने पर एक-एक देश का प्रतिनिधि उठता और अपने देश का झंडा लेकर अपने देश का कौमी गीत गाता। भारत की बारी आने पर कोई नहीं उठा, कुछ देर रंगमंच खाली रहा, परन्तु फिर तुरन्त ही एक भारतीय युवक ने रंगमंच पर आकर वन्देमातरम् का जयघोष किया और फिर अपने स्थान पर नीचा मुंह करके लौट पड़ा, क्योंकि भारत का कोई अपना कौमी झंडा न होने के कारण वह दुख और अपमान अनुभव कर रहा था। अगले दिन उस युवक ने शिकागो मैगजीन' में 'हम अभागे गुलाम' शीर्षक लेख लिखकर अपनी इस अनुताप ज्वाला को प्रकट किया था।

भारत में भी यह अपमानजनक समाचार पहुंचा और भारतवासियों के हृदय में कौमी झंडा निर्माण करने की अभिलाषा जाग्रत हुई। यह समय बीसवीं सदी का आरम्भ था। लोगों में राष्ट्रीय भावना तो थी, परन्तु अंग्रेजी राज्य में राष्ट्रीय कार्य करना अपराध था। उन दिनों एनीबीसेंट ने एक उदार भावना लेकर 'होमरूल' आन्दोलन आरंभ किया था, तब उन्हें भी भारतीय कौमी झंडे की आवश्यकता प्रतीत हुई। उन्होंने हिन्दुओं का प्रतीक लाल रंग और मुसलमानों का प्रतीक हरा रंग की दो पट्टियां जोड़कर पहला भारतीय ध्वज बनाया और पहले स्वयं अपने निवास स्थान पर लगाया। उनके अन्य सहयोगी मि० अरंडेल और मि० वाडिया ने भी अपने-अपने आवासों पर वह झंडा लगाया। इन नेताओं के आवासों पर यह झंडा फहराते देख अन्य लोग भी आकर्षित हुए और अपने-अपने

मकानों पर वैसा झंडा बनाकर लगाने लगे। अब तो जनता में स्वदेश भावना उठने लगी।

परन्तु अंग्रेज सरकार भारत का वह कौमी झंडा देखकर चौकन्नी हो गई। वह जानती थी कि किसी देश का कौमी झंडा उस देश के स्वतन्त्रता की प्रारम्भिक बुनियाद होती है। जनता उस पर मर मिटती है। अंग्रेज सरकार ने लोगों के घरों पर फहराते झंडों को उतारकर नष्ट कर दिया और एनीबीसेन्ट अरंडेल तथा वाडिया को पकड़कर उटकमण्ड में प्रथक्-प्रथक् मकानों में नजर बन्द कर दिया। परन्तु इन तीनों ने वहां भी अपने-अपने आवासों पर अपना झंडा लगा लिया। कुछ दिन बाद उन्हें नजरबन्दी से मुक्त कर दिया गया, परन्तु अंग्रेजी सरकार की सख्ती और जेल के भय से यह कौमी झंडा शीघ्र ही लुप्त हो गया।
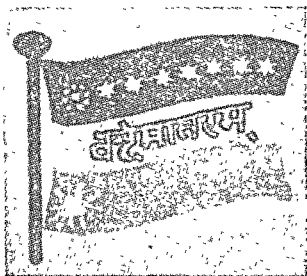
भारत एक निष्ठावान और सांस्कृतिक देश है। यहां के निवासी अपने देश और अपनी संस्कृति को प्यार करते हैं। 1857 के विद्रोह के बाद भारत में ब्रिटिश राज्य स्थापित हो जाने के 25 वर्ष बाद ही लोगों के मन में फिर अपने स्वदेश के प्रति स्वतन्त्र भावनाएं उठने लगी थी, जो लोग विदेशों में गए वे वहीं रहकर भारत को अंग्रेजी शासन से मुक्त करने के प्रयत्न करते रहे। इन्हीं में एक वीर महिला थीं श्रीमती भिखाईजी कामा।

भिखाईजी कामा को अपने स्वदेश को स्वतंत्र करने की भावना रखने के कारण 35 वर्षों तक देश से निर्वासित होकर फ्रांस तथा जर्मनी में जीवन व्यतीत करना पड़ा। अगस्त 1908 में जर्मनी के स्टटगार्ट में एक सोशलिस्ट कांफ्रेन्स में श्रीमती कामा को निमन्त्रित किया गया। सरदार राणा सिंह के साथ वे वहां गईं और उन्होंने अपने स्वदेश के प्रति इतना हृदयद्रावक भाषण दिया कि श्रोताओं ने बार-बार ताली बजाकर अपना अपार हर्ष

प्रकट किया। अपने भाषण के बाद उन्होंने अपने थैले में से एक ध्वज निकाला और कहा कि यह मेरे स्वदेश भारत की स्वतंत्रता का कौमी झंडा है। यह भारत के देशभक्त युवकों के बलिदानों के रक्त से उत्पन्न हुआ है। इसे मैंने बनाया है और इस झंडे को यहां प्रथम वार फहरा कर मैं घोषणा करती हूं कि यह तिरंगा झंडा भारत की स्वतन्त्रता का प्रतीक है।
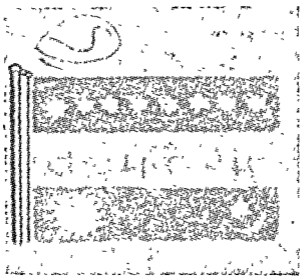
यह कहकर उन्होंने तुमुल करतल ध्वनि और भीड़ के अपार हर्ष के बीच में भारत के उस कौमी तिरंगे झंडे को वहां पहली वार फहराया। इस झंडे में तीन रंग थे—हरा, केसरिया और लाल। हरे रंग की पट्टी में गुलाबी रंग में खिलते 8 कमल के फूल बने थे। केसरी पट्टी पर वन्देमातरम् लिखा था। लाल पट्टी में एक ओर सफेद रंग में कोने में चमकता सूर्य, दूसरी ओर आधा चांद था। इस झंडे में केसरिया, पीली और हरे रंग की तीन पट्टियां जुड़ी हुई थीं। ऊपर की केसरिया पट्टी में 8 सितारे बने थे, बीच की पीली पट्टी में वन्देमातरम् लिखा था और नीचे की हरी पट्टी में चांद और सूरज बने थे। केसरिया रंग हिन्दुओं का, हरा रंग मुसलमानों का और पीला रंग पवित्रता का प्रतीक था।

स्टुटगार्ट के बाद वे जब भी कहीं भाषण देतीं, पहले अपना झंडा फहरातीं और उसके नीचे खड़े होकर अपना भाषण इन शब्दों से आरम्भ करती—

"आप सब श्रोताओं द्वारा खड़े होकर इसको सैल्यूट देने का मैं आवाहन करती हूं।"

सब प्रतिनिधि खड़े हो जाते और भारतीय झंडे को सैल्यूट दिया जाता।

स्टुटगार्ट में अप्रत्याशित इस तिरंगे राष्ट्रीय ध्वज के निर्माण तथा फहराने के समाचारों ने इंग्लैंड और भारत में सनसनी फैला दी। भारतवासियों ने गर्व अनुभव किया, जबकि अंग्रेजों ने इसे विद्रोह की चिनगारी समझा।

इसके बाद प्रथम विश्व-युद्ध समाप्त हो गया।

भारत की पहली वीर नारी कामा

भिखाई जी कामा का जन्म एक मध्यमवर्गी व्यापारी पारसी परिवार में सन् 1861 में हुआ। बालपन से ही उनके हृदय में अपने देश भारत के प्रति निष्ठा-भावना पनपने लगी थी। अपने छात्र-जीवन में ही वे स्कूल की लड़कियों के साथ बैठकर उनमें भारत में अंग्रेजी राज्य के विपरीत बीज बोने लगीं। उस समय स्त्री-स्वातन्त्र्य और राजनीति की भावना रखना बहुत साहस का कार्य था। परन्तु भिखाई जी कामा अद्भुत साहस और क्षमता वाली नारी थीं, वे अपने ध्येय में बढ़ती गईं और शिक्षा समाप्त कर स्त्रियों में भारत की स्वतन्त्रता की भावना फैलाने लगीं।

उनके माता-पिता ने उन्हें यद्यपि 'अलेक्जेंड्रा गर्ल स्कूल' जैसे उच्च-वर्गीय अंग्रेजी स्कूल में भर्ती किया था, परन्तु उन्हें अंग्रेजी-संस्कृति की कोई बात पसन्द नहीं थी। वे विशुद्ध भारतीय संस्कृति को पसन्द करती थीं और अंग्रेजी से घृणा। कांग्रेस का जब प्रथम अधिवेशन बम्बई में हुआ तो वे उसमें सम्मिलित हुईं और सामाजिक कार्यों में जुट गईं। दादा भाई नौरोजी की शिक्षा का उन पर भारी प्रभाव पड़ा। वे अपना सर्वस्व स्वदेश पर निछावर करने के लिए आकुल हो उठीं। उनके मन में पनपती राष्ट्रीय-भावना को देखकर उनके माता-पिता उन्हें विवाह-बन्धन में बांधने की तैयारी करने लगे, और 'कामा ओरियंटल इन्स्टीट्यूट' के संस्थापक के० आर० कामा के पुत्र रुस्तम कामा से विवाह कर दिया, जो एक सफल सॉलिसिटर थे।

विवाह के बाद भी उनके सामाजिक और राजनैतिक विचारों में कोई कमी नहीं हुई। उनके पति और भी उदार थे, अपनी पत्नी की स्वदेश-भावना को पसन्द करते थे। अधिक परिश्रम करने और पूर्ण विश्राम न मिलने के कारण उनका स्वास्थ्य खराब रहने लगा। परन्तु इसकी चिन्ता न करके वे अदम्य उत्साह से स्वदेश कार्यों में जुटी रहीं। जनता उन्हें 'क्रान्ति की जननी' कहने लगी।

उनकी वाणी में ओज और स्वदेश प्रेम भरा हुआ था। वे जनता के समक्ष जब भाषण करती थीं तो लोगों के हृदय उत्साह से भर जाते थे। अपने भाषणों में वे स्त्रियों को पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपाय करने, निर्धनता दूर करने, जीवन-स्तर को ऊंचा उठाकर शिक्षा को विकसित करने की आवश्यकताओं पर बल देती थीं। उन्होंने कहा—अंग्रेजों की दासता मत करो—उनके अन्याय को मत सहो, पराधीनता की बेड़ियां तोड़ डालो। उनका नारा था—अत्याचार का सामना करना ईश्वर की आज्ञा मानना है। उन्होंने लोगों के हृदय में स्वतन्त्रता की ज्वाला जलाई। उन्होंने महात्मा गांधी से भी पहले स्वतन्त्रता के बीज बोए थे।

परन्तु उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ चुका था, चिकित्सकों ने एक आपरेशन कराने के लिए उन्हें लन्दन जाने की सलाह दी। दादाभाई नौरोजी ने कहा कि विदेशों में भी भारत की स्वतंत्रता के बीज बोने हैं, तुम वहां अवश्य जाओ। विवश उन्हें 1902 में लंदन जाना पड़ा। आपरेशन के बाद जिन दिनों वे स्वास्थ्य लाभ कर रही थीं, उनकी भेंट

भारत के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्यामजी कृष्ण वर्मा, सरदारसिंह राणा और सावरकर से हुई। इस भेंट से उनकी स्वदेश-भावना और भी विकसित हो उठी। वे लन्दन के 'हाइड-पार्क' में भाषण देने लगीं। अंग्रेजों के ही देश में अंग्रेजों द्वारा भारत में किए गए जुल्मों की कहानी दिन-दहाड़े सुनाई जाने लगीं। भारतीय नारी की ओजस्वी वाणी सुनकर अंग्रेज-जनता स्तब्ध रह गई। वे अमरीका भी गईं। वहां वल्डॉर्फ एस्ट्रोरिया होटल में भाषण देते हुए उन्होंने कहा—मेरे देश के श्रेष्ठ-जनों को अपराधियों की भांति देशनिकाले अथवा जेलों की सजा दी जाती है। वहां उन्हें कोड़ों से यातनापूर्वक इतना पीटा जाता है कि उन्हें अस्पताल भेजना पड़ता है। हम शान्ति प्रेमी है, हम रक्त-भरी क्रान्ति करना नही चाहते। परन्तु अपने देशवासियों को अपने अधिकार और पराधीनता की बेड़ियों को उतार फेंकने की शिक्षा देना चाहते हैं।

लन्दन वापिस लौटकर 1908 को नवम्बर में उन्होंने एक अन्तिम भाषण दिया—"तीन वर्ष पूर्व हिंसक आन्दोलन की बातें कहना मुझे रुचिकर न था, परन्तु लिबरल्स की निर्दय, थोथी और धूर्तता भरी बातों से मेरी वह भावना नष्ट हो गई है। हम हिंसा का पथ क्यों न चुनें जबकि हमारे शत्रु हमें उस मार्ग की ओर धक्का देते हैं। यदि हम शक्ति प्रयोग करते हैं तो इसलिए कि हमें शक्ति बरतने को बाध्य किया जाता है। जबकि रूसी सोफी परवोस्की और कामरेड ऐसे ही कार्य के लिए ऐसा ही मार्ग अपनाने पर भी बहादुर हैं। यदि रूसी हिंसा की प्रशंसा की जाती है तो भारतीय हिंसा की प्रशंसा क्यों नही की जाती? निरंकुश शासन निरंकुश है, उत्पीड़न उत्पीड़न है, चाहे वह कही भी किया जाए। सफलता उस कार्य का न्याय पक्ष लेती है। विदेशी शासन के विपरीत सफल विद्रोह देश-भक्ति है। मित्रो, हमें सारी हीनता, सन्देश और भय निकाल देने चाहिए। अंग्रेजों की दृष्टि में उनके इस कार्य से अंग्रेज अधिकारियों ने उन्हें इंग्लैंड छोड़ने का आदेश दिया। परन्तु भिखाई जी कामा भयभीत होनेवाली महिला न थीं। एक रात वे चुपके से इंगलिश चैनल पार कर फ्रांस पहुंच गईं, जहां श्यामजी वर्मा, सरदारसिंह राणा तथा अन्य भारतीय क्रान्तिकारी पहले ही आ गए थे।

अब पेरिस उनका निवास केन्द्र बन गया। भारत के अनेक प्रवासी क्रान्तिकारी उनके पास आने लगे, उनका घर क्रान्ति की कार्यगतियों का केन्द्र बन गया। क्रान्ति विचारों के पर्चे हाथ से लिखकर वितरित किए जाने लगे। फ्रांस और रूस के भारत हितैषी क्रांतिकारियों ने उनकी मदद की। भिखाई जी कामा के ओजस्वी भाषण अंग्रेजों के अत्याचारों का बखान करने लगे।

अंग्रेज सरकार इससे चिंतित हो उठी और उसने फ्रांस सरकार से भिखाई जी कामा को इंग्लैंड भेजने की प्रार्थना की, परन्तु फ्रांस सरकार ने इसे स्वीकार नहीं किया। तब अंग्रेज सरकार ने उनके भारत प्रवेश पर रोक लगा दी। उसने उनकी भारत में सम्पत्ति भी जब्त कर ली।

श्रीमती कामा ने पेरिस से 'वन्देमातरम्' पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। जब भारत में 1910 का प्रेस एक्ट लगा तो 'वन्देमातरम्' ने इसे सरकार की पराजय और भारतीय क्रान्ति की विजय की संज्ञा दी। कामा ने पत्र लिखा—ठीक निशाने पर शूट

करना सीखें क्योंकि वह दिन समीप है जब तुमसे स्वदेश की स्वतन्त्रता के निमित्त अंग्रेजों को शूट करने के लिए कहा जाएगा। बाद में यह पत्रिका पेरिस के बजाय जेनेवा से प्रकाशित होने लगी। फ्रांस से अखबारों में कामा के अनेक लेख छपते थे, जिससे उनके क्रान्तिकारी विचार दूर-दूर तक पहुंचने लगे। लाला हरदयाल, वीर सावरकर, चट्टोपाध्याय आदि भारतीय नेता उनकी सहायता करते थे।

फ्रांस की भूमि में निर्वासन के लम्बे 35 वर्ष बिताते हुए इस दुबली-पतली भारतीय नारी ने भारत की स्वतन्त्रता का अलख विदेशों में जगाया। अब वे सत्तर वर्ष की हो गई थी। स्वास्थ्य तो बिगड़ा ही रहता था। अपनी मृत्यु समीप जान उन्होंने भारत जाना चाहा। सर कावस जी जहांगीर ने अंग्रेज सरकार से उन्हें भारत लौटने की आज्ञा प्रदान करने को कहा। बहुत प्रयत्न करने पर उन्हें भारत लौटने की आज्ञा 'अच्छा व्यवहार रखने का वचन देने पर' मिली। जब वे अपनी यात्रा पूरी कर जहाज से बम्बई बन्दरगाह पर पहुंचीं, उस समय वे बहुत कृश और रुग्ण थीं। उन्हें स्ट्रेचर पर लिटाकर उतारा गया और सीधे 'पेटिट अस्पताल' ले जाया गया। वहीं कुछ महीनों बाद 75 वर्ष की आयु में 13 अगस्त 1936 को उनका स्वर्गवास हुआ।

उनके अन्तिम शब्द थे—हिन्दुस्तान स्वतन्त्र हो। हिन्दुस्तान में गणतन्त्र की स्थापना अवश्य हो। हिन्दुतानी एक हों। हिन्दुस्तान की अपनी एक सर्वमान्य भाषा हो।

उनकी समाधि पर यह अंकित किया गया—"जो अपनी स्वतन्त्रता खोता है, वह अपना चरित्र भी खो देता।"

झण्डे का गौरव

झण्डा नेतृत्व, शासन, संघ-शक्ति, गौरव, सम्मान और स्वतन्त्रता का प्रतीक है। किसी देश के झण्डे का हरण, उसका अपमान होना, झुकना, नष्ट किया जाना उस देश का मान-मर्दन होता है। वीर योद्धा भयानक युद्ध लड़कर भी अपने स्वदेश के झण्डे को नहीं झुकने देते। झण्डे की रक्षा करते-करते बलिदान तक हो जाते हैं।

1857 की जन-क्रान्ति के समय निम्न रचना 'पयामे आंजादी' स्वाधीनता-सन्देश नामक पत्र में प्रकाशित हुई थी, जो आज भी ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित है।

यह है आजादी का झण्डा

हम हैं इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा,
पाक वतन है कौम का, जन्नत से भी प्यारा।
यह है हमारी मिल्कीयत, हिन्दुस्तान हमारा,
इसकी रूहानियत से, रोशन है जग सारा।
कितना कदीम, कितना नईम, सब दुनिया से न्यारा,
करती है जरखेज जिसे गंगो-जमन की धारा।
ऊपर बर्फीला पर्वत पहरेदार हमारा,
नीचे साहिल पर बजता सागर का नक्कारा।
इसकी खानें उगल रही है, सोना, हीरा, पारा,
इसकी शानो-शौकत की दुनिया में जयकारा।
आया फिरंगी दूर से ऐसा मन्तर मारा,
लूटा दोनों हाथ से, प्यारा वतन हमारा।
आज शहीदों ने है तुमको, अहले-वतन ललकारा,
तोड़ो गुलामी की जंजीरें, बरसाओ अंगारा।
हिन्दू-मुसलमानों, सिक्ख हमारा भाई-भाई प्यारा,
यह है आजादी का झण्डा, इसे सलाम हमारा।

झण्डा

झण्डा, पताका, ध्वज, वैजयन्ती एक ही अर्थ के शब्द हैं। प्राचीनकाल से सभी देशों के अपने-अपने झण्डे रहे हैं। झण्डों के अनेक प्रकार हैं—

(1) राष्ट्र ध्वज—यह झण्डा देश के गौरव का प्रतीक है। अपने देश का झण्डा जहां फहराना हो, वहां इसे फहराना होता है। आजकल सारी दुनिया परस्पर में मिल-सी गई हैं। सब देशों की एक समान समस्याएं होती हैं। उन पर विचार करने के लिए किसी भी देश में अन्य सभी देशों के प्रतिनिधि एकत्र होकर विचार विनिमय करते हैं, मीटिंग होती हैं। ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में एकत्रित प्रतिनिधियों के देशों के अपने-अपने झण्डे सामूहिक रूप से फहराए जाते हैं। यह अन्तर्राष्ट्रीय मातृभाव, सहयोग, मान्यता और सम्मान की भावना से होता है।

(2) युद्ध ध्वज—प्रत्येक देश की सेना के पृथक झण्डे होते हैं ।

(3) धर्म ध्वज—धार्मिक संस्थानों, मन्दिरों, मठों और देवस्थानों के झण्डे भिन्न-भिन्न रंग और अंकित चिन्हों के होते हैं ।

(4) राष्ट्रपति ध्वज—देश के सर्वोच्च शासक के आवास भवन पर फहराने वाला झण्डा भी पृथक होता है ।

(5) संघ-ध्वज—संघों, सभा-सोसाइटियों और राजनैतिक दलों के अपने-अपने झण्डे होते हैं ।

सन् 1921 के कांग्रेस में भीखाजी कामा द्वारा अपनाए गए राष्ट्रीय झंडे में सुधार करके इसे 'तिरंगा राष्ट्रीय ध्वज' घोषित किया गया । इसमें ऊपर केसरिया रंग, बीच में सफेद रंग, नीचे हरा रंग । पहले के सब चिन्ह हटाकर बीच में केवल 'चरखा' अंकित किया गया ।

1947 में भारतीय संविधान परिषद में सरकारी राष्ट्र ध्वज के निर्माण पर विचार किया गया । कांग्रेस की महिला समिति ने तिरंगे झंडे में चरखे के स्थान पर अशोक चक्र अंकित कर उसे राष्ट्र ध्वज के रूप मे कांग्रेसी संविधान परिषद को भेंट किया जिसे उसने स्वीकार कर लिया ।

इस प्रकार अब अशोक चक्र वाला तिरंगा झंडा राष्ट्र ध्वज माना गया, और चरखे वाला तिरंगा झंडा कांग्रेस पार्टी का झंडा माना गया ।

हमारे राष्ट्रीय ध्वज के तीन रंग है, परन्तु एशिया, अफ्रीका, योरोप, और दक्षिणी अमेरिका के लगभग 20 देशों के राष्ट्र ध्वज भी तीन रंगों में ही हैं परन्तु उनके रंगों का चयन भिन्न है ।

भारतीय ध्वज-कोड के अनुसार राष्ट्र-ध्वज केवल सरकारी भवनों पर, अथवा सरकारी समारोह और सरकारी स्वागत-सत्कार के अवसरों पर सरकार द्वारा फहराये जाने का नियम है, जन-साधारण उसे नही फहरा सकते । परन्तु निम्न राष्ट्रीय अवसरों पर उसे जनसाधारण द्वारा भी फहराए जाने की अनुमति दी गई है—

(1) गणतन्त्र दिवस (26 जनवरी)

(2) राष्ट्रीय सप्ताह (जलियांवाला बाग के शहीदों की स्मृति में 6 अप्रैल से 13 अप्रैल तक मनाया जाता है ।)

(3) स्वतन्त्रता दिवस (15 अगस्त)

(4) महात्मा गांधी जन्म दिवस (2 अक्टूबर)

(5) राष्ट्रीय महत्व का अन्य कोई दिन

कांग्रेस पार्टी का झंडा (चर्खा अंकित) कोई भी व्यक्ति किसी भी अवसर पर अपने घर अथवा राष्ट्रीय स्वागत समारोह के अवसर पर फहरा सकता है ।

राष्ट्रीय पर्वों पर जन-समूह के समक्ष झंडा उद्घाटन के समय सभी को खड़े होकर झंडे का सम्मान करना आवश्यक है।

राष्ट्रपति ध्वज

भारत के सभी सरकारी भवनों पर सदैव राष्ट्र ध्वज फहराता रहता है। परन्तु राष्ट्रपति भवन पर, जहां भारत के राष्ट्रपति निवास करते हैं, यह ध्वज नहीं, बल्कि उनका अपना राष्ट्रपति-ध्वज फहराया जाता है।
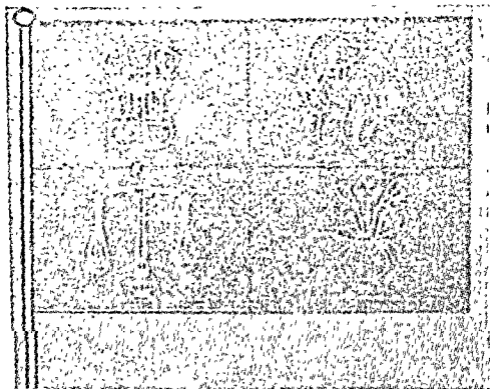
स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत ने पहले संविधान सभा गठित की, जिसमें उसने भारतीय संविधान के नियम बनाये। अब उन्हीं नियमों के अनुसार भारत की शासन-व्यवस्था चलती है। संविधान सभा समाप्त हो जाने पर 1950 में भारत ने सार्वभौमिक लोकतांत्रिक गणराज्य की घोषणा की। तभी से राष्ट्र के सर्वोच्च व्यक्ति राष्ट्रपति के आवास स्थान राष्ट्रपति-भवन पर पृथक राष्ट्रपति-ध्वज फहराया जाने लगा।
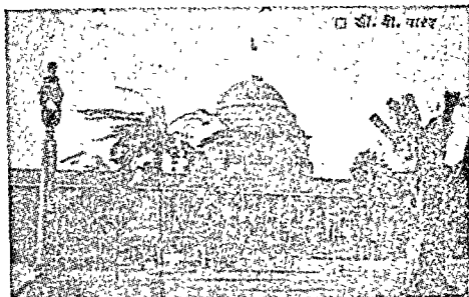
राष्ट्रपति-ध्वज की पृष्ठभूमि में नीला और लाल दो रंग चार भागों में विभक्त हैं। ऊपरी बाएं चतुर्थांश नीले भाग में तीन सिंह, दाएं चतुर्थांश लाल भाग में हाथी, तथा निचले बाएं चतुर्थांश लाल भाग में तुला और दाएं चतुर्थांश नीले भाग में कमल पुष्प अंकित हैं। सिंह शक्ति का, हाथी धैर्य का, और तुला औचित्य और न्याय का तथा कमल प्रगति का प्रतीक हैं।

झण्डा गीत और उसके रचयिता

1925 में कानपुर में श्रीमती सरोजनी नायडू की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला था। कानपुर के प्रसिद्ध नेता गणेशशंकर विद्यार्थी उसकी व्यवस्था कर रहे थे। कांग्रेस अधिवेशन के कार्य का आरम्भ राष्ट्रीय झण्डा फहराने से होता है। उस समय तक राष्ट्रीय झंडा तो मान्य हो चुका था, परन्तु उसे फहराते समय कोई राष्ट्रीय गीत मान्य नहीं हुआ था। गणेशशंकर विद्यार्थी ने नखल निवासी श्री श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' से, जो उन दिनों कानपुर में ही थे, सरल हिन्दी भाषा में एक झंडा गीत तैयार करने का अनुरोध किया।

पार्षद जी गीत लिखने लगे, परन्तु जो लिखते उससे उन्हें सन्तोष न होता। अधिवेशन का समय निकट आने पर विद्यार्थी जी ने उनसे झंडा गीत मांगा।

पार्षद जी ने कहा कि अभी तक भी मैं गीत नहीं लिख पाया हूं। कुछ जंच नहीं रहा

है। विद्यार्थी जी चिन्तित हो उठे। यह देख पार्षद जी बोले—आप चिन्ता न करें, मैं कल प्रातः तक आपको झंडा गीत अवश्य दे दूंगा।

पार्षद जी घर लौटे और गीत लिखने में जुट गए। अनेक पंक्तियां लिखीं, सुधारीं, काटीं और अन्त में कई घंटे के परिश्रम के बाद यह गीत तैयार हुआ, जिसका पहला पद इस प्रकार था—
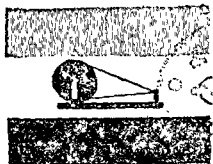
राष्ट्र गगन की दिव्य ज्योति राष्ट्रीय पताका नमो नमो।
भारत जननी के गौरव की अविचल शाखा नमो नमो।
कर में ले कर इसे शूरमा, तीस कोटि भारत-सन्तान।
हंसते-हंसते मातृभूमि के चरणों पर होंगे वलिदान।।
हो घोषित निर्भीक विश्व में तरल तिरंगा नवल निशान।
वीर हृदय खिल उठें, मार ले भारतीय क्षण में मैदान।।
हो नस-नस में व्याप्त चरित शूरमा शिविका नमो नमो।

गीत पूरा करके पार्षदजी ने इसे पढ़ा तो सन्तोष नहीं हुआ। कुछ देर वे सोचते रहे, फिर नींद आ गई और सो गए। प्रातः काल 4 बजे ही नींद खुल गई, गीत तो उनके मस्तिष्क में चक्कर काट ही रहा था, सो वे कलम-दवात लेकर बैठ गए और दूसरा गीत उनकी कलम ने लिख डाला—'झंडा ऊंचा रहे हमारा।' गीत पूरा करके पार्षद जी ने पढ़ा और सन्तुष्ट हुए।

दोनों गीत उन्होंने विद्यार्थी जी को दिखाये। उस समय श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन कानपुर में ही थे। विद्यार्थी जी ने दोनों गीत उनके सामने रख दिए। टण्डन जी ने दोनों

राष्ट्रीय झंडा गायन

श्यामलाल गुप्त पार्षद

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा
झंडा ऊंचा रहे हमारा।

सदा शक्ति बरसाने वाला
प्रेम सुधा सरसाने वाला,
वीरों को हरषाने वाला,

मातृभूमि का तन मन सारा,
झंडा ऊंचा रहे हमारा।।

को पढ़ा। पढ़कर बोले—'राष्ट्र गगन की दिव्य ज्योति' वाला गीत सरल नहीं है। 'झंडा ऊंचा रहे हमारा' वाला गीत सरल है, परन्तु लम्बा है। इतना लम्बा गीत झंडा अभिवादन के समय नहीं गाया जा सकता। अतः उन्होंने उस गीत की अन्तिम आठ पंक्तियां काट दी तथा एक पंक्ति—'हो स्वराज्य का सुन्दर निर्णय' को इस प्रकार बदल दिया—'ले स्वराज्य यह अविचल निश्चय।'
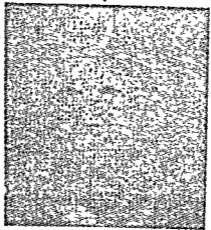
श्यामलाल गुप्त पार्षद

अब झंडा गीत तैयार था। अगले दिन जुलूस निकला। उस जुलूस में यह बहुत उत्साह और वीर भाव से गाया गया। देखते-ही-देखते यह गीत सारे भारत में फैल गया और खूब गाया गया। हिन्दुस्तानी सेवा-दल ने इसे प्रथम बार गाकर और बाद में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने 'राष्ट्रीय झंडा गीत' स्वीकार कर इसे अमर कर दिया।

तब से इसी गीत को गाकर स्वतन्त्रता सेनानी आगे बढ़ते गए, प्रेरणा प्राप्त करते रहे, पुलिस की लाठी और गोलियां खाते रहे तथा देश पर हंसते-हंसते अपने प्राण बलिदान कर गए। इसी गीत ने उनके मनोबल को सदैव ऊंचा और अडिग रखा। इस गीत को अनेक प्रसिद्ध नेताओं ने अपने यौवन-काल में झंडा हाथ में लेकर जुलूस में आगे चलते हुए बड़ी मस्ती और शान से गाया था। जवाहरलाल नेहरू भी उनमें से एक थे।
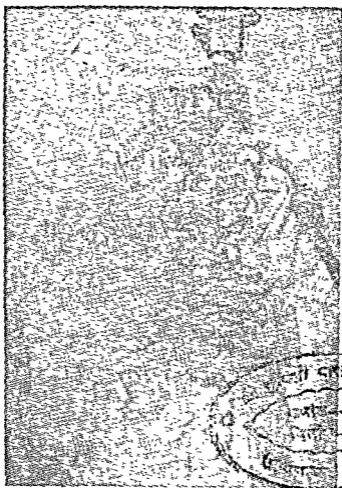
भारत के प्रसिद्ध झण्डा गीत 'झण्डा ऊंचा रहे हमारा'
के गीतकार श्यामलाल गुप्त पार्षद

श्री पार्षद जी का जन्म 1894 में कानपुर जिले के नखल में साधारण परिवार में हुआ था। उन्होंने मिडिल कक्षा तक शिक्षा पाई और फिर जिला परिषद् के नार्मल स्कूल में अध्यापक हो गए। कानपुर के गणेशशंकर विद्यार्थी के सम्पर्क में आकर उनमें

स्वदेश प्रेम, राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ। नार्मल स्कूल में नौकरी का बांड भरने को अस्वीकार करने पर उनकी नौकरी छूट गई। 1919 से वे गणेशशंकर जी के साथ देश-

सेवा मे लग गए और 6 बार जेल गए। कुल मिला कर उन्होंने 3 वर्ष 8 मास का कारावास प्राप्त किया। उनका जीवन बहुत सादा, स्वभाव बहुत सरल और निश्चल था। खादी की धोती, कुरता टोपी पहनते थे। उनकी राष्ट्रीय भावनाओं की कविताओं का संग्रह 'पार्षद पद्म प्रसून' नाम से छपा है।

जन गण मन

राष्ट्रीय प्रार्थना

1911 के अन्तिम दिनों में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'जन गण मन' शीर्षक से एक गीत की रचना की, जो जनवरी 1912 में ब्रह्म समाज के प्रार्थना गीत के रूप में 'तत्व बोधिनी'

पत्रिका में प्रथम बार प्रकाशित हुआ। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर उस पत्रिका के प्रतिष्ठाता थे। बाद में ब्रह्मसमाज की प्रार्थना पुस्तक में इस गीत को 'ब्रह्मगीत' शीर्षक से स्थान दिया गया।

कलकत्ता में कांग्रेस का 26वां अधिवेशन बिशननारायण धर के सभापतित्व में हुआ। इस अधिवेशन की दूसरी बैठक के आरम्भ में 26 दिसम्बर 1911 को प्रथम बार कांग्रेस-मंच से इस गीत को प्रेरणादायक मानकर गाया गया।

'अमृत बाजार पत्रिका' ने इस गीत को 'स्वसति वाचन' कहा। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी द्वारा सम्पादित पत्रिका 'दी बंगाली' ने इसे 'देश-प्रेम' का गीत लिखा। कांग्रेस अधिवेशन की रिपोर्ट में भी इसे 'देश-प्रेम गीत' की संज्ञा दी गई।

1937 में कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने राष्ट्रगीत पर विचार करने के लिए अब्दुल कलाम आजाद, जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस तथा आचार्य नरेन्द्रदेव को सम्मिलित कर एक उपसमिति नियुक्त की। इस समिति के सम्मुख कुछ लोगों ने 'वन्दे-मातरम्' का पक्ष लिया, कुछ ने 'जन गण मन' का। इस राष्ट्रगीत के प्रश्न को लेकर जब जवाहरलाल नेहरू ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर से सम्मति ली तब स्वयं उन्होंने 'वन्देमातरम्' के प्रथम दो पदों को राष्ट्रगीत के रूप में ग्रहण करने की सलाह दी।

रवीन्द्रनाथ ने अपने इस गीत की रचना के सम्बन्ध में कहा है—"स्वदेश-उत्ताप का संचार होने पर इस गीत में उस 'भारत भाग्य विधाता' की जय घोषणा की गई है जो पतन-अभ्युदय से युक्त कठिन मार्ग से युग-युगों के धावित यात्रियों के चिर सारथी हैं। ऐसे शाश्वत मानव ही जन-गण के अन्तर्यामी पथ-परिचायक हैं।

भरत 'भाग्य विधाता' चिरसारथी (जीवन देवता—परमपिता परमेश्वर) अपने रथ में आता है और संकट दुख का त्राण करता है। (The Eternal Charioteer who guides human travellers through of ages).

रवीन्द्रनाथ कहते हैं कि हमारे पास जो कुछ भी है, उसकी बाजी लगाकर हम भू-मां के पथ पर निखिल मानव की विजय यात्रा में सम्पूर्णतः निर्भय हों।

जन-गण-मन गीत राष्ट्रीय और धार्मिक भावना का स्तवन-काव्य है जिसमें अपना स्वदेश भारत और परमेश्वर समान रूप हैं।

भरत के स्वतन्त्र होने के बाद भारत का संविधान सभा में राष्ट्रगीत के निर्णय पर विचार किया गया। इस अवसर पर जवाहरलाल नेहरू ने कहा था—

"मैं इस प्रश्न का अभी ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे सकता, परन्तु मैं सदन में यह कह सकता हूं कि राष्ट्रगीत में मात्र शब्द नहीं होते। इसमें निहित संगीत इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग होता है और अधिकांश लोग इसे नही समझते। वे केवल शब्दों पर ध्यान देते हैं। इसलिए निश्चय किया गया है कि टैगोर के 'जन-गण-मन' का उसके वाद्य-वृन्द सहित अध्ययन किया जाए। निःसन्देह अन्य गीतों का भी इसी प्रकार अध्ययन किया जा सकता है। मेरे मित्र 'वन्देमातरम्' को भी चाहते हैं। दुर्भाग्यवश कुछ गीतों की शब्दरचना बहुत अच्छी है, परन्तु वाद्य एवं लय आदि की दृष्टि से वे सक्षम नही होते और क्योंकि राष्ट्रगीत वाद्यवृन्द पर बजाए जाते हैं, अतः उक्त गुणों से

रहित गीत अधिक प्रभावशाली नहीं होते। हम कोई ऐसी चीज चाहते हैं, जिसमें सजीवता हो और गरिमा भी। हमें ये दोनों गुण चाहिए। यदि उनमें से एक की भी कमी है, तो वह ठीक नहीं होगा। यदि इसमें केवल गरिमा है और सजीवता नहीं तो यह निष्प्रभाव हो जाता है। यदि इसमें केवल सजीवता ही हो और गरिमा न हो तो वह रंगमंचीय हो जाएगा। अतः हमें दोनों का सन्तुलन रखना पड़ेगा।

मेरा कहना है कि पहले सरकार की कोई समिति (या सरकार स्वयं) अथवा इस सदन की समिति शायद इस सम्बन्ध में सिफारिश करेगी और अन्ततः सदन स्वयं राष्ट्रगीत स्वीकृत करेगा, जैसे कि राष्ट्रध्वज स्वीकृत हुआ था।"

इस प्रश्न पर विचार करने के लिए संगीतज्ञों एवं विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्ति करने का विचार किया गया था परन्तु वह नहीं हुई। बाद में 24 जनवरी, 1950 को संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने इस सम्बन्ध में निम्नलिखित व्यवस्था दी—

"एक मामला अर्थात राष्ट्रगीत का प्रश्न विचाराधीन रहा है। एक समय यह ख्याल था कि यह मामला सदन के समक्ष लाया जा सकता है और प्रस्ताव के रूप में सदन द्वारा कोई निर्णय किया जा सकता है। परन्तु अब यह ख्याल है कि प्रस्ताव के रूप में कोई औपचारिक निर्णय करने से बेतहर यह होगा कि मैं राष्ट्रगीत के सम्बन्ध में वक्तव्य दे दूं, तदनुसार मैं यह वक्तव्य दे रहा हूं।

'जन गण मन' के रूप में की गई शब्द एवं संगीत रचना भारत का राष्ट्रगीत है, परन्तु सरकार समयानुसार इसके शब्दों में परिवर्तन कर सकेगी तथा सदन प्रस्ताव के रूप में इसका निर्णय करेगा और वन्देमातरम् गीत का, जिसका भारतीय स्वातन्त्र्य संघर्ष में ऐतिहासिक भाग रहा है, जन-गण-मन के बराबर सम्मान किया जाएगा और उसे इसके साथ समान स्तर प्राप्त होगा। मुझे आशा है सदस्य इससे सन्तुष्ट होंगे।"

उपर्युक्त व्यवस्था का संविधान सभा ने तुमुल ध्वनि के बीच स्वागत कर उसे स्वीकार किया। इस प्रकार संविधान में वन्देमातरम् को भी राष्ट्रगीत के रूप में ही सम्मान प्राप्त हुआ।

वंगभंग

सन् 1857 के विद्रोह का नेतृत्व नाना फड़नवीस और तात्याटोपे ने किया था। उसके बाद सन् 1872 में कूका विद्रोह का नेतृत्व गुरु रामसिंह ने किया। इसके बाद 1893 में महाराष्ट्र में हिन्दुत्व की चेतना जागृत हुई जिसमें गणपति उत्सव और शिवजी जयन्ती उत्सव राष्ट्रीय रूप से मनाये जाने लगे, जिसका श्रेय लोकमान्य तिलक और चापेकर बन्धुओं को है।

सन् 1908 से 1921 तक का समय भारत की राजनीति का जन्म काल है। ब्रिटिश शासन से भारत को मुक्त करने के लिए देश के बड़े नेता स्वेच्छा से सर्वस्व त्याग जेल गए। स्वदेश पर जीवन को बलिदान कर दिया। इन नेताओं के आदर्शों पर चलकर भारत की जनता ने स्वतन्त्रता प्राप्त की। आरम्भ के उन दिनों में अंग्रेजों ने हमारे शीर्ष नेताओं को बिना अपराध मुकद्दमे चलाकर जेलों में ठूंस दिया था।

1905 में लार्ड कर्जन के शासन काल में, बंगाल का प्रान्त भारत के सभी प्रान्तों से बड़ा था। आज के बिहार, उड़ीसा, बंगाल और आसाम, चारों प्रान्त उस समय बंगाल में सम्मिलित थे। उस समय उनकी जनसंख्या सात करोड़ अस्सी लाख थी और अंग्रेज लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के अधीन थी। ब्रिटिश सरकार ने शासन की सुविधा की दृष्टि से बंगाल को दो भागों में विभाजित कर डाला। एक भाग में बिहार और उड़ीसा और पश्चिमी बंगाल, दूसरे भाग में आसाम और पूर्वीय बंगाल। बंगभंग से पूर्व सम्पूर्ण बंगाल में हिन्दुओं का बहुमत था, किन्तु बंगभंग होने से दूसरे भाग (आसाम और पूर्वीय बंगाल) में मुस्लिम बहुमत हो गया। इस विभाजन की विभीषिका से सारे बंगाल में रोष फैल गया। सभी नेताओं ने इसका विरोध किया। अरविन्द घोष, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और विपिनचन्द्र पाल जैसे शीर्ष बंगालियों ने भी इस कार्य के लिए सरकार की निन्दा की। बंगभंग आन्दोलन को देश-व्यापी बनाने के लिए उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन और ब्रिटिश बहिष्कार आन्दोलन का भी आरम्भ कर दिया जो बंगाल से उत्तर प्रदेश, उत्तर प्रदेश से पंजाब तक जा फैला। अरविन्द घोष के लघु भ्राता बारीन्द्रकुमार घोष (जो 1880 में इंग्लैंड में उत्पन्न हुए थे, परन्तु एक वर्ष की आयु में भारत आ गये थे) ने सारे बंगाल का दौरा किया और धार्मिक एवं राजनैतिक शिक्षा का प्रचार करने के लिए पचास रुपये की पूंजी से 'युगान्तर' नामक पत्र निकाला। स्वामी विवेकानन्द के लघु भ्राता भूपेन्द्र नाथ दत्त को सम्पादक बनाया गया। युगान्तर के उग्रलेखों ने जनता में उबाल ला दिया। उसकी ग्राहक संख्या एक हजार से पांच हजार, सात हजार, और 1908 मे (जब वह अंग्रेजों की कोप दृष्टि से बन्द किया गया) बीस हजार तक बढ़ गई थी और वह छिपकर बड़ी उत्सुकता से पढ़ा जाता था और दूसरों को सुनाया जाता था। जिस समय पुलिस 'युगान्तर' कार्यालय में सम्पादक को गिरफ्तार करने गई, तब कार्यालय में बैठे सभी व्यक्तियों ने स्वयं को सम्पादक बताकर गिरफ्तारी के लिए होड़ बदी। पुलिस को असली सम्पादक का निर्णय करना कठिन हो गया। अन्त में एक मोटे-तगड़े दाढ़ी-मूंछ वाले युवक को पकड़कर गिरफ्तार कर लिया गया। अदालत में पहुंचकर भी जब उस युवक ने अपने बचाव का उद्योग नहीं किया तो सरकार की ओर से चेष्टा की गई कि वह माफी मांग कर छूट जाय, किन्तु उसने ऐसा करने से इनकार कर दिया। फलतः उसे एक वर्ष की सजा दे दी गई।

बंगभंग का देश-व्यापी आंदोलन दिसम्बर 1911 को समाप्त हुआ। 1910 में इंग्लैंड के बादशाह एडवर्ड सप्तम का देहान्त होने पर उनके ज्येष्ठ पुत्र जार्ज पंचम गद्दी पर बैठे। उनका राजतिलक लंदन के राजप्रासाद बकिंघम राजमहल में तो हुआ ही, परन्तु भारत में भी करने का निश्चय किया गया। फलतः 12 दिसम्बर 1911 को दिल्ली

में उनका भारी दरबार हुआ जिसमें उन्होंने घोषणा की कि अब से भारत की राजधानी कलकत्ते से हटाकर देहली बनायी जा रही। पूर्वी तथा पश्चिमी बंगाल पुन: मिलाकर लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के आधीन एक प्रान्त बनाया जाता है। आसाम को चीफ कमिश्नर के आधीन पृथक प्रान्त बनाया जाता है। बिहार, छोटा नागपुर, और उड़ीसा के जिले मिला कर 'विहार उड़ीसा' नामक प्रान्त लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के आधीन किया जाता है, जिसकी राजधानी पटना होगी। 23 दिसम्बर 1912 को दिल्ली चांदनी चौक में जब वायसराय लार्ड हार्डिंग की हाथी पर धूमधाम से सवारी निकल रही थी, उस समय मोती बाजार के सामने एक बिल्डिंग की पहली मंजिल पर बंगाल के आतंकवादी युवक रास बिहारी बोस हाथ में बम लिये अपने शिकार पर बम फेंककर उसको मार डालने का लक्ष्य साधे, कुर्सी पर एक दर्शनार्थी की भांति बैठे हुए थे। ज्योंही वायसराय का सुसज्जित हाथी धीमे-धीमे कदम रखता हुआ उनके लक्ष्य स्थल पर पहुंचा, उन्होंने पूरे वेग से बम वायसराय के सिर पर फेंका। परन्तु दुर्भाग्य से बम उन्हें नहीं लगा, पीछे बैठे अगरक्षक को लगा जो एक बड़ा मखमली छाता वायसराय के सिर के ऊपर ताने हुए था। अंगरक्षक वहीं ढेर हो गया। सैनिक और पुलिस तत्काल सक्रिय हो उठी, परन्तु रासबिहारी तीव्र गति से कमरे से उतरकर भीड़ में मिल रेलवे स्टेशन की ओर भाग गए। बाद में पुलिस देश के कोने-कोने में हत्यारे की तलाश करती रही। कलकत्ता के राजा बाजार के एक मकान की तलाशी लेते हुए पुलिस को कुछ नामों की सूची मिली। इस सूची में रासबिहारी का नाम था।

उन दिनों दिल्ली में मास्टर अमीरचन्द क्रान्तिकारी भावनाओं के लिए प्रसिद्ध थे। पुलिस उनकी डॉक सेन्सर करने लगी। उनके पते पर अवधबिहारी नामक व्यक्ति का एक पत्र डाक से आया। पत्र पर नाम के बजाय M. S. लिखा था। अवधबिहारी को कठोर यातना दी गई, जिससे विवश हो उसने बताया कि M. S. लाहौर का दीनानाथ है। लाहौर पहुंचकर पुलिस ने असली दीनानाथ को खोज निकाला। उसने रासबिहारी का नाम बता दिया। दो वर्ष तक की दौड़-धूप और खोज के बाद दिसम्बर 1914 में रासबिहारी का पता पुलिस ने ज्ञात कर लिया। उन दिनों रासबिहारी लाहौर में थे।

रासबिहारी को जब ज्ञात हुआ कि पुलिस को उनका नाम और आवास पता चल गया है, तो वे किसी प्रकार एक स्त्री को अपनी पत्नी बताकर उसके साथ कलकत्ता रवाना हुए। उन्होंने अंग्रेजी शूट पहना, हैट लगाया, मुंह में सिगार दबाया और पत्नी की बांह में बांह डाले पंजाब मेल के प्रथम श्रेणी कम्पार्टमेन्ट में बैठकर कलकत्ता रवाना हो गए। उस समय लाहौर स्टेशन पर दर्जनों पुलिसमैन स्टेशन पर जांच-पड़ताल में सक्रिय थे। अंग्रेज सीनियर सुपरिटेण्डेन्ट पुलिस ने उस डिब्बे में भी जाकर छानबीन की थी, पर वह भेष बदले रासबिहारी को वहां उपस्थिति की कल्पना भी नहीं कर सके। कलकत्ता पहुंचने के बाद मित्रों की सलाह से वे सिंगापुर चले गए। बहुत दिनों बाद जापान में उनकी भी भेंट सुभाषचन्द्र बोस से हुई, और वहां उनकी मृत्यु हुई।

कलकत्ता से सिंगापुर जाने का वृत्तान्त उन्होंने स्वयं इस प्रकार लिखा है—

1908 में सम्पूर्ण बंगाल से विप्लव समितियों का जाल बिछ गया और 1915

तक भारत में देशव्यापी-विद्रोह की तैयारियाँ होने लगी। सन् 1914 और 1915 में कनाडा से भारी संख्या में सिक्ख लोग वहाँ की सरकार द्वारा तिरस्कृत होकर और विद्रोह की भावना लेकर भारत लौटे। रोपावेशित व्यक्तियों ने बंगाल के बंगाली क्रांतिकारियों के साथ मिलकर फिर एक बार भारतव्यापी विद्रोह की चेष्टा की, परन्तु उसका भेद समय से पूर्व ही खुल जाने से सफलता नहीं मिली। इसके बाद सन् 1920 में पंजाब में विप्लववाद की योजना बनी। 1923 में सरदार भगतसिंह ने गांधी के असहयोग आन्दोलन के साथ-साथ विप्लववाद इतनी तीव्र गति से बढ़ाया कि समस्त ब्रिटेन कांप उठा। 8 वर्ष तक अदम्य उत्साह और निर्भय होकर भगतसिंह ने देश भर के विप्लव सूत्रों को जोड़कर संगठित रूप दिया और उसमें उन्हें बहुत सफलता मिली। अन्त में 23 मार्च 1931 को अपनी चिर-विस्मृत आहुति देकर उन्होंने भारतीय विप्लववाद का नाम अमर कर दिया।

बीसवीं शताब्दी में भारतीय आतंकवाद की आयु 1897 से 1937 तक चालीस वर्ष रही। लगातार चालीस वर्ष तक की लम्बी आयु विश्व भर के किसी भी देश के आतंकवाद ने नहीं पाई। संसार के सबसे भयंकर आतंकवाद रूस के बोल्शेविज्म ने भी नहीं। भारतीय आतंकवाद और भी नया रूप ग्रहण करके आगे बढ़ता कि महात्मा गांधी के अहिंसा आन्दोलन के सफल प्रयोग के आगे उसे नतमस्तक होना पड़ा। 1937 में महात्मा गांधी के उद्योग से आतंकवादियों ने अपने प्रयास रोक दिये। परन्तु नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने महात्मा गांधी से भी टक्कर ली। उन्होंने आगे बढ़कर खुले आम ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध तलवार खींच ली। उन्होंने ब्रिटिश सरकार की नजरबन्दी से [illegible] और जापान पहुंचकर 'आजाद हिन्द फौज' की स्थापना की और अंग्रेजों के विरुद्ध एक घोषित शासक का दूसरे शासक के समान खुला मैदानी युद्ध किया। परन्तु वे भी अपने लक्ष्य को पूरा नहीं कर सके। लक्ष्य पूरा किया महात्मा गांधी ही ने।

मोटे तौर पर विप्लववाद के विद्रोह में 7000 प्रमुख व्यक्तियों ने अपने प्राण दिये। इनमें अनेकों को फांसी दी गई और अनेकों को तोप के मुह से बांधकर उड़ा दिया गया। बहुत बालकों को तलवार से काटा गया और बहुत व्यक्ति जेल यातना में मरे।

मैना

नाना की दत्तक पुत्री मैना बचपन से ही निडर और [illegible] थी। विद्रोही सिपाहियों ने कानपुर की गद्दी पर नाना को आसीन करके विद्रोह का आरम्भ किया। विद्रोह के दूसरे दिन उनके सामने सैनिकों ने अनेक अंग्रेज स्त्रियों और बच्चों को लाकर पेश करके कहा कि इन सबको मार देने की आज्ञा दीजिए—परन्तु नाना ने ऐसा करने से इनकार किया। उन्होंने कहा—इन निहत्थे स्त्री-बच्चों को मारना कायरता और पाप है। उन्होंने इन अंग्रेज बच्चों को अपनी पुत्री मैना की संरक्षता में रखकर कहा—इन सबको [illegible]

पहुंचा दो। और वे स्वयं बिठूर चले गए।

मैना इन स्त्री-बच्चों को लेकर एक अंगरक्षक सरदार माधव के साथ गंगा तट पर पहुंची। वहां पहुंचने पर उसे समाचार मिला कि नाना साहेब के कानपुर छोड़ने के बाद शीघ्र ही अंग्रेज कानपुर पर चढ़ दौड़े हैं और महिलाओं की इज्जत के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। दूध-मुंहे बच्चों तक को नहीं बख्श रहे हैं। यह सुनते ही मैना क्रोधित हो उठी —उसने ज्वालामय नेत्रों से अंग्रेज स्त्री बच्चों को देखा—परन्तु तुरन्त ही अपने पिता की बात याद आते ही उसने माधव से कहा—"इन लोगों को सुरक्षित स्थान पर छोड़कर हम शीघ्र ही लौटेंगे। फिर हम अंग्रेजों से गिन-गिन कर बदला लेंगे।" यह बात हो ही रही थी कि अंग्रेजों की एक टुकड़ी वहां आ पहुंची। माधव मारा गया और मैना पकड़ ली गई।

मैना का परिचय जानकर अंग्रेज प्रसन्नता से खिल उठे। उन्होंने मैना को प्रलोभन देने आरम्भ किए कि वह अन्य साथियों का पता बता दे, परन्तु मैना कोई उत्तर नहीं दे सकी। मैना को पेड़ में बांध दिया गया, यातनाएं दी गई। प्यास से उसका कण्ठ सूख गया। पर उसे एक बूंद पानी भी पीने नहीं दिया। अब उसे भयभीत करने के लिए पेड़ के चारों ओर लकड़ियां चुनकर चिता बना दी गई और धमकी दी गई कि उसे जिन्दा जला दिया जाएगा।

अंग्रेजों ने कहा—"अब भी बता दो?"

परन्तु मैना ने उन पर थूक दिया। इस पर चिता में आग लगा दी गई। मैना अविचल जलने लगी—अधजली अवस्था में उसे बाहर निकालकर फिर पूछा गया—पर उसने यही शब्द कहे—कर लो जो करना है—मैं नहीं बताऊंगी। उसे फिर चिता में झोंक दिया गया। तीव्र लपटों में मैना जलकर भस्म हो गई।

रानी ईश्वर कुंवरि

गोंडा गोरखपुर के समीप तुलसीपुर का छोटा-सा इलाका है। इसकी रानी ईश्वर कुंवरि सच्ची क्रांतिकारी और हथियार चलाने में निपुण थीं। विद्रोह के समय राजा दृगराजसिंह की रानी ने अंग्रेजों से निर्भय होकर लोहा लिया। उसका राज्य छीनकर बलरामपुर राज्य में मिला लिया गया। रानी को अनेक प्रलोभन दिए गए, परन्तु उसने सब ठुकरा दिए। राजा दृगराजसिंह अंग्रेजों के खिलाफ लड़े थे, अतः युद्ध में बन्दी बना लिये गए। नजरबन्दी में ही उनकी मृत्यु हो गई। राज्य का भार रानी ईश्वर कुंवरि ने संभाला। वे बराबर अंग्रेजों से लड़ती रहीं—जब परास्त होने लगीं तब हजरत महल के साथ नेपाल चली। लखनऊ से निकलकर नेपाल की ओर बढ़ते हुए अपने प्रवास काल में हजरत महल तीन दिन तुलसीपुर की अचवा गढ़ी में, ईश्वर कुंवरि के सहयोग से सुरक्षित ठहरी थीं और सोनार पर्वत की राह नेपाल पहुंच गईं। आगे-आगे हजरत महल चलती

थी, पीछे-पीछे रक्षात्मक पंक्ति बनाकर अपने सैनिकों के साथ रानी ईश्वर कुंवरि चलती थीं। अन्त में सब नेपाल पहुंच गए और जीवन पर्यन्त वहीं रहे।

नर्तकी अजीजन

1857 के विद्रोह के मुख्य केन्द्र मेरठ और कानपुर थे। कानपुर के किले पर नाना साहेब और अंग्रजों में जमकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में पुरुषों के साथ स्त्रियों ने भी युद्ध में भाग लिया। कानपुर की वेश्या अजीजन भी मर्दाना वेश धारण कर युद्धभूमि में आ डटी। तात्यां टोपे के आदेश से वह अपनी मण्डली लेकर अंग्रेजों की छावनियों में जाती और वहां मोहक नृत्य संगीत कार्यक्रम पेश करके उनसे गुप्त बातें जानती और अपनी छावनी में आकर बता देती। बगल में तलवार लटकाए, हाथ में नंगी तलवार लिये बिजली की भांति घोड़े पर सवार दौड़ती हुई इस छावनी से उस छावनी में चक्कर लगाती रहती थी। उसकी 'मस्तानी मण्डली' में उसी के समान और भी देशभक्त स्त्रियां थी। वे सब सैनिक वेश में अस्त्र-शस्त्रों से लैस बन्दूकें लिये अपनी वीरता का परिचय दे रही थीं। नानागढ़ में नाना साहेब ने 125 अंग्रेज स्त्री-पुरुष और बच्चे रक्षार्थ रखे थे, परन्तु अजीजन ने उन्हें मार डाला। इस बारे में उसने नाना साहेब की बात नहीं मानी। एक मुठभेड़ 21 दिन तक चली, जिसमें अंग्रेज बुरी तरह हारे। परन्तु भाग्य अंग्रेजों के साथ था—कुछ समय बाद कलकत्ते से सहायता मिलने पर उनके हाथ से कानपुर निकल गया—और युद्ध में अजीजन बन्दी बना ली गई।

कैदी रूप में जब वह अंग्रेज जनरल हैवलाक के सामने पेश की गई, तो उसके रूप, सौंदर्य और शौर्य से प्रभावित होकर उसने उससे क्षमा मांग लेने को कहा। परन्तु अजीजन ने घृणा से और क्रोधपूर्वक उत्तर दिया—"गोरों की हार देखने के सिवा मेरी कोई इच्छा नहीं है।" अन्त में उसे गोलियों से भून दिया गया।

चित्तू पाण्डे

महात्मा गांधी के 1942 के 'भारत छोड़ो' संग्राम में बलिया के चित्तू पांडे का नाम अमर है। चित्तू पांडे का जन्म बलिया से 6 किलोमीटर दूर पश्चिम सागर पाली से लगे रट्टूचक (बैना) गांव में 1890 की 10 मई को हुआ था। चित्तू पांडे, रामनारायण पांडे और राजवातो कुंवरि की एकमात्र जीवित संतान थे। अहीरों के इस रट्टूचक टोले में इनका एक मड़ैयों वाला घर था, आर्थिक स्थिति ठीक न थी, पढ़े भी दर्जा पांच तक थे। महात्मा गांधी ने भारत में जब असहयोग आंदोलन छेड़ दिया तो चित्तू पांडे ने

भी उसमें भाग लिया। अपनी लच्छेदार भोजपुरी भाषा में वे भाषण देते और गांधीजी का संदेश बताते। कांग्रेस का उन्हें आर्गेनाइजर बना दिया गया। बाद में इन्हें जिला कांग्रेस का जिला-सभापति बना दिया गया। जब अंग्रेज सरकार नेताओं को पकड़ने लगी तब इन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया। 1930 में नमक आंदोलन छिड़ने पर चित्तू पांडे को 'कांग्रेस डिक्टेटर' बनाकर सबसे पहले नमक बनाने भेजा गया। अतः वे गिरफ्तार किए। 1921 से 1942 तक वे अनेक बार गिरफ्तार किए गए। 'क्विट इंडिया', 'भारत छोड़ो' आंदोलन में वे ही सबसे पहले गिरफ्तार किए गए। उनकी गिरफ्तारी से प्रजा ने विद्रोह कर दिया और दस में से सात थानों पर क्रांतिकारियों ने कब्जा कर लिया। बोरिया थाने पर तिरंगा फहराने में 18 वीर शहीद हुए। यातायात, संचार-व्यवस्था भंग कर रेल की पटरियां उखाड़ दी गईं। बलिया से बाहर जाने वाली सड़क पर पेड़ काटकर डाल दिए गए, तुर्ती पार का पुल तोड़ दिया गया, बांसडीह थाना और खजाना लूटा गया। रिक्रूटिंग आफिस जलाकर ढेर कर दिया। परगनाधिकारी का घर लूट लिया। इस विषम स्थिति में सभी सरकारी अफसर और कर्मचारी पुलिस लाइन्स में सिमट आए थे।

लोगों की भीड़ कलेक्टरी पर तिरंगा फहराने को उमड़ पड़ी, यह देख जिलाधीश ने रायबहादुर काशीनाथ मिश्र से परामर्श किया और जनता से शांत रहने की अपील की। परन्तु भीड़ ने स्पष्ट कह दिया कि जब तक चित्तू आदि नेता जेल से रिहा नहीं किये जाते, तब तक हम नहीं हटेंगे। जिलाधीश ने जेल में चित्तू की राय पूछी। चित्तू ने कहा—हम छूटने के बाद वही करेंगे जो गांधीजी कहेंगे। 19 अगस्त को डिप्टी कलेक्टर जगदम्बा प्रसाद रिहाई के लिए जेल पहुंचे। बंदियों ने कहा—चित्तू पांडे जेल के छोटे फाटक से झुककर नहीं निकलेंगे—जेल का पूरा फाटक खोला जाए। यह स्वीकार कर जगदम्बा प्रसाद फाटक खुलवाने जा ही रहे थे कि बाहर-भीतर दोनों ही ओर से भीड़ ने एक ही झटके में जेल का फाटक तोड़ डाला। आंदोलनकारी नेता बाहर आ गए, कुछ कैदी भाग भी गए। भीड़ खजाने पर टूट पड़ी। कुछ नोट अधिकारियों ने जला दिए, कुछ नोट भीड़ ने लूट लिये। चित्तू की अध्यक्षता में टाउन-हॉल में सभा हुई। चित्तू ने कहा—बलिया अब स्वतन्त्र है। कलेक्टर ने सारे जिले की सुरक्षा का भार चित्तू पांडे को सौंप दिया।

बाबू शिवप्रसाद की कोठी पर सभा हुई, जिसमें चित्तू पांडे को बलिया का कलेक्टर घोषित किया गया। उमाशंकर वर्मा के सहयोग से उन्होंने बलिया के शासन की बागडोर संभाल ली। जिले भर में पंचायतों का गठन किया गया। स्वयंसेवकों को नागरिक सुरक्षा के आदेश दिए गए।

पं० जवाहरलाल नेहरू ने जेल से छूटने पर कहा—मैं पहले बलिया की स्वाधीन धरती पर जाऊंगा और चित्तू पांडे से मिलूंगा।

इधर कलेक्टर ने नेताओं की रिहाई की और उधर तहसीलदार के द्वारा लखनऊ गवर्नर के पास सारी स्थिति लिख भेजी। 23 अगस्त को स्टीमरों द्वारा गाजीपुर की ओर से मार्शल स्मिथ और नेदरसोल की कमांड में भारी संख्या में फौज आ पहुंची। उसने

नगर में नर-संहार मचा दिया। चौक में लोगों को एकत्र कर गोली से भून दिया गया। घरों में आग लगा दी। बहू-बेटियों को नंगा कर बेइज्जत किया गया। यह अत्याचार तब तक चला, जब तक पूरे जिले मे तिरंगा उतारकर यूनियन जैक नहीं लहरा दिया गया।

इस बीच चित्तू पांडे मुरली मनोहर के घर से निकलकर भूमिगत हो गए। चऊंरा गांव से वे जंगबहादुर सिंह, विश्वनाथ चौबे, महानन्द मिश्र और पारसनाथ मिश्र के साथ जंवहीदियारे के निकट के स्थान से गंगा पार कर बिहार चले गए। चित्तू पांडे पटना से मिर्जापुर जाकर फरारी जीवन बिताने लगे। परन्तु बलिया के ही एक खुफिया की निशानदेही पर उन्हें गिरफ्तार कर मिर्जापुर में पकड़ लिया गया। उन पर राजद्रोह, डकैती, कत्ल के मुकदमे दायर किए गए। सरकार ने जब उन्हें वकील देना चाहा तो चित्तू पांडे ने इनकार कर दिया। परन्तु फिरोज गांधी ने इलाहाबाद हाईकोर्ट से बैरिस्टर सतीशचन्द्र खरे और बैरिस्टर महरोत्रा को बुलाकर पैरवी करायी। मुकदमे ने रंग बदला और उन्हें सभी आरोपों से बरी कर दिया गया। केन्द्र में जब अंतरिम सरकार बनी तो उत्तर प्रदेश लेजिस्लेटिव असेम्बली के लिए बलिया जिले से वे निर्विरोध चुने गए। इस समय उनका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था, अंततः 6 दिसम्बर, 1946 को लखनऊ में उनकी मृत्यु हुई। महाकवि दिनकर ने उन पर कहा—

जला अस्थियां बारी-बारी, छिटकायी जिसने चिनगारी
जो चढ़ गए पुण्य बेदी पर, लिए बिना गरदन का मोल
कलम आज उनकी जय बोल।

माता महारानी तपस्विनी

मृत्यु के भय से सर्वथा दूर, दृढ़ संकल्पी, वीरता और साहस की मूर्ति जिन स्त्रियों ने भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में अपने प्यारे प्राणों की आहुति दी उनके प्रेरणादायक जीवन से हमें भी स्वदेश प्रेम का पाठ पढ़ना चाहिए। किसी कवि ने कहा—

जब तक भारत नारी न जागेगी,
तब तक भारत भी नहीं जागेगा।

झांसी की वीर रानी लक्ष्मीबाई की भतीजी और सरदार [illegible] राव की पुत्री सुनन्दा बचपन से ही विद्रोही स्वभाव की थी। उनका विवाह छोटी आयु में ही कर दिया गया था, परन्तु कुछ समय बाद ही उनके पति का देहांत हो गया। सात वर्ष की आयु से ही वे संस्कृत का अध्ययन करने लगीं। उन्हें किले में घुटन [illegible] नहीं [illegible] एक रात वह चुपके से किले से बाहर आ [illegible] पर पहुंची और पंच अग्नि तप करने लगी। उनके पिता कठिनाई से उन्हें वहां से लाए। उन्होंने अनुशासन और [illegible]

जीवन व्यतीत किया। संन्यासी विद्रोह से प्रभावित होकर एक हाथ में क्रांति का झंडा और दूसरे हाथ में लाल कमल लिये वे गांव-गांव व शहर-शहर घूमकर क्रांति का सन्देश लोगों तक पहुंचाने लगीं। उन्होंने संन्यासियों के भेष में अपने साथियों को छावनियों में भी क्रांति की आग फैलाने के लिए भेजा। बाल-विधवा और तप-संयम ने उन्हें सहनशील और कर्मठ बना दिया था। वे एक तपस्विनी की भांति रहती थीं। संस्कृत का अध्ययन कर उन्होंने उपनिषद तथा अन्य धर्मशास्त्र पढ़े। योगासन, व्यायाम, शस्त्र चालन, घुड़सवारी भी सीखी। पिता की मृत्यु के बाद अपनी जागीर का प्रबन्ध इन्हीं के कन्धों पर आ पड़ा।

अंग्रेज सरकार ने इस विद्रोहिनी को पकड़कर त्रिचनापल्ली के किले में नजरबन्द कर दिया। परन्तु कुछ समय बाद छोड़ दिया। छूटने पर वे संत गौरीशंकर की शिष्या बन नैमिषारण्य में तप करने लगीं। तप करते समय वे शिव की स्तुति तांडव स्रोत से करती थीं। लोग उन्हें तपस्विनी मानकर 'माता तपस्विनी' कहकर उन्हें प्रणाम करने लगे। श्रद्धालुओं को वे धर्म उपदेश के साथ ही क्रांति का संदेश भी देती थीं। श्रद्धालु लोग भेंट में जो धन देते, उसे एकत्र कर हथियार बनाने का कारखाना खोला और हथियार बनाकर क्रांतिकारियों को बांटे जाने लगे। उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश में पूरी क्रांति भावना उन्हीं के प्रयत्नों से हुई। वे घोड़े पर सवार हो अंग्रेजों की छावनियों में छापामार युद्ध करतीं और अदृश्य हो जाती। उनके कुछ साथी पकड़े गए और पेड़ों पर फांसी पर लटकाए जाने लगे। पर वे अंग्रेजों की आंखों में धूल झोंककर नेपाल चली गईं। कुछ समय बाद कलकत्ता वापिस आकर एक पाठशाला 'महाकाली-विद्यालय' नाम खोल ली और पढ़ाने के बहाने क्रांति-सन्देश देने लगी। कलकत्ते में 1901 में महात्मा तिलक आये तो वे उनसे मिलीं। उनका आदेश पाकर वे नेपाल में हथियार बनाने का कारखाना खोलकर अपना काम करती रहीं। यह कारखाना टाइलें बनाने के नाम पर खोला गया था—पर बनते हथियार थे। 1905 में वंग भंग आंदोलन में भी उन्होंने सहायता दी। अन्त में 1907 में कलकत्ते के ही गुप्तवास में इनकी मृत्यु हुई।

1897 के बाद भारत में जो फिर आतंकवाद की चिनगारी सुलगने लगी थी, सो उन्हीं के प्रयत्नों से। उन्होंने नेपाल-भारत सीमा पर बम बनाने का कारखाना खुलवाया और एक बार फिर अंग्रेजों से मोर्चा लेने की तैयारी की। परन्तु अंग्रेज सरकार को बम *फैक्टरी का सूत्र मिल गया जिससे वह प्रयत्न भी असफल हुआ। जिस समय पुलिस बम* फैक्टरी के सूत्रधारों की खोज कर रही थी, माताजी कलकत्ते की प्रसिद्ध महाकाली पाठशाला में रह रही थीं, जिसका उद्देश्य भारतीय स्त्रियों में शिक्षा प्रसार करना था।

सिस्टर निवेदिता

टायरोन के डंगनन नगर में 1867 में एक आयरिश पादरी एस० आर० नोबुल के घर इस होनहार बालिका ने जन्म लिया। बालिका बालपन से ही अपनी कुशाग्र बुद्धि और सेवा भाव के कारण अपने धार्मिक पिता की प्रिय हो गई। शिक्षा समाप्त करने के बाद यह एक स्कूल में अध्यापिका हो गई, बाद में उसने अपना स्वयं एक स्कूल विम्बलेडन में खोल लिया। जब वह अपने पूर्ण यौवन के 28वें वर्ष में थी, उसे स्वामी विवेकानन्द के दर्शन करने और उनके भाषण सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। तभी से वह स्वामी विवेकानन्द को अपना गुरु मान उनकी शिष्या और भक्त हो गईं। इसके तीन वर्ष बाद विवेकानन्द की आज्ञा पाकर वह भारत चली आईं और कलकत्ते रहकर अपने गुरु का सन्देश लोगों को देने लगीं। उन्होंने भारतीय संस्कृति को अपना लिया। वे रामकृष्ण मिशन की सक्रिय सदस्य बन गईं। भारत के बच्चों और स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार कर भारतीय संस्कृति का महत्व समझाने लगीं। उन्होंने उनसे विदेशी वस्तुओं का त्याग और भारतीय वस्तुओं को अपनाने का अनुरोध किया। रामकृष्ण मिशन द्वारा दीन-दुखियों की सेवा करने में वे सदैव तत्पर रहती थीं। जब बंगाल में 1906 में भयंकर अकाल पड़ा था वे दिन-रात अकाल-पीड़ितों को सहायता पहुंचाने में लगी रहीं।

वे आयरिश थीं, उनके स्वदेश आयरलैंड ने अपनी स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए इंग्लैंड से जो संघर्ष किया था, उसका प्रभाव उन पर पूर्ण रूप से था, इसलिए बंगाल में भारतीय आतंकवादी दल भारत की स्वाधीनता के लिए जो प्रयत्न कर रहे थे, उसमें भी उन्होंने सहायता दी। वे अरविन्द घोष से भी मिलीं, जो उन दिनों बड़ौदा को केन्द्र बनाकर पश्चिमी भारत में आतंकवाद फैला रहे थे। पांच आतंकवादियों की जो कार्यकारिणी समिति थी, उसमें अरविन्द घोष और निवेदिता भी सदस्य थे। स्वामी विवेकानन्द की मृत्यु के बाद उन्होंने रामकृष्ण मिशन से अपने सम्बन्ध तोड़ दिए और अधिक समय भारतीय क्रांतिकारियों के कार्य में लगाने लगीं। बंगाल की एक और तेजस्विनी नारी सरला देवी भी क्रांतिकारी थीं। ये दोनों स्त्रियां स्वामी विवेकानन्द के कार्य-स्थल बेलूर मठ में मिलकर विचार-विमर्श किया करती थीं।

1905 में बनारस के कांग्रेस अधिवेशन के कार्य का आरम्भ 'वन्देमातरम्' प्रथम बार गाकर हुआ था, उस अधिवेशन में निवेदिता सम्मिलित हुईं। उसी वर्ष यह प्रयत्न किया गया कि बंकिमचन्द्र की अमर रचना 'आनन्द मठ' में वर्णित 'विचरण करने वाले राजनैतिक संन्यासियों के दल' फिर बनाये जायें। अरविन्द घोष, गोपाल कृष्ण गोखले और निवेदिता उन दलों से सम्बन्धित थे। अरविन्द ने 'भवानी मन्दिर' और निवेदिता ने 'मां काली' शीर्षक पर्चे लिखकर प्रचारित किए। 'मां काली' पर्चे में निवेदिता ने उद्घोषित किया—"काली मां के एक ही वज्रप्रहार में संसार का संहार करने की शक्ति है। योजना का प्रश्न मत करो। तीर जब कमान से छोड़ा जाता है, तब योजना पर विचार नहीं किया जाता। योजना स्वतः प्रकट होती जाती है।"

बंगाल के क्रांतिकारियों का प्रथम संगठन अनुशीलन समिति का उद्देश्य 'तलवार से विध्वंश' था। निवेदिता इस उद्देश्य से सहमत थीं।

निवेदिता की मृत्यु 1911 में हुई।

सरला देवी

सरला देवी का जन्म 1872 ई० में हुआ। उनके पिता का नाम जानकीनाथ और माता का नाम स्वर्णमयी था, जो रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बड़ी बहन थी। बी० ए० पास करने के बाद उन्होंने 'भारती' पत्रिका का सम्पादन भार संभाल लिया जिससे वे राजनैतिक जीवन में आ गईं। कलकत्ते में 17वें कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर उन्होंने बड़े उत्साह से राष्ट्रीय गायन किया था।

1902 में अरविन्द घोष ने बड़ौदा से जितेन्द्रनाथ बनर्जी को पत्र देकर सरला देवी से कहलाया कि वे बंगाल में उनके क्रान्तिकारी आन्दोलन को चलाएं, जिससे वे पूर्वी और पश्चिमी भारत में साथ-साथ क्रान्ति व्यापक कर सकें। कोल्हापुर में सरला देवी के मामा सत्येन्द्रनाथ ठाकुर आई० सी० एस० की नियुक्ति थी, वे उनके पास जाकर कुछ दिन रहीं। जब कोई व्यक्ति बम शक्ति का अनुगत हो जाता है तब वह शौर्य के कार्यों को पसन्द करता है। शोलापुर में दशहरे के उत्सव पर महाराष्ट्रियों द्वारा शारीरिक शौर्य के प्रदर्शन से वह बहुत प्रभावित हुई। वहां मनाए जाने वाले गनपति और शिवाजी उत्सवों से प्रेरित होकर उन्होंने बंगाल में भी वीरअष्टमी, प्रतापदित्यव्रत और काली पूजा उत्सव प्रचलित किए। काली पूजा महाराष्ट्र की भवानी पूजा के समान उत्सव था।

सरला देवी मैमनसिंह की सुहृद समिति में थी। यह समिति आरम्भ में सामाजिक सुधार कार्यों के लिए संगठित की गई थी, परन्तु अरविन्द घोष, विपिनचन्द्रपाल, और सरला देवी के प्रभाव से शीघ्र ही पहला मार्ग त्यागकर गुप्त राजनैतिक कार्य करने लगीं।

सरला देवी ने समिति के सदस्यों में, सैनिक क्षमता बढ़ाने के निमित्त, कुछ धार्मिक अनुष्ठान आरम्भ किए। मैमनसिंह को केन्द्र बना कर कलकत्ता में व्रती-समिति और शक्ति समिति, तथा ढाका में सेवक समिति खोली गई। बाक्सिंग, कुश्ती, कटार और तलवार चलाना इनका दैनिक अभ्यास हो गया। अनेक सदस्य हथियार, कटार, तलवार बांधकर चलने लगे।

यद्यपि वे क्रान्तिकारी कार्यों के लिए सदस्यों का संगठन बड़ी कठोरता से करती थी; परन्तु व्यक्तिगत हत्या और द्रोह उन्हें मान्य नहीं था। एक बार जितेन्द्रनाथ बनर्जी ने पार्टी के लिए रुपया प्राप्त करने के लिए एक वृद्धा के घर डाका डालने की बात उनसे कही, परन्तु उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया। उन्हें बताया गया कि तिलक ने ऐसा करने का आदेश दिया है। वह तुरन्त तिलक से पूछने के लिए बंगाल से पूना आईं। तिलक

ने यद्यपि इस प्रकार की राजनैतिक डकैतियों का विरोध किया, परन्तु इष्ट-सिद्धि के लिए होने वाली इस डकैती के लिए खुल कर विरोध नही किया। वह डकैती तो की गई, परन्तु इसके बाद सरला देवी के कठोर अनुशासन के कारण बहुत वर्षों तक कोई डकैती नहीं की गई।

लाहौर हाईकोर्ट के प्रसिद्ध वकील और कांग्रेस कार्यकर्त्ता रामभजदत्त चौधरी से उन्होंने 1905 में विवाह किया। जितेन्द्रनाथ बनर्जी भी इधर आकर पंजाब और फ्रन्टियर में क्रान्तिकारी केन्द्र खोलने लगे। लोगों में क्रान्तिकारी भाव उत्पन्न करने की जितेन्द्रनाथ बनर्जी में अद्भुत क्षमता थी। सरदार भगतसिंह के पिता और चाचा को भी उन्होंने प्रभावित किया। डॉ० यदुगोपाल मुखर्जी पंजाब के किसानों, विद्यार्थियों, मध्यवर्गीय जनों तथा मजदूरों में क्रान्ति की आग सुलगाने के उद्देश्य से पंजाब के मैडिकल कालिज मे आ गए।

जब पंजाब हाईकोर्ट ने रामभजदत्त चौधरी के 'हिन्दुस्तान' नामक उर्दू पत्रिका के सम्पादक होने पर आपत्ति की, तब सरला देवी उसकी सम्पादक बन गईं। उसका अंग्रेजी संस्करण भी निकालने लगीं। अब बंगाली के 'भारती', उर्दू और अंग्रेजी के हिन्दुस्तान तीन पत्रों का सम्पादन भार उनके ऊपर था। सरदार अजीतसिंह के साथ वे गरम भाषण देती फिरती थीं, पंजाब के युवकों पर उनका भारी प्रभाव पड़ने लगा।

पंजाब में रोलट एक्ट लागू होने पर पंजाब निवासियों में रोष छा गया। सरला देवी और उनके पति उसके विरोध में भाषण देने लगे। सरकार ने पति को गिरफ्तार कर देशनिकाले की सजा दी, परन्तु सरला देवी को सरकार ने स्त्री के गिरफ्तार होने पर आन्दोलन बढ़ जाने की आशंका से गिरफ्तार नही किया। महात्मा गांधी जब जलियांवाला बाग के गोली कांड के बाद वहां गए, तब सरला देवी ने उन्हें अपना आतिथ्य दिया। गांधी जी के इस प्रवास ने सरला देवी का मन क्रान्ति की ओर से फेरकर कांग्रेस की ओर कर दिया। 1929 में वे कांग्रेस की सदस्य बन गईं और मृत्यु-पर्यन्त 1945 तक कांग्रेस का कार्य करती रहीं।

सुहासिनी

सुहासिनी, (पुतुदी) का जन्म खुलना में हुआ। उन्होंने ढाका के ईडन स्कूल और कालेज में शिक्षा पाई। 1920 में कलकत्ता में अपर सरक्यूलर रोड के 'स्विमिंग पूल' घूमते हुए कमला दास गुप्त की पैनी आंखों ने सुहासिनी को देखा। उन्होंने सुहासिनी को अपने साथी रसिकलाल दास की शिष्यता में रखकर क्रान्ति की शिक्षा दी। पूर्ण शिक्षित होने पर उन्हें जीवन के सबसे कठिन कार्य करने पड़े।

चटगांव केन्द्र के कुछ प्रमुख नेता अनन्तसिंह, लोकनायक बाल, आनन्द गुप्त, और

जीवन घोषाल जब कलकत्ता सुरक्षा पाने पहुंचे, भूपेन्द्र कुमार दत्त ने रसिकलाल को उनकी रक्षा और गुप्त वास का भार सौंपा। निश्चय किया गया कि शशिधर आचार्य चन्द्र नगर में एक मकान किराए पर लेकर रहें जहां इन नेताओं को रखा जा सके, परन्तु एक अविवाहित व्यक्ति को मकान किराए पर मिलना असम्भव था। सुहासिनी को उनकी पत्नी बनने का नाटक करना पड़ा। मकान लिया गया और उन नेताओं को सुरक्षित गुप्तवास मिल गया।

परन्तु 1 सितम्बर, 1930 की प्रातः नृशंस पुलिस अफसर चार्ल्स टेगर्ट की कमान में एक भारी पुलिस दल ने क्रान्तिकारियों के आवास को चारों ओर से घेर लिया। राइफल और पिस्तौलों का खुलकर प्रयोग हुआ। घोषाल गोली लगने से बलिदान हुए, शेष तीनों को पकड़कर हथकड़ी-बेड़ी से जकड़ दिया गया। टेगर्ट ने सुहासिनी के थप्पड़ मारा, पुलिस ने उसे और उसके 'पति को भारी यातनाए दीं, परन्तु उन्होंने सहन किया और कुछ भी भेद पुलिस न पा सकी। दोनों को पकड़कर बन्द कर दिया गया। 1938 में सुहासिनी को बन्दीघर से छोड़ा गया। बाहर आकर वे कम्युनिस्टों की ओर झुकी, परन्तु उन्हें फिर पकड़कर बन्द कर दिया गया। 1945 में वे छूटीं।

शान्ति और सुनीति

शान्ति घोष का जन्म 1916 में वारीसाल में हुआ था, उनके पिता कोमिल्ला में प्रोफेसर थे। सुनीति का जन्म 1917 में तिपेरह मे हुआ। ये दोनों सहेलियां फैजुन्निसा गर्ल्स स्कूल में पढ़ती थीं। स्कूल जीवन में ही वे क्रान्तिकारियों के दल में सम्मिलित हो गईं। उनमें क्रान्ति भावनाएं यहां तक बढ़ीं कि उन्होंने 1931 में अपना पृथक् संगठन 'छात्र-संगठन' बना लिया। भाला खुरपी चलाने, और पिस्तौल से निशाना साधने के अभ्यास 'मैनामती पहाड़ियों' में किए जाते थे। गार्लिक; सिम्पसन की हत्या, चटगांव शस्त्रागार की लूट आदि घटनाओं ने इन किशोरियों के हृदय में साहस का संचार भर दिया। वे कुछ करने को उतावली हो उठीं। अन्त में दल के प्रमुख ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर उन्हें हथियार दिए और कोमिल्ला के अंग्रेज जिला मजिस्ट्रेट स्टेवेन्स को मार टालने का आदेश दिया। अभी वे 9वीं श्रेणी में पढ़ रही थीं।

14 दिसम्बर, 1931 की एक प्रातः एक गाड़ी उन्हें घर से लेने पहुंची, जिसमें बैठकर वे 10 बजे जिला मजिस्ट्रेट के बंगले पर आईं। उन्होंने मजिस्ट्रेट से भेंट करने को कहा, परन्तु भेंट करने की आज्ञा नहीं मिली। निराश वे लौट आईं। अगले दिन वे फिर गईं और भेंट करने का प्रयोजन विस्तार से बताया। इस बार मजिस्ट्रेट ने उन्हें भेंट करने की आज्ञा दे दी। उन्होंने मजिस्ट्रेट को बताया कि वे एक तैराकी प्रतियोगिता कर रही हैं, उसकी अध्यक्षता मजिस्ट्रेट महोदय करें। मजिस्ट्रेट का ध्यान जब शान्ति से बातें

करने की ओर था, सुनीति ने साड़ी के भीतर छिपा रिवाल्वर निकाल लिया और मजिस्ट्रेट पर चला दिया।

साहब के नौकर दौड़े आए और लड़कियों को गिरफ्त में ले लिया गया। बड़ी वीरता से उन्होंने अपना कार्य स्वीकार किया जिससे उन्हें आजन्म कारावास का दण्ड दिया गया। भारत में क्रान्तिकारी स्त्रियों द्वारा एक उच्च अंग्रेज अफसर की इस प्रकार हत्या कर डालने का महत्वपूर्ण श्रेय इन दिनों किशोरियों को प्राप्त हुआ।

सरकार से उन्हें रिहा कर देने के लिए जनता ने आन्दोलन किया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर और महात्मा गांधी के प्रयत्नों से उन्हें 1939 में रिहा कर दिया गया। सुनीति डाक्टर बनीं, शान्ति साहित्य की ओर झुकीं और बंगाल-लेजिस्लेटिव असेम्बली की सदस्य बनीं। दोनों ने विवाह भी किया।

वीना दास

बीनादास का जन्म 1911 में हुआ। अभी वह 17 वर्ष की किशोरवय की छात्रा ही थीं कि उन्होंने 'सायमन कमीशन वहिष्कार आन्दोलन' में भाग लिया। उन्होंने बेथ्यून कालिज, जहां वे पढ़ रही थीं, अन्य साथी लड़कियों के साथ पिकेटिंग किया। इसी वर्ष कलकत्ते में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुए कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर अपनी बड़ी बहिन कल्याणी के साथ वालन्टियर बन कर बहुत अच्छा कार्य किया। छात्र जीवन में उनका परिचय दो क्रान्तिकारी सुहासिनी और शान्तिदास गुप्ता से हुआ और वे उनके प्रभाव में आ गईं।

बीना ने अपना अलग क्रान्ति संगठन बनाया और बम बनाने चलाने की शिक्षा ली। यद्यपि उन्हें अभी पिस्तौल चलाने की भलीभांति शिक्षा नहीं दी गई थी, उन्हें कन्वोकेशन के अवसर पर डिग्री ग्रहण करते समय गवर्नर को शूट करने का कार्य दिया गया। इस समय वह डिओसेसियन कालिज में बी० टी० की छात्रा थी। वह पिस्तौल लेकर कालिज होस्टल में आ गईं।

6 फरवरी 1931 के दिन कन्वोकेशन समारोह हुआ। जब गवर्नर अपना भाषण पढ़ने खड़े हुए, बीना ने तुरन्त उन पर पिस्तौल चला दी। निशाना चूक गया, भगदड़ मच गई और उन्हें घेर कर गिरफ्तार कर लिया गया। केस चलने पर उन्होंने अदालत में अपने कार्य को गर्व के साथ स्वीकार किया। उन्हें 9 वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड दिया गया, परन्तु सात वर्ष बाद ही वह जेल से छोड़ दी गईं। उन्होंने 1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भाग लिया और फिर जेल गईं।

इस बार जेल से छूट कर वे राजनीति से उदास हो गईं। भारत विभाजन के दिनों में उन्होंने शरणार्थियों और पीड़ितों की बहुत सेवा सहायता की। अन्त में उन्होंने एक अन्य क्रान्तिकारी साथी ज्योति भौमिक से विवाह कर गृहस्थ जीवन अपनाया।

प्रीतिलता

प्रीतिलता वाडेडर का जन्म चटगांव में एक गरीब परिवार में हुआ। बालपन से ही उनकी बुद्धि बहुत तेज थी। मैट्रिक परीक्षा पास करके वे उच्च शिक्षा प्राप्त करने ढाका आईं, जहां स्त्री क्रांतिकारिणी का केन्द्र था। कुछ समय वहां रहकर वे कलकत्ता बेथ्यून कालेज में बी० ए० में भर्ती हुईं। कालेज के ग्रीष्मावकाश में चटगांव के क्रांतिका से उनका सम्बन्ध रहता था। अलीपुर जेल में बन्द रामकृष्ण विश्वास से वह मिलती रहती थी। यह उनका कौशल ही था कि पुलिस की सख्ती के होते हुए भी वह 40 बार उनसे जेल में मिलीं।

1932 में बी० ए० पास करने के बाद वह चटगांव के नन्दन काहन गर्ल्स स्कूल की प्राध्यापिका बन कर आईं। इसी प्रवास में कल्पना दत्त ने उन्हें दल के नायक मास्टर दा से दलघाट गांव में भेंट कराई। दूसरी बार जब वे दलघाट गांव में एक विधवा महिला सावित्री देवी के घर पहुंचीं, पुलिस ने उन्हें घेर लिया। उस समय वहां सूर्यसेन, निर्मलसेन और अपूर्वसेन भी उपस्थित थे। सबने निकल भागने का प्रयत्न किया, परन्तु निर्मल और अपूर्व पुलिस की गोली से गिर पड़े और सूर्यसेन तथा प्रीति भागकर बच निकले। अगले दिन प्रीति भली लड़की की भांति घर में घुसी कि पुलिस तलाशी के लिए आ पहुंची। तलाशी में कुछ नहीं मिला, न प्रीति ने कोई भेद प्रकट किया, परन्तु वह समझ गई कि अब अधिक देर तक मैं पुलिस से बच नहीं सकती। वह मास्टर दा के साथ भूमिगत हो गई। पुलिस ने उसके लिए पांच सौ रुपए तथा सूर्यसेन के लिए दस हजार रुपए इनाम घोषित किया।

अन्त में प्रीति को 'पहाड़तली योरोपियन क्लब' पर दल के कुछ सदस्यों सहित आक्रमण करने का नेतृत्व करने भेजा गया। दो सदस्य कोचवान का वेश धारण कर प्रीति सहित घोड़ा गाड़ी में सदर दरवाजे से क्लब में प्रविष्ट हुए, कुछ पीछे की राह से क्लब में पहुंचे। रात के 11-12 बजे का समय था, उस समय वहां 40 योरोपियन थे। टाइम-बम ठीक समय पर फटा, और भी बम फेंके गए, पिस्तौल दागी गईं। योरोपियनों में भगदड़ और चीख-पुकार मच गई। अनेक मारे गए। एक्शन करके दल के सब सदस्य तो बचकर भाग निकले, परन्तु प्रीति न जा सकी। अपना अन्त देख उसने अपना कीमती पिस्तौल एक साथी को देते हुए आदेश दिया—क्षण भर का भी विलम्ब न कर तुम सब भाग जाओ। दुश्मन पर गोली दागते जाओ और उसे परास्त करो। मित्रो जाओ। सबको शुभकामनाएं, मास्टर दा को प्रणाम।

यह कहकर उसने चोली में से 'पोटाशियम साइनाइट' चाट लिया और वहीं ढेर होकर बलिदान हो गई।

कल्पना दत्त

इस निर्भय लड़की का जन्म 1913 में हुआ। उसने मैट्रिक पास करके 1919 में बेथ्यून कालेज में बी० एस-सी० में प्रवेश लिया। यहां वे कल्याणकारी दास के छात्र संघ की सदस्य बनीं और चटगांव के क्रांतिकारियों के सम्पर्क में आई। मई 31 में उन्होंने नायक मास्टर दा से प्रथम बार भेंट की। कलकत्ते में उन्होंने बम बनाने के रसायन संग्रह किए और चटगांव के अपने मकान में स्वयं ही गन कॉटन बम बनाए। पुलिस को सूत्र लगा और वह निगरानी करने लगी। उसे चटगांव के कालेज में ही पढ़ने का आदेश दिया गया, उसे अन्य कहीं भी जाने की आज्ञा नहीं थी। इस प्रकार बन्धन में फंसकर एक रात वह युक्ति से मास्टर दा से मिली। उसने और प्रीति ने साथ-साथ पिस्तौल चलाने का अभ्यास किया। निश्चय हुआ कि दोनों लड़कियां प्रीति और कल्पना पहाड़तली के योरोपियन क्लब पर आक्रमण का नेतृत्व करेंगी, परन्तु कल्पना एक सप्ताह पहले ही, जब वह मर्दाने भेष में मास्टर दा के भूमिगत स्थान से आ रही थी, गिरफ्तार कर ली गई। उसे आवारागर्दी के जुर्म में एक महीने तक बन्द रखा गया, फिर जमानत पर छोड़ दिया गया। जमानत पर छूटते ही वह भूमिगत हो गई।

एक दिन जब वह एक मित्र के यहां सूर्यसेन तथा दूसरे बृजेनसेन के साथ बैठी थी, विश्वासघाती नेत्रसेन ने 10 हजार के इनाम पाने के लालच में पुलिस को मुखबिरी कर दी। यह इनाम मास्टर दा को पकड़वाने के लिए था, परन्तु वह तो वहां थे ही नहीं। सूर्यसेन और बृजेनसेन पकड़े गए, परन्तु कल्पना बचकर भाग गई। वे तीन महीने तक लुकती-छिपती रही पर अन्त में धरिया गांव में फौज के एक दस्ते ने उन्हें पकड़ लिया।

उन्हें पकड़कर चटगांव शस्त्रागार डकैती केस (द्वितीय) चलाया गया जिसमें सूर्यसेन और तारकेश्वर दस्तीदार को फांसी तथा कल्पना दत्त को कालेपानी की सजा दी गई, जहां से वे अगस्त 43 में छोड़ी गईं। जेल से निकलकर उन्होंने प्रसिद्ध कम्युनिस्ट पी० सी० जोशी से विवाह किया।

उज्ज्वल

उज्ज्वल का जन्म 1914 में ढाका में हुआ। उनके पिता एक जमींदार थे जिनका क्रांतिकारियों से सम्बन्ध था।

14 वर्षीय उज्ज्वल अपने पिता के आदेश से क्रांतिकारियों को हथियार बम आदि पहुंचाया करती थी। एक बार अपने घर से मित्र के घर जाने का बहाना कर वह क्रांतिकारियों के साथ कलकत्ता आई। उनका लक्ष्य दार्जिलिंग में गवर्नर की पिस्तौल से हत्या करना था। उत्साही किशोरों का यह दल गवर्नर को रेसकोर्स में 'गवर्नर्स कप रेस, के दिन

मारना चाहता था। वे दार्जिलिंग पहुंचे और होटल में ठहर गए।

भवानी भट्टाचार्य और रवि बनर्जी अंग्रेजी वेशभूषा में सज्जित हो हथियारों को वस्त्रों में छिपा कर अपने होटल से निकले। मनोरंजन बनर्जी और उज्ज्वल उनसे कुछ समय बाद निकले। भवानी और रवि कुर्सियों पर अपने निशाने की सीध लेकर जा बैठे। मनोरंजन और उज्ज्वल उन्हें सुरक्षित बैठा देखकर स्टेशन आए और कलकत्ते जाने वाली ट्रेन से रवाना हो गए। सिलिगुड़ी स्टेशन पर पुलिस ने उनके डिब्बे को घेर लिया, क्योंकि उसे रंगीन साड़ी और काला चश्मा पहिने एक लड़की की तलाश थी, परन्तु उज्ज्वल ने साड़ी बदल ली थी और चश्मा भी उतार डाला था। इस प्रकार वह बचकर कलकत्ता सुरक्षित पहुंच गई। कलकत्ते में वह शोभारानी दत्त के मकान में गिरफ्तार हुईं। भवानी और रवि को फांसी तथा उज्ज्वल को आजन्म कारावास की सजा दी गई।

जेल से 1939 में छोड़ा गया। 1942 में फिर जेल भेज दिया गया और 46 में छोड़ा गया। जेल से छूटने पर नेताजी सुभापचन्द्र बोस के फार्वर्ड ब्लाक के संगठन में लग गईं। भारत विभाजन के समय नोआखाली में शरणार्थियों और दुखियों की सहायता में जुटी रहीं। अब वे सामाजिक कार्य करने लगी थीं, उन्होंने 'पल्ली निकेतन' नामक संस्था इसी कार्य के लिए संगठित की। 1948 में क्रांतिकारी भूपेन्द्र किशोर रक्षित राय से उन्होंने विवाह किया।

सरोजिनी नायडू

कविता का प्राण है रस और भारतीय ऋषियों ने इस रस को परमात्मा का आनन्द-स्वरूप माना है। इससे यह भली भांति सिद्ध होता है कि कवि के पवित्र महिमामय आसन पर आसीन होना परम पुण्य है। स्वर्ग और संसार की अन्य समस्त विभूतियों के समान यदि इस पुण्य विभूति का भी उपयुक्त उपयोग किया जाय, तो उससे देश, धर्म समाज की सेवा और सहायता की जा सकती है। कविता हृदय की भाषा है, इसीलिए वह मानव हृदय पर पूर्ण प्रभाव डालने में समर्थ होती है। भावों के सुन्दर शिखर पर स्थित होकर, आनन्द के उज्ज्वल आवेश में, जब दिव्य कवि जनता को दिव्य सन्देश सुनाता है, तब जनता अपूर्व स्फूर्ति और आवेश के साथ उज्ज्वल आदर्श के पथ पर प्रभावित होने लगती है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि कवि ने पराजित को विजय दिलाई है, निराश को उत्साह बंधाया है, दलित को उठा कर खड़ा किया है, प्रसुप्त को जाग्रत किया है और उद्भ्रान्त को सन्मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया है। मानव इतिहास के अध्ययन करने से यह पता चलता है कि जब ईश्वर पददलित, पराजित एवं प्रसुप्त जाति का उद्धार करना चाहते हैं, तब वह उनके बीच में एक ऐसी आत्मा उत्पन्न करते हैं, जो अपनी कविता से, अपनी वज्र-गम्भीर वाणी से, अपनी कोमल, किन्तु स्फूर्तिमयी पदावली

से उनमें एक अभूतपूर्व जागृति उत्पन्न कर देती है और विजय की ओर ले जाती है। पराधीन भारत के युग में भी एक ऐसी महिमामयी आत्मा भारत-कोकिला सरोजिनी नायडू आविर्भूत हुईं।

सरोजिनी देवी की जन्मभूति दक्षिण हैदराबाद थी, और उनका जन्म-दिन था 13 फरवरी सन् 1871 उनके पिता का नाम था डॉक्टर अघोरनाथ चट्टोपाध्याय, उनके पूर्वज ब्रह्मनगर, (बंगाल) के रहने वाले थे। अघोरनाथ स्वयं धुरन्धर विद्वान थे, सन् 1877 में उन्होंने एडिनबरा के विश्वविद्यालय से विज्ञानाचार्य की उपाधि प्राप्त की थी। उसके उपरान्त उन्होंने बॉन में कुछ बाल्यकाल तक अध्ययन किया था। भारत लौटने पर उन्होंने दक्षिण हैदराबाद में निजाम कालेज की स्थापना की और आजन्म शिक्षा के क्षेत्र में काम करते रहे। इन्हीं विज्ञान पिता की ज्येष्ठ पुत्री सरोजिनी हुईं थीं। उन्होंने अपने पिता के अनेक गुणों को प्राप्त किया। जिस वंश में सरोजिनी का जन्म हुआ, वह सदा से ही अगाध विद्वत्ता और असीम ज्ञान के लिए प्रसिद्ध रहा। अघोरनाथ धुरन्धर विद्वान थे। उनमें ज्ञान की गहरी प्यास थी। वे रात-दिन अध्ययन करते रहते थे। उनका अधिकांश समय अपनी विज्ञानशाला ही में व्यतीत होता था।

अपने पिता के विषय में स्वयं सरोजिनी ने इस प्रकार लिखा है—"मेरा अनुमान है कि समस्त भारतवर्ष में ऐसे कदाचित् कुछ ही आदमी होंगे, जो विद्वत्ता में मेरे पिता से अधिक हों और ऐसे तो बहुत ही कम होंगे जिन्हें लोग इतना प्यार करते हों।"

अघोरनाथ ने विज्ञान की उपासना को अपने जीवन का प्रधान लक्ष्य बना लिया था। वे दुखी और दरिद्र की सहायता के लिए सदा मुक्त-हस्त रहते थे। सरोजिनी ने लिखा है कि मेरे पिता में वैज्ञानिक रहस्यों के जानने की जो प्रबल आकांक्षा थी, वही मेरे हृदय में सौन्दर्य की उपासना की वृत्ति बनकर प्रतिष्ठित हो गई। पिता ने विज्ञान के क्षेत्र में जो परम ज्ञान प्राप्त किया था, पुत्री ने कविता के कानन में उसी ज्ञान को आदि-रस के रूप में उपलब्ध किया।

अघोरनाथ कन्या को भी अपने ही समान विज्ञान की आचार्य बनाना चाहते थे, पर ईश्वर ने तो इस बालिका को किसी और ही उद्देश्य से भेजा था। इसीलिए बाल्यकाल ही से सरोजिनी के हृदय में कविता की सरिता प्रवाहित होने लगी थी और जब वह ग्यारह वर्ष की अवस्था में गणित के एक जटिल प्रश्न को लगाने की व्यर्थ चेष्टा कर रही थीं, उसी समय सहसा उन्होंने एक कविता लिख डाली। गणित का प्रश्न उस कविता के प्रवाह में विलीन हो गया। उसी दिन से, ग्यारहवें वर्ष के उस प्रभात से सरोजिनी का कवित्वमय जीवन प्रारम्भ हुआ। 13 वर्ष की अवस्था में उन्होंने 1300 पदों की 'झील की रानी' नामक एक विशाल कविता लिख डाली। इतना ही नहीं, उस बालिका ने 2000 पंक्तियों का एक नाटक भी लिख डाला और यह नाटक केवल डॉक्टर के इस कथन को अप्रमाणित करने के लिए लिखा गया था कि सरोजिनी बीमार हैं। उसके बाद किशोरावस्था ही में उन्होंने न मालूम कितनी कविताएं और लेख लिख डाले। यह दैवी विभूति का ही चमत्कार है, नहीं तो जिस अवस्था में बालक-बालिकाएं इधर-उधर खेलती-कूदती फिरती हैं, उस अवस्था में सरोजिनी सुन्दर छायामय निकुंजों में बैठकर वसन्त-

कोकिला के स्वर में कैसे कूक उठती ?

सरोजिनी ने अपनी 12 वर्ष की अवस्था में मद्रास विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा पास करली थी। उसके उपरान्त ऊंची शिक्षा प्राप्त करने के लिए वे सन् 1895 में इंगलैंड भेजी गई और तीन वर्ष तक वहां रहकर किंग्स कालेज लण्डन में शिक्षा प्राप्त की। कुछ समय तक वे गिरटन में भी अध्ययन करती रहीं, परन्तु उसी समय उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। बाल्यकाल से ही सरोजिनी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था। अपने स्वास्थ्य को सुधारने के लिए उन्होंने इटली की यात्रा की। इटली अपनी प्रकृति-माधुर्य के लिए प्रसिद्ध है। इटली दान्ते, वरजिल और पेट्रीं आर्क जैसे महाकवियों और दार्शनिकों की जन्मभूमि है। इटली राफेल माइकेल और अंजिलो जैसे ललित कला विशेषज्ञों की जननी है। प्रकृति के मधुर सौन्दर्य की वह लीलाभूमि है, वहां का आकाश उज्ज्वल, जलवायु स्वास्थ्यप्रद और पृथ्वी ललितमयी है। सुन्दरी इटली ने सरोजिनी के हृदय कमल को अपने सरस माधुर्य से, विमल विलास से और विपुल विभूति से उत्फुल्ल कर दिया और सरोजिनी की रस-भारती और भी मधुर स्वर में गान करने लगी। इटली ने सरोजिनी की प्रकृत कविता को और भी ललित एवं कोमल बना दिया। सरोजिनी का कोमल मन इटली की अभिनव सुन्दरता पर विमुग्ध होकर भाव और रस की तरंग-मालाओं से उद्वेलित होने लगा।'

सन् 1898 के सितम्बर में सरोजिनी हैदराबाद लौट आई और दिसम्बर में डॉक्टर नायडू के साथ विवाह बन्धन में आबद्ध हो गईं। डॉक्टर नायडू यद्यपि अब्राह्मण थे, परन्तु सरोजिनी ने उनके साथ विवाह कर अपनी सुधार-प्रिय प्रकृति का उज्ज्वल परिचय देकर उन्होंने सुधारक के साथ अपनी सहानुभूति प्रदर्शित की।

दक्षिण हैदराबाद में रहने के कारण उन्हें इस्लाम धर्म की विशेषताओं और मुस्लिम संस्कृति से विशेष जानकारी हो गई और वहां के समाज में वे प्रमुख नेत्री के समान पूज्यनीय हो गईं। परदे के पीछे रहने वाली मुस्लिम महिलाओं पर भी उनका यथेष्ट प्रभाव पड़ा और मुस्लिम नारियां उन्हें विशेष आदर और पूज्य दृष्टि से देखने लगीं। उनकी कविता में मुस्लिम महिलाओं की तेजस्विता और पवित्रता का यथेष्ट समावेश हुआ। समाज की सेवा और विपत्ति-ग्रस्त की सहायता करने में सरोजिनी को आनन्द प्राप्त होता था। हैदराबाद में जो भयंकर बाढ़ उस वर्ष आई थी, सरोजिनी ने रात-दिन विपत्ति-ग्रस्त नर-नारियों की सेवा की और उन्हें यथाशक्ति सहायता पहुंचाई। इन महिमामयी का हृदय सदा वात्सल्यरस से ओत-प्रोत रहता था। एक प्रकार की मधुर सुन्दर मुस्कान उनके मुख पर लीला करती रहती थी।

सरोजिनी प्रकृति-कवि थीं, फिर भी उन्होंने अपनी कविताओं से जनता में भारतीय स्वतन्त्रता की भावना उत्पन्न की। रवीन्द्रनाथ की कविता में जो मधुर आध्यात्मिक भावों की सरिता प्रवाहित होती है, वह इस कवयित्री की वाणी में भले ही उतने परिमाण में न हों, पर यह निर्विवाद है, कि सरोजिनी की कवित्वमयी वाणी ने भारतीय स्वतन्त्रता का सुन्दर सन्देश भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक परिव्याप्त किया। जिन्हें उनकी वक्तता सुनने का अवकाश मिला, वे जानते हैं कि उनकी वाणी में भारतीय आशाओं,

आकांक्षाओं और अभिलाषाओं का जैसा सुन्दर और मधुर प्रस्फुटन होता था, वैसा किसी नेता, किसी कवि, किसी वक्ता एवं किसी लेखक की रचनाओं और वक्तृताओं में नहीं हुआ। उन्होंने समय-समय पर जो कविताएं लिखी हैं, उनके तीन संग्रह प्रकाशित हुए हैं। एक का नाम है 'स्वर्ण-द्वार', दूसरे का 'काल विहंग' और तीसरे का 'हत-पक्ष'। इन तीनों ग्रन्थों में जो कविताएं संकलित की गई हैं, उनमें अपूर्व माधुर्य, अलौकिक रस, और कोमल कान्त पदावली के पग-पग पर दर्शन होते हैं। बड़े-बड़े अंग्रेज समालोचकों ने मुक्त-कण्ठ से इन कविताओं की विशेषता और माधुर्य को स्वीकार किया है। यह एक साधारण बात नहीं है। विदेशी भाषा में कविता करके, विदेशी साहित्य मन्दिर में अपने लिए एक विशिष्ट स्थान प्राप्त करना बड़ी प्रतिभा और योग्यता का काम है।

सरोजिनी ने अपने विषय में लिखा है—

"जहां विश्व के विवाद और कोलाहल में मधुर प्रीति अज्ञान और अनौचित्य के साथ युद्ध करती है, वहां वीर हृदय तो संग्राम ने लिए खंग ले जाते हैं, पर मेरा तो काम है वहां पर भी राग की वैजयन्ती को ले जाना। मेरा कर्तव्य है प्रकम्पित ओष्ठों को विश्वास की शान्ति प्रदान करना, पराजित हाथ को आशा की सहायता देना और शान्ति की विजय पर, सत्य की विजय पर एवं प्रेम की विजय पर आनन्द का सम्वाद पहुंचाना।"

सरोजिनी के जीवन का यही ध्येय था। पराजित देश और पददलित जाति के लिए जिस दिव्य सहायता, सन्देश और सहानुभूति की आवश्यकता थी, उन्हीं को कविता के माध्यम से लाकर ईश्वरीय करुणा के समान उन्हें प्रदान करना ही सरोजिनी के जीवन का प्रमुख लक्ष्य रहा और इसीलिए उन्होंने कविता के सान्ध्य-राग-रंजित शान्तिमय तपोवन का परित्याग करके सन्तप्त विश्व के ठीक मध्य में, आपत्तिग्रस्त देश-भाइयों और बहिनों के बिल्कुल बीच में, कोलाहल और कलह की रत्ती भर चिन्ता न करके, अपना स्थान ग्रहण किया। शान्ति का विस्तार करना, विवाद का विध्वंस करना और विजय से आसन पर आसीन आदर्श की ओर अपने देश को ले जाना ही उनके कवि जीवन की इष्ट-तपस्या थी।

उन्होंने मद्रास प्रान्तीय परिषद के प्रमुख पद पर आसीन होकर कहा था—

बार-बार लोग मुझसे कहते हैं—तुम स्वप्न के स्वर्ण-राज्य को परित्याग करके इस कोलाहलमय विश्व में क्यों आई हो? तुमने अपनी बंसी और वीणा का उन लोगों के व्रजनिनादी नगाड़ों से क्यों परिवर्तन कर लिया है—जो जाति को युद्ध के लिए आह्वान करते हैं।

यह सब मैंने इसलिए किया है कि गुलाब के उद्यान में स्थित स्वर्ण स्वप्न-प्रासाद में कवि का प्रकृत कर्म क्षेत्र नहीं है, उसका स्थान है जनता के मध्य में, बाजारों की धूल में। कवि के भाग्य का निबटारा होता है संग्राम की जटिल कठिनाइयों में। कवि होने के लिए सबसे प्रमुख बात यह है कि वह भय के समय, पराजय की मुहूर्त में एवं निराशा के मध्य में, स्वप्न राज्य में विचरण करने वाले से यह कहे—'अगर तुम सच्चा स्वप्न देख रहे हो, तो समझ लो कि सारी कठिनाइयां, सारे भ्रम, सारी निराशाएं माया की लीला-मात्र हैं, परन्तु सबसे प्रमुख वस्तु है आशा। आज मैं तुम्हारे उच्च स्वप्न,

तुम्हारे विपुल साहस एवं तुम्हारी अवश्यम्भावी विजयों का सन्देश सुनाने के लिए तुम्हारे सामने खड़ी हूं। इसलिए आज इस संग्राम के मुहूर्त में, जब विजय की उपलब्धि करना तुम्हारे आधीन है, मैं एक निर्बल रमणी, अपने गृह से बाहर आई हूं, मैं स्वप्न-राज्य में विचरण करने वाली आज इस कोलाहलमय स्थल पर खड़ी होकर तुमसे कह रही हूं···जाओ भाइयो, विजय प्राप्त करो।"

सरोजिनी ने राजनीतिक-क्षेत्र में पदार्पण करते ही देश के समस्त राजनैतिक दलों से एकता के लिए आग्रह किया। उन्होंने कहा कि देश माता की सेवा के लिए सबको—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन, सिक्ख यहूदी, पारसी, लिबरल, स्वतन्त्र आदि राजनैतिक दलों को—एक मन, एक हृदय, एक निश्चय होकर कार्य करना चाहिए। इस समय देश में एकता के लिए सबसे अधिक यदि किसी ने परिश्रम किया तो वह सरोजिनी थी। कोई अवसर ऐसा हाथ से नहीं जाने दिया, जब उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर विशेष जोर न दिया हो। सन् 1917 के अक्तूबर मास में उन्होंने पटना में कहा था—

"इस विशाल देश में मुसलमान अपना घर बनाने को आए थे। वे इसलिए नहीं आएं थे कि यहां से लूट-मार करके अपने घरों को चले जाएं। वे इस देश में रहने के लिए आए थे और मातृभूति को विभूतिमय बनाना ही उनका उद्देश्य था। तब वे इस भूमि के बच्चों से पृथक कैसे रह सकते हैं? क्या इतिहास यही बताता है कि वे प्राचीन समय में हिन्दुओं से पृथक रहते थे? एक बार जब उन्होंने इस देश को अपनी मातृभूमि बनाना निश्चित कर लिया, तब वे इस भूमि के बच्चे बन गए, हमारे बिल्कुल अपने हो गए।"

इस प्रकार प्रारम्भ ही से सरोजिनी हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य को भारतीय स्वतन्त्रता के संग्राम की सफलता का प्रमुख साधन कहकर उद्घोषित करती रही।

राजनीतिक क्षेत्र में अवतीर्ण होकर सरोजिनी समस्त भारत में भारतीय स्वतंत्रता का सम्वाद पहुंचाने लगी और राजनीतिक के क्षेत्र कालुष्य को दूर करने का प्रयत्न करने लगी। 1919 का वर्ष भारतीय इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण वर्ष है, क्योंकि उसी वर्ष सबसे पहले भारत के संग्राम क्षेत्र में रौलेट बिल को दूर करने के लिए गांधीजी ने सत्याग्रह संग्राम की घोषणा की थी। उस समय ब्रिटिश सरकार और उसकी शक्ति की रत्ती भर चिन्ता न करके सरोजिनी ने सबसे पहले सत्याग्रह की शपथ ली और स्वयं अपने कर-कमलों से 6 अप्रैल के शुभ दिन बम्बई के बाजारों में जब्त किया हुआ साहित्य बेचा। इसमें सन्देह नहीं कि उनके इस साहसिक कार्य ने सत्याग्रह आन्दोलन की प्रगति को बहुत आगे बढ़ाया।

सन् 1919 में वर्तमान सुधारों की आयोजना हो रही थी। उस समय सरोजिनी ने स्त्रियों को मताधिकार दिए जाने के लिए अत्यन्त परिश्रम किया। सन् 1919 में वे अखिल भारतीय होमरूल लीग के डेपुटेशन की सदस्या होकर इंग्लैंड गई और वहां उन्होंने स्त्रियों को मताधिकार दिए जाने के लिए आन्दोलन किया। सुधार-कमेटी को उन्होंने पहले अपना लिखित वक्तव्य दिया और फिर उसके सामने अपने पक्ष का बड़ी तीव्रता और विद्वत्ता के साथ प्रतिपादन किया था। उनके लिखित वक्तव्य को पढ़कर

सुधार-कमेटी के सभापति ने कहा था—

"आपके लिखित वक्तव्य ने हमारे अरुचिकर विषय को कवित्व के द्वारा आलोकित कर दिया है।"

वर्तमान सुधार बिल में प्रादेशिक सरकार की स्त्रियों के लिए मताधिकार प्रदान करने की जो सुविधा रखी गई, वह वास्तव में सरोजिनी के परिश्रम का ही परिणाम था। इंग्लैंड में रह कर उन्होंने भारतीय स्वराज्य के लिए तीव्र आन्दोलन किया। भारत लौटते ही उन्होंने फिर सारे देश में दौरा करके राजनीतिक जागृति का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया और उन्होंने महात्मा गांधी को अपना 'आचार्य' स्वीकार किया और उन्हीं के सिद्धान्तों को जनता में प्रचारित करना प्रारम्भ किया। महात्मा जी को उन्होंने उसी श्रेणी का महापुरुष माना है, जिसमें बुद्ध, चैतन्य और रामानुज थे।

मार्शल-ला के समय पंजाब में भारतीय रमणियों के साथ जैसा कुत्सित व्यवहार किया गया था, उसने सरोजिनी के हृदय को विदीर्ण कर दिया और सन् 1920 में, जब वे स्वास्थ्य सुधार के लिए इंग्लैंड गई हुई थी, उन्होंने वहां एक सभा में भाषण करते हुए कहा था—

"मेरी बहिनें नंगी की गईं, उन्हें कोड़े लगाये गए और उनकी शालीनता पर अनुचित प्रहार किया गया।"

उनके इस तीव्र कथन को सुनकर मिस्टर माण्टेग्यू का, जो उस समय भारतीय सचिव थे, आसन डोल उठा। उन्होंने सरोजिनी को लिखा कि वे अपने उन शब्दों को वापस लें। सरोजिनी और ही धातु की बनी, थीं, उन्होंने बड़ी तेजस्विता और तीव्रता के साथ भारत-सचिव को उत्तर दिया और अपने कथन को राष्ट्रीय महासभा की कमेटी की रिपोर्ट से सिद्ध कर दिखाया। इसी प्रकार सन् 1922 में उहोंने कालीकट में भाषण देते हुए महिलाओं पर किए गए सरकार के पाशविक अत्याचारों की बात कही थी। उस समय उन्हें मद्रास सरकार ने डराया-धमकाया था, पर सरोजिनी ने उसकी रत्ती भर चिन्ता नहीं की और सरकार को अपनी धमकी को पूरी करने के लिए निर्भीक भाव से आह्वान किया। सरकार पराजित हुई। इन घटनाओं से सरोजनी की तेजस्वी प्रकृति का तथा उज्ज्वल देशानुराग का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। सन् 1920 में उन्होंने पंजाब के अत्याचारों का विरोध करते हुए अपना 'कैसरे-हिन्द' पदक वापस कर दिया था।

सन् 1922 के 11 मार्च का दिन भारतीय राजनीति इतिहास का एक चिरस्मणीय दिवस है। उस दिन गांधीजी को सरकार ने गिरफ्तार किया था। इसने सरोजिनी के हृदय पर भयंकर आघात किया और एक सप्ताह के बाद 18 मार्च को अहमदाबाद में भाषण करते हुए उन्होंने कहा—

"वह उन्हें पृथ्वी के अन्तिम छोर पर ले जा सकते हैं, पर उनका स्थान उनके देश-भाइयों के हृदय में उसी भांति अटल है और उनके देश-भाई उनके अद्वितीय विचारों और अद्वितीय कार्यों के उत्तराधिकारी और उद्घोषक हैं।"

महात्मा जी ने जेल भूमि को अपने चरण रज से पवित्र करने के लिए जाते समय, मृदु मुस्कान के साथ निर्विकार उज्ज्वल क्रांति भाषा में सरोजिनी से कहा था—

"भारतीय एकता को मैं तुम्हारे हाथों में सौंपता हूं।"

गांधी जी के इस आदेश की पूर्ति के लिए सरोजिनी ने अथक परिश्रम किया। खद्दर की साड़ी से अपने कोमल कलेवर को आच्छादित करके, वे समस्त देश में महात्मा की आज्ञा का प्रचार करने के लिए भ्रमण करने लगीं। शरीर के शिथिल हो जाने पर भी आत्मा उसी प्रकार प्रखर और तेज थी, इसीलिए अपने स्वास्थ्य सुधार की इच्छा से जब वे लंका गईं, तब वहां पर उन्होंने रात-दिन समय-कुसमय अवसर मिलते ही, गांधी जी का प्रचार किया। लंका में उनकी मधुर वाणी गूंज उठी। लंका के सुगन्धिमय निकुंजों में भारत-कोकिला की कोमल रागिनी परिव्याप्त हो गई। सारी लंका उस रागिनी की रस-सरिता में निमग्न हो गई। लंका से लौट कर भी दक्षिण भारत में उन्होंने गांधी सिद्धान्तों का प्रचार किया।

महात्मा गांधी उस समय जेल मे थे, जब सविनय आज्ञा-भंग के सम्बन्ध में जांच करने के लिए नियुक्त की हुई राष्ट्रीय महासभा की कमेटी ने नवम्बर 1922 में अपनी रिपोर्ट उपस्थित की। कमेटी नियुक्त तो की गई थी आज्ञा-भंग की जांच करने के लिए, परन्तु उसने अपना प्रमुख विषय बना लिया कौंसिल प्रवेश को। सरोजिनी भी इस कमेटी की सदस्या चुनी गई थीं, पर अस्वस्थ होने के कारण वे इसमें सम्मिलित न हो सकी। वे कौंसिल प्रवेश की तीव्र विरोधिनी थी, क्योंकि उनका विश्वास था कि कौंसिल प्रवेश की आज्ञा देना असहयोग सिद्धान्त पर प्रहार है। गांधी जी की अनुपस्थिति में चारों ओर एक प्रकार की अव्यवस्था-सी हो गई थी। असहयोग के प्रति कांग्रेस के नेताओं का विश्वास उठा जा रहा था, पर सरोजिनी गांधी जी की आज्ञा और सिद्धान्तों को अटल अचल भाव से अपनाये हुए थी। फिर भी एकता के कारण उन्होंने अपने मत को राष्ट्रीय महासभा के अनुशासन के सामने नत कर दिया, वे केवल भारतीय एकता की साधना को ही अपना प्रमुख कर्तव्य मान कर अथक परिश्रम करती रहीं।

प्रवासी भारतवासियों के सम्बन्ध में आरम्भ ही से सरोजिनी आन्दोलन करती थीं। उन विदेश में पड़े हुए भाइयों और विशेषतया विपत्ति-ग्रस्त बहिनों की दुखमयी स्थिति को दूर करने के लिए वे भारतीय जनता से आग्रह और अनुरोध करती रहती थीं। 1917 के जनवरी में नियम-बद्ध मजदूर प्रथा को दूर करने के लिए एक विराट सभा हुई थी, उसमें भाषण करते हुए सरोजिनी ने प्रवासी बहिनों के साथ किए हुए कुत्सित पाशविक व्यवहारों को लक्ष्य करके मर्मभेदी शब्दों में कहा था—

"तुम अपने हृदय-शोणित से उस दारुण अपमान को धो डालो, जो तुम्हारी स्त्रियों को विदेशों में सहना पड़ा है। आज तुमने जो शब्द सुने हैं, उन्होंने अवश्य तुम्हारे हृदयों में एक भयंकर रोषाग्नि प्रदीप्त कर दी होगी। भारत के पुरुषो, इस अग्नि को नियमबद्ध मजदूर प्रथा की प्रज्वलित चिता बना दो। आप आज मुझसे शब्दों की आशा रखते हैं। नहीं, आज मेरे आंसू बहाने का समय है, क्योंकि मैं स्त्री हूं। तुम कदाचित अपनी मां-बहिनों के प्रति किए हुए अपमानों का अनुभव कर रहे होंगे। परन्तु मैं इन अपमानों को इस भाव में अनुभव करती हूं कि यह मेरी जाति का अपना मेरा निजी अपमान है।"

सरोजिनी के इस प्रकार के तीव्र एवं तेजस्वी भाषणों ने देश की जनता को प्रवासी

भाइयों की सहायता करने के लिए विशेष उत्तेजित और उत्साहित किया। 1924 में केनिया प्रवासी भारतवासियों ने सरोजिनी को अपने यहां आमन्त्रित किया। 19 जनवरी को उन्होंने पूर्वीय अफ्रीका की यात्रा करने के लिए प्रस्थान किया। उन्होंने मोम्बार की राष्ट्रीय महासभा का प्रमुख पद ग्रहण किया और ओजभरी वाणी में धारावाही भाषण दिया। उन्होंने भारतीय पक्ष को सफल बनाया और प्रवासी भाइयों और बहिनों को अपने स्वत्वों की रक्षा के लिए उत्साहित और प्रणोदित किया। उन्होंने उनसे कहा—"तुम एक स्वर में सरकार को यह उत्तर दे दो कि यद्यपि प्राकृतिक जगत में नदियां पीछे नहीं बहती हैं, पर हम तुम्हारी नदी को पीछे की ओर लौटा कर छोड़ेंगे।"

दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों ने भी इस दुर्लभ अवसर से लाभ उठाया और उनसे अपने यहां भी पधारने का सादर आग्रह किया। सरोजिनी ने उनके अनुरोध को अमान्य नहीं किया। उस समय दक्षिण अफ्रीका में नेटाल आर्डिनेन्स बिल के विरुद्ध आन्दोलन हो रहा था और भारतीय प्रवासी उस दमनकारी बिल का विरोध करने का पूर्ण प्रबन्ध कर रहे थे। सरोजिनी ने उन्हें उत्साहित किया। उस समय उन्होंने वहां पर जो ओजस्वी भाषण किए थे, उन्हें सुनकर वहां के गोरे-प्रवासी भी भारतीय पक्ष की सत्यता पर दूसरी ही दृष्टि से विचार करने को बाध्य हुए।

सरोजिनी ने जनरल स्मट्स, कर्नल क्रेसवैल आदि वहां के गोरे अधिकारियों से भी भेंट की और बड़े आवेश और निष्पक्ष भाव से उन्होंने भारतीय पक्ष को उनके सामने समुपस्थित किया। उन्हें भी स्वीकार करना पड़ा कि भारतीय पक्ष में बहुत बड़ा सार है। जहां-जहां सरोजिनी गईं, वहां-वहां उनका उत्साह, उल्लास और आवेश के साथ स्वागत किया गया और उन्हें अपनी यात्रा में सफलता प्राप्त हुई।

वहां से सरोजिनी रोडेशिया गईं और वहां पर यूरोपियन और भारतीय प्रवासियों से वार्तालाप किया। वहां भी उन्होंने भारतीय भाइयों और बहिनों को अपने अधिकारों की रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग तक करने का उपदेश दिया।

इस प्रकार दक्षिण अफ्रीका में अपनी विजय-यात्रा को समाप्त करके जब वे जुलाई 1924 को भारत लौटीं, तब उनका अभूतपूर्व स्वागत किया गया। बम्बई के बन्दरगाह पर हजारों स्त्री-पुरुष उनके स्वागत के लिए एकत्रित हुए। सहस्त्र कण्ठों ने सरोजिनी की जय कहकर उनके प्रति अपना आदर प्रकट किया।

यह भारतवर्ष की प्राचीन महिमा थी कि उनकी पुत्रियां उनके पुत्रों से अधिक वीर और धीर होती थीं और वे यही चाहती हैं कि भारतीय रमणियां फिर उसी प्रकार वीर और धीर बनें।

गांधी जी सरोजिनी को सदा स्नेह की दृष्टि से देखते थे। उन्होंने सरोजिनी को भक्त-कवयित्री 'मीराबाई' की पवित्र पदवी से विभूषित किया था। जेल जाते समय गांधी जी ने भारतीय एकता को सरोजिनी के हाथों में सौंपा था। महात्मा गांधी के बाद सरोजिनी ही एक ऐसी व्यक्ति रहीं, जिन पर मुसलमानों और हिन्दुओं का समान विश्वास रहा। इसीलिए देश ने 1925 में अपना नेतृत्व इन्हीं के हाथों में सौंपा। कानपुर कांग्रेस की सभानेत्री की हैसियत से सरोजिनी ने जो कवित्वमय, ओजपूर्ण भाषण

दिया था, उसका एक-एक शब्द कांग्रेस के इतिहास की मूल्यवान सामग्री है। बेलगांव कांग्रेस के अवसर पर सभानेत्री का सम्मानपूर्ण पद इन्हीं को प्राप्त होने वाला था, परन्तु कई कारणों से उसे महात्मा गांधी ने स्वयं ग्रहण किया था।'

श्यामजी कृष्ण वर्मा

1857 में जब भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह हो रहा था, उन्हीं दिनों गुजरात के कच्छ जिले में मांडवी (समुद्र तट पर बसा हुआ एक छोटा-सा गांव) में एक साधारण मजदूर के घर एक पुत्र ने जन्म लिया। इस बच्चे का नाम रखा गया श्याम जी। यह बालक कुछ बड़ा हुआ तो अपने पिता की सहायता करने लगा। जब उसकी आयु बारह वर्ष की थी तब उसकी भेंट एक संन्यासिनी से हुई। यह विदुषी संन्यासिनी माता हरिकुंवरबा तीर्थ स्थानों का भ्रमण करती हुई मांडवी पहुंची। बालक श्याम जी ने इन्हें देखते ही चरण छुए और उनकी सेवा करने लगे। जब वे वहां से अपनी यात्रा पर फिर अग्रसर हुईं तब श्याम जी भी उनके साथ हो लिये। संन्यासिनी ने बालक की प्रतिभा देखकर उसे संस्कृत पढ़ाई तथा जीवन को उन्नत बनाने के उपदेश दिए। यात्रा समाप्त होने पर संन्यासिनी ने उन्हें संस्कृत की कुछ पुस्तकें भेंट कीं और आशीर्वाद देकर घर वापिस भेज दिया।

घर आकर बालक संस्कृत अध्ययन में लग गया। उसका संस्कृत उच्चारण बहुत शुद्ध और मधुर होता था। एक बार बम्बई के सेठ मथुरादास भाटिया मांडवी आए और बालक की संस्कृत में प्रतिभा देखकर अपने साथ बम्बई ले गए। बम्बई में विल्सन हाई स्कूल में उन्हें भरती करा दिया और संस्कृत के विशेष अध्ययन के लिए संस्कृत पाठशाला में भी व्यवस्था कर दी।

'विल्सन हाई स्कूल' में छात्रवृत्ति पाकर उन्हें 'एल्फिस्टन हाई स्कूल' में प्रवेश मिल गया—उनका सम्पर्क अनेक धनाढ्य परिवारों के लड़कों से हो गया। इन्हीं सहपाठियों में बम्बई के प्रसिद्ध सेठ छबीलदास लल्लूभाई के पुत्र रामदास भी थे जिनकी बहिन से, आगे चलकर, श्यामजी का विवाह हुआ। विवाह के समय श्याम की आयु 18 वर्ष और वधू भानुमति की आयु 13 वर्ष की थी।

इन दिनों आर्य समाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द बम्बई में प्रवास कर वेदों और आर्य समाज के पक्ष में धारा-प्रवाह संस्कृत बोलकर भाषण दे रहे थे। श्यामजी ने भी उनके भाषण सुने और उनके शिष्य बन आर्य समाज में प्रविष्ट हो गए। एक वर्ष तक उन्होंने नासिक, पूना, बम्बई में भ्रमण कर आर्य समाज के प्रचार में अनेक भाषण दिए। महादेव गोविन्द रानाडे ने उनकी संस्कृतनिष्ठा और वाक्शक्ति से प्रभावित होकर उनसे आजीवन आर्य समाज का प्रचार करते रहने का अनुरोध किया।

श्यामजी पूना में ही थे कि आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के संस्कृत विभागाध्यक्ष सर

मोनियर विलियम्स पूना आए। जहां सभा में उनका भाषण होने वाला था। उस सभा में श्याम जी भी सम्मिलित हुए और संस्कृत में भाषण किया। उनकी उत्कृष्ट और मधुर संस्कृत प्रवाह को देखकर सर मोनियर विलियम्स बहुत प्रभावित हुए और उन्हें आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में सहायक संस्कृत प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया। श्याम जी इंगलैंड चले गये और अध्यापन के साथ-साथ अध्ययन भी किया। इसी यूनिवर्सिटी से उन्होंने एम० ए० और बैरिस्टरी परीक्षा उत्तीर्ण की। उस यूनिवर्सिटी में यह दोनों परीक्षाएं पास करने वाले श्यामजी प्रथम भारतीय थे। 1883 में यूनिवर्सिटी ने उनकी संस्कृत भाषा की सेवाओं के लिए प्रमाण पत्र दिया।

इंग्लैंड और बर्लिन में 'प्राच्यविद्या' के दो सम्मेलन हुए। उनमें भारत प्रतिनिधि के रूप में श्याम जी गए। 'भारत की प्रभावशाली संस्कृत भाषा' विषय पर उन्होंने भाषण दिए जिसकी भारी प्रशंसा हुई। 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' के आमन्त्रण पर भी उनका प्रसिद्ध भाषण 'भारत की लेखनकला का प्रारम्भ' विषय पर हुआ। सोसाइटी ने उन्हें अपना सदस्य भी बना लिया। अपनी विद्वत्ता और भाषण शक्ति के कारण उन्हें 'इंग्लैंड एम्पायर क्लब' ने भी अपना सदस्य नियुक्त किया, जिसमें केवल राज्य परिवार वर्ग ही सदस्य बन सकता था। इसी क्लब में भारत के भावी वायसराय लार्ड डफरिन, लार्ड नार्थ ब्रुक, और लार्ड रिपन से परिचय हुआ।

1883 में वे भारत लौटे, परन्तु कुछ मास बाद फिर अपनी पत्नी को लेकर इंग्लैंड आ गए। इस बार उन्होंने 'इनर टेम्पिल' की बैरिस्टरी की पदवी प्राप्त की और 1888 में फिर भारत लौटे। यहां आकर दो वर्ष तक रतलाम रियासत के दीवान रहे, फिर उसे छोड़ अजमेर में वकालत आरम्भ की। तीन वर्ष बाद वकालत बन्द कर उदयपुर के दीवान बने। दो वर्ष बाद उसे छोड़कर जूनागढ़ के दीवान बने। पर वहां भी अधिक न रहे, पुनः उदयपुर और अजमेर आए। अजमेर में फिर वकालत प्रारम्भ की।

अजमेर में उन्हें फिर स्वामी दयानन्द के सत्संग का अवसर मिला। स्वामी जी ने उनको 'स्वराज्य' और 'स्वधर्म' के लिए कार्य करने की प्रेरणा दी। श्यामजी में देशभक्ति जाग उठी और वे अपनी पत्नी सहित इंग्लैंड आ बसे। उन्होंने अंग्रेजों की राजगद्दी के नीचे ही आन्दोलन की चिंगारी जलाना लाभप्रद समझा। लन्दन में मकान खरीद कर रहने लगे। जनवरी 1905 में अंग्रेजी मासिक पत्रिका 'इंडियन सोशियालॉजिस्ट' का प्रकाशन आरम्भ किया। पत्रिका के प्रथम अंक की प्रथम पंक्तियां इस प्रकार थीं—'आक्रमण का सामना करना आवश्यक और न्यायपूर्ण है। यदि आक्रमण का सामना न किया गया तो मनुष्य का तेज नष्ट हो जायगा।'

विदेशों में रहने वाले अन्य स्वदेश भक्तों को संगठित करके उन्होंने 'इंडियन होम रूल सोसाइटी' गठित की जिसका उद्देश्य, भारतीयों की राष्ट्रीय एकता और स्वाधीनता की भावना का प्रचार करना, भारत के लिए होम-रूल प्राप्त करना तथा होमरूल प्राप्ति के लिए इंग्लैंड में प्रचार करना आदि थे।

उच्चशिक्षा और विकास के लिए अनेक मेधावी भारतीय युवक इंग्लैंड आकर पढ़ने लगे थे। उनके सुव्यवस्थित आवास और उनमें स्वदेश भावना की जागृति के लिए श्याम

जी ने लन्दन में एक बड़ा मकान खरीद कर 'इंडिया हाउस' की स्थापना की। 'इंडिया हाउस' द्वारा छात्रों को 'महर्षि दयानन्द', 'छत्रपति शिवाजी' तथा 'महाराणा प्रताप' छात्रवृतियां भी दी जाती थीं। महात्मा तिलक के कहने पर 'सावरकर' को छात्रवृत्ति देकर इंग्लैंड बुलाया गया। सावरकर, मदनलाल धींगड़ा और श्रीमती भीखा जी कामा श्याम जी से क्रांति की दीक्षा लेने लगे।

1907 में भारतीय विद्रोह (1857) की इंग्लैंड की ब्रिटिश सरकार ने स्वर्णजयन्ती मनाई। इसका मुंहतोड़ उत्तर देने के लिए श्याम जी के निर्देशन में सावरकर ने 'स्वार्थी राजाओं द्वारा चलाया गया विद्रोह नहीं, किन्तु राष्ट्र की स्वाधीनता का संग्राम' प्रमाणित करते हुए एक ग्रंथ प्रकाशित किया, जिससे इंग्लैंड में हलचल मच गई। ब्रिटिश सरकार ने इसे जब्त कर लिया।

श्याम जी की विद्रोही विचारधारा तीव्रता से बढ़ती देखकर पार्लियामेंट में उनकी कटु आलोचना होने लगी। श्यामजी के लेख, उनके भाषण, उनके सहयोगियों की गतिविधियों को गम्भीर समझकर वहां की सरकार उन्हें गिरफ्तार करने का विचार करने लगी। श्याम जी सावधान हो सतर्कतापूर्वक इंग्लैंड से फ्रांस चले गए।

पेरिस में एक मकान खरीदकर 'इंडिया हाउस' बनाया। वहां श्रीमती कामा पहले से ही थीं। उनको तथा अन्य सहयोगियों को लेकर पत्रिका का प्रकाशन पुनः आरम्भ किया। उन्होंने भारतवासियों को आवाहन किया कि वे अंग्रेज सरकार से असहयोग करें।

श्याम जी के पेरिस की गतिविधियों के विरुद्ध इंग्लैंड से प्रकाशित समाचार पत्र असत्य प्रचार करने लगे। श्यामजी के लन्दन छोड़ने के बाद सावरकर जी का कार्य लन्दन में और भी बढ़ गया।

श्याम जी ने 'बम बनाने की विधि' पुस्तक छपाई और सेनापति बापट द्वारा भारतीय क्रांतिकारियों के हाथों में पहुंचाई, जिसे पढ़कर भारत में बम बनाए जाने लगे। क्रांतिकारियों ने इन बमों का प्रयोग प्रमुख अंग्रेजों को मारने के लिए किया। 1912 की दिसम्बर में जब दिल्ली के चांदनी चौक बाजार में लार्ड हार्डिंग का हाथी पर भव्य जलूस निकल रहा था, तब उन पर बम प्रहार किया गया परन्तु वे बाल-बाल बच गए।

श्याम जी के क्रांतिकारी लेख जर्मनी, स्विजट्रलैंड, इटली, जावा, मिस्र, मलाया आदि देशों के समाचार पत्रों में खूब छपे। 1914 में योरोप में प्रथम महायुद्ध आरम्भ हुआ। जिसमें इंग्लैंड आदि मित्र देशों ने जर्मनी आदि देशों के विरुद्ध भाग लिया। श्याम जी की सहानुभूति जर्मनी की ओर थी। इसी बीच में इंग्लैंड के राजा पेरिस आए और फ्रांस से मैत्री सम्बन्ध दृढ़ किए, जिसके कारण फ्रांस सरकार ने श्याम जी को 'राजद्रोही' घोषित कर फ्रांस त्यागने का आदेश दिया।

श्याम जी स्विट्जरलैंड आए, परन्तु वहां की सरकार ने इस शर्त पर रहने की आज्ञा दी कि वे कोई राजनैतिक कार्य न करेंगे। राजनीति में प्रत्यक्ष भाग न लेते हुए भी श्याम जी गुप्त रूप से भारतीयों को जर्मनी द्वारा शस्त्र भिजवाते रहे। युद्ध बन्द होने पर उन्होंने अपने पत्र का प्रकाशन जनेवा से फिर आरम्भ किया। अब उनकी आयु 66

वर्ष की हो चुकी थी। उनका शरीर थक चुका था। उनके कुछ मित्र स्वार्थी और विश्वास-घातक हो गए थे, अतः उन्होंने पत्रिका का प्रकाशन बन्द कर दिया। अंग्रेजों की राजगद्दी के समीप ही निरन्तर 25 वर्ष तक चिंगारी जलाए रखकर 31 मार्च 1930 की संध्या को यह संघर्षशील स्वदेश भक्त निडर विद्वान मृत्यु की गोद में सो गया। काशी के प्रसिद्ध दानी और देशभक्त बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने जनेवा पहुंचकर आर्य पद्धति से उनका दाह-संस्कार किया।

श्यामजी कृष्ण वर्मा निस्सन्तान रहे उनकी विधवा पत्नी भानुमति ने सब सम्पत्ति अपने पति की पुण्य-स्मृति में अनेक संस्थाओं को दान कर दी। उनका अमूल्य ग्रन्थ भंडार 'सोरबोन यूनिवर्सिटी' (पेरिस) को सौप दिया।

लन्दन में 'इंडिया हाउस' आज भी है। यह अपने संस्थापक श्याम जी की अक्षय कीर्ति है।

लाला हरदयाल—विलक्षण मेधा

हरदयाल का जन्म दिल्ली के चीरेखाना मोहल्ले के एक मकान में 14 अक्टूबर 1884 को हुआ। अपनी माता भोली रानी की गोद में बचपन से ही उनके हृदय में भारतीय संस्कृति के प्रति श्रद्धा का अंकुर उपजा। विद्या व्यसन उन्हें अपने पिता गौरीदयाल से विरासत में मिला। वे अपनी कक्षा में सर्वप्रथम रहते थे। उन्होंने लाहौर कालेज से एक वर्ष में ही अंग्रेजी में एम० ए० पास करके पिछले सब रिकार्ड तोड दिए। दूसरे वर्ष में उन्होंने इतिहास में एम० ए० (एक ही वर्ष में) पास किया। उस समय की अंग्रेजी सरकार ने उनकी प्रतिभा को मानकर 1905 में उन्हें इंगलैण्ड जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्रवृत्ति दी।

हरदयाल जी में विलक्षण स्मरण शक्ति थी। वे छः बोर्ड सामने रखकर छः व्यक्तियों से एक समय में एक साथ ही शतरंज खेलकर उन्हें हरा देते थे। एक बार में ही सारी पुस्तक पढ़कर उसे मुंहजुबानी सुना देते थे। तेरह वर्ष की बाल-अवस्था में ही उन्होंने बालकों की एक सभा का सभापतित्व किया था। लाहौर जाने से प्रथम मास्टर अमीचन्द द्वारा स्थापित विपल्ववादी गुप्त संगठन के वे विश्वस्त सदस्य थे और साथियों के साथ आधी रात को जाकर यमुना किनारे (राजघाट) सुनसान में क्रांतिकारी योजनाओं पर विचार-विमर्श किया करते थे।

इंग्लैंड पहुंचकर वे आक्सफोर्ड के सेन्ट जॉन्स कालिज में पढ़ने लगे। वहां वे अपनी चरित्र-निष्ठा, सादगी, सज्जनता और प्रतिभा के लिए शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गए। वहां भी उन्हें दो छात्रवृत्तियां एक संस्कृत के लिए, दूसरी फिलॉस्फी के लिए प्रदान की गईं। वाद विवाद के समय विषय की गहराई में वे शीघ्र ही पहुंच जाते थे। खेलकूद में उनसे

पार पाना कठिन था। आई० सी० एस० की सिविल परीक्षा पास करना उनके लिए सरल था, परन्तु उन्होंने उसकी उपेक्षा की। 1907 में गोखले ने उनसे अपनी 'सरवेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी' संस्था में सम्मिलित होने के लिए कहा। हरदयाल जी ने उत्तर दिया—आपकी सोसाइटी का एक नियम यह है कि इसका प्रत्येक सदस्य ब्रिटिश राज्य-भक्त हो। परन्तु मेरा आत्माभिमान इसे स्वीकार नहीं करता।

आक्सफोर्ड से वे कभी-कभी लन्दन आकर क्रान्तिकारी भाई परमानन्द, श्यामजी वर्मा और सावरकर से मिलते थे। जब लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह मांडले में निर्वासित किए गए तब उन्होंने ब्रिटिश सरकार की तीनों छात्र-वृत्तियां त्याग दी। उन्होंने कहा—कलंकित धन लेना पाप है। उन्होंने यूनिवर्सिटी छोड़ दी।

उन्होंने निश्चिय किया कि उनकी जीवन-संगिनी सुन्दर रानी को भारतीय स्त्रियों के पुनरुद्धार का कार्य करना चाहिए। उस समय सुन्दर रानी आक्सफोर्ड में इतिहास और राजनीति की शिक्षा पा रही थीं।

हरदयाल ने भारत आकर संन्यासी बाना धोती-कुरता धारण कर देश भर का दौरा किया। इसके बाद उन्होंने अपनी पत्नी से कभी भेंट नही की, न उन्होंने अपनी पुत्री को ही कभी देखा। उन्होंने कानपुर केन्द्र बनाकर त्याग और उत्सर्ग वृत्ति के बलि-दानी युवकों का संगठन किया। पर यहां ब्रिटिश खुफिया विभाग की निगरानी उन पर रहने लगी। लाला लाजपतराय ने उनसे लाहौर आकर दैनिक अंग्रेजी पत्र 'पंजाबी' का सम्पादन करने को कहा। लालाजी की इच्छानुसार वे अपने साथियों को लेकर लाहौर चले गए। ये सभी युवक अपने जीवन-निर्वाह के लिए केवल कुछ पैसे ही खर्च करते थे। हरदयाल जी के कमरे में भी सोने के लिए चारपाई नहीं थी। वे भी सबके समान जमीन पर सोते थे।

हरदयाल जी ने जनता में राष्ट्रीयता के भाव भरने शुरू किए। उनके तर्क इतने युक्तियुक्त और शक्तिशाली होते थे कि कोई उनसे शंका या प्रश्न करने का साहस नहीं करता था। उनके साथ केवल पांच मिनट बातें कर लेने के बाद संसार का सब ज्ञान प्राप्त हो जाता था। मन में सेवा और उत्सर्ग की भावना भर जाती थी। आत्मगौरव जाग उठता था। हरदयाल जी की भाषा आग उगलती थी। एक वकील ने उनकी वक्तृता-शक्ति के चातुर्य से प्रभावित होकर कहा था—हरदयाल एक उच्चकोटि के वकील की भांति बोलता है, फिर भी वह वकील नहीं है। वह आग का गोला है।

हरदयाल उस काल की शिक्षा पद्धति को घातक बताते थे। जो शिक्षा हमारे प्राचीन गौरव को नष्ट करती है, उससे राष्ट्रीय भाव कहां उत्पन्न होंगे? अंग्रेजी शिक्षा राम, कृष्ण, गुरुगोविन्दसिंह के प्रति उदार नहीं है। असत्य और चरित्रहीन जीवन उपयोगी नहीं हो सकता। अंग्रेजी शिक्षा भारतीय राष्ट्रीयता और देश गौरव को नष्ट कर रही है। पंजाब और उत्तर प्रदेश के अंग्रेज शासकों को शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि हरदयाल जी अपनी कलम और जिह्वा से शिक्षित वर्ग में राष्ट्रीयता के क्रांतिकारी विचार भर रहे हैं। विद्यार्थी कालेजों को त्याग रहे हैं। सरकारी भारतीय अफसर भी देश के प्रति आकर्षित होने लगे थे। भारत के समाचार पत्र हरदयाल को संत और ईश्वर-दूत कहने लगे थे।

इन्हीं दिनों कांगड़े में अकाल पड़ा। हरदयाल जी ने सहायता केन्द्र खोलकर जनता की भारी सेवा की। अंग्रेज सरकार उनके बढ़ते प्रभाव से आशंकित हो उठी। वायसराय की एक्जीक्यूटिव कौन्सिल के एक भारतीय सदस्य ने लाला लाजपतराय को संदेश भेजा कि हरदयाल के अमूल्य जीवन की रक्षा के लिए उन्हें भारत से बाहर भेज दिया जाय। हरदयाल जी ने जब यह सुना तो उन्होंने जाने से इंकार कर दिया, परन्तु अन्त में लाला जी ने उन्हें राजी किया और वे मास्टर अमीरचंद को अपना कार्य सौंपकर पेरिस चले गए।

पेरिस पहुंचकर वे मैडम कामा और राणा के साथ मिलकर भारत प्रेमियों का संगठन करने में जुट गए। उन्होंने क्रान्तिकारी भावनाओं का प्रचार करने के लिए मासिक-पत्र 'वन्देमातरम्' का प्रकाशन किया। हरदयाल के सम्मान की योग्यता का प्रमाण उसके प्रथम अंक (सितम्बर 1909) से ही मिल गया। पेरिस में उनके आवास की ठीक व्यवस्था नहीं हो सकी, क्योंकि हरदयाल एक सस्ता आवास चाहते थे। उन्होंने मार्टिक जाकर बुद्ध के समान कष्ट साध्य तपस्वी जीवन अपनाया। यह देखकर भाई परमानन्द को दुख हुआ। उन्होंने उनसे कहा कि तुम्हें तो स्वामी विवेकानन्द को अपना आदर्श बनाना चाहिए। भारत और संसार को तुम्हारी आवश्यकता है। हरदयाल उनसे सहमत हुए और उनके परामर्श पर अमेरिका चले गए। वहां अनेक देशभक्त रहते थे, उन्होंने उनसे पद प्रदर्शन के लिए कहा।

1912 में हरदयाल जी स्टेन्डर्ड यूनिवर्सिटी में भारतीय दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर नियत हुए। वहां के समाचार पत्र में लिखा—"हिन्दू संत हरदयाल कैलीफोर्निया में सबसे अधिक शक्तिशाली व्यक्ति है। वहां के गवर्नर उससे भेंट करने आते है। अमेरिकी जनता इसे हिन्दू सेंट फ्रेन्किस समझती है। वह नंगी भूमि पर सोता है और दूध तथा बिना मक्खन लगी ब्रेड खाता है।"

23 दिसम्बर 1912 को दिल्ली में वायसराय लार्ड हार्डिंज पर बम प्रहार हुआ। हरदयाल जी ने "युगान्तर सरक्यूलर" में इस बम प्रहार प्रयोग को उचित बताया था। गदरपार्टी की स्थापना हुई और हरदयाल जी उसके सेक्रेटरी बनाए गए। उनका पत्र 'गदर' कटु भाषा लिखता था। अपनी प्रतिभाशाली क्रियाशक्ति से उन्होंने हजारों भीरू व्यक्तियों को वीर वलिदानी बना दिया। जब प्रथम महायुद्ध आरम्भ हुआ तब हजारों भारतीयों ने भारत मे क्रान्ति लाने के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करने की प्रतिज्ञा की। गदर पार्टी के अनेक सदस्य जहाजों में बैठकर भारतीय तट पर उतरे—परन्तु अधिकांश पकड़कर फांसी पर लटका दिए गए, जो युक्ति से बच निकले—उन्होंने देश में गुप्त रूप से क्रान्ति की ज्वाला जलाई। ब्रिटिश सरकार का विश्वास था कि जर्मनी और इंग्लैंड में महायुद्ध छिड़ने का ज्ञान एक वर्ष पहले ही हरदयाल और भाई परमानन्द को था।

हरदयाल और भाई परमानन्द ने सलाह की और हरदयाल बम बनाने की क्रिया सीखने के लिए अमेरिका चले गए। परन्तु भाई जी भारत लौटने पर और हरदयाल अमेरिका में गिरफ्तार कर लिए गए। हरदयाल जी को जमानत पर छोड़ दिया गया। और वे कुस्तुन्तुनिया पहुंचे। वे चाहते थे कि जर्मनी और तुर्की अफगानिस्तान को

पर एक ओर से आक्रमण करने के लिए मदद दे, जबकि दूसरी ओर से भारतीय मुसलमान और सिख पंजाब में विद्रोह कर दें। जर्मनी ने उनकी राय को पसन्द किया। परन्तु दुर्भाग्य से जर्मनी द्वारा भारत भेजी गयी बड़ी धनराशि, आठ हजार रायफलें और चार लाख कारतूसें आदि सामग्री बीच में ही पकड़ ली गई, भारत नहीं पहुंच सकी। महायुद्ध के अन्तिम दिनों में जर्मनी को युद्ध में पराजय दीखने लगी। हरदयाल को वहां रोक रखा था, परन्तु वे किसी प्रकार भाग कर 1918 में स्वीडन पहुंच गए जहां उन्होंने 'जर्मनी और तुर्की में 44 मास' पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने जर्मनी की तानाशाही की खुलकर भर्त्सना की। उन्हें आशा थी कि ब्रिटिश सरकार उन्हें भारत लौटने की आज्ञा दे देगी, परन्तु उसने आज्ञा नही दी।

मनल्यीके में हरदयाल बहुत तंगदस्ती अवस्था में थे। एक भी पैसा नहीं था। परन्तु वे जूझनेवाले व्यक्ति थे। उन्होंने स्वेडिश में म्यूजिक, राजनीति, अर्थशास्त्र, और दर्शनशास्त्र पर भाषण देने आरम्भ किए। बाद में वे उपशाला यूनीवर्सिटी में भारतीय दर्शनशास्त्र पढ़ाने लगे। सी० एफ० एन्ड्रूज के प्रयत्नों से ब्रिटिश सरकार ने हरदयाल जी को इंग्लैंड में रहने की आज्ञा दे दी। लन्दन यूनिवर्सिटी ने उन्हें उनकी थीसिस 'बोधिसत्व-सिद्धान्त' पर 'डाक्टरेट' दी। उन्होंने 'हिन्टस फॉर सेल्फ कल्चर' और 'ट्वेल्वरिलीजियन्स एंड मॉडर्न लाइफ' पुस्तकें लिखीं। एन्ड्रूज और सप्रू जैसे मित्रों ने उन्हें भारत लौटने की आज्ञा प्राप्त करने के प्रयत्न किए। 1939 में फिलाडेल्फिया में अपनी शयन शैय्या पर वे मृत पाए गए। कहा जाता है कि यह उनकी स्वाभाविक मृत्यु नही थी, उनकी हत्या की गई थी।

सावरकर और मदनलाल धींगड़ा

महाराष्ट्र के एक धर्मनिष्ठ मराठा परिवार में 1883 के मई मास में एक बालक ने जन्म लिया। पिता दामोदर पंत विद्वान और प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उनका यह चौथा पुत्र विनायक सावरकर अपने भाइयों से अलग निडर स्वभाव का था। छत्रपति शिवाजी की कहानियां सुनने का उसे चाव था। बुद्धि तो तीव्र थी ही। दस वर्ष की आयु में उसने देश भक्तिपूर्ण कविताएं लिखनी शुरू कर दी थीं। हिन्दू धर्म की निष्ठा उसमें कूट-कूटकर भरी थी। चौदह वर्ष की आयु में ही उसने कुल देवी के सम्मुख प्रतिज्ञा की कि वह सारा जीवन देश सेवा में व्यतीत करेगा। 16 वर्ष की आयु में वे सभाओं में हिन्दूधर्म और देश सेवा के ओजपूर्ण भाषण दिया करते थे। स्कूल और कॉलिज के अध्ययन काल में भी उन्होंने विद्यार्थियों को इस ओर उन्मुख किया। बी० ए० परीक्षा पास कर वे बैरिस्ट्री पढ़ने लंदन गए। लंदन में श्यामजी कृष्ण वर्मा ने 'इंडिया हाऊस' खोलकर 'होमरूल सोसाइटी' स्थापित की। लाला हरदयाल तथा भाई परमानन्द भी इन दिनों लन्दन में थे और यह सब युवक इण्डिया हाऊस में एकत्र होकर भारत से अंग्रेजी को भगा देने के

उपाय सोचा करते थे।

श्यामजी कृष्ण वर्मा ने 'इण्डिया हाउस' को भारतीय युवकों के लिए 'बोर्डिंग हाऊस' के रूप में कर दिया। श्यामजी वर्मा ने एक घोषणा की कि वे लेखकों, पत्रकारों तथा अन्य भारतीयों को भारत से बाहर योरोप अमरीका आदि देशों में भारतीय स्वतंत्रता का सन्देश देने योग्य बनाने के लिए एक-एक हजार रुपयों की छः व्याख्यान मालाओं का प्रबन्ध करने वाले हैं। पेरिस से एस० आर० राणा ने एक पत्र प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने यात्रा करने के लिए दो-दो हजार रुपयों की तीन छात्रवृत्तियां देने की घोषणा की। लाला हरदयाल को आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में एक सरकारी छात्रवृत्ति मिलती थी। छात्रवृत्ति की घोषणा सावरकर ने भी पढ़ी और लोकमान्य तिलक का सिफारशी पत्र लेकर वह छात्रवृत्ति पाने के लिए आवेदन किया, जो स्वीकृत हुआ। 1906 में वे बम्बई से इंग्लैंड आए और इण्डिया हाउस में रहने लगे।

भारत में 1906 में बंगभंग के कारण स्वदेशी प्रचार और विदेशी बहिष्कार का आन्दोलन बहुत जोर पकड़ गया, जिसका प्रभाव 'इंडिया हाउस' पर भी पड़ा। भारत में इस आन्दोलन की लहर बंगाल से उत्तर भारत और पंजाब में आ फैली। पंजाब में सरदार अजीतसिंह और लाला लाजपतराय इसके नेता थे।

इस समय भारत और इंग्लैंड में एक आशंका और फैल रही थी। पलासी के युद्ध के 100 वर्ष और 1857 के विद्रोह को पचास वर्ष व्यतीत हो रहे थे। अंग्रेजों को गुप्तचरों द्वारा सूचना मिली कि पंजाब में आर्यसमाजियों की एक लाख सेना लाला लाजपत राय की सहायता में विद्रोह करने के लिए तैयार है, और आर्यसमाज विद्रोह का गढ़ बन चुका है। उसके परिणाम स्वरूप लाला लाजपत राय और सरदार अजीतसिंह को गिरफ्तार करके 11 मई 1907 से पहले ही बर्मा में निर्वासित कर दिया गया। लाला लाजपतराय के निर्वासन का लंदन में बहुत अधिक प्रभाव हुआ। वहां एक सार्वजनिक सभा करके भारी रोष प्रकट किया गया। परन्तु अपनी गिरफ्तारी की आशंका से श्यामजी हालैंड से पेरिस (फ्रांस) आ गए। बाद में लाला हरदयाल भी वहीं आ गए।

सावरकर ने लन्दन में रहते हुए केवल 23 वर्ष की आयु में अपना प्रसिद्ध क्रान्तिकारी ग्रंथ '1857 का भारतीय स्वातन्त्र्य-समर' 1908 में अपनी मातृभाषा मराठी में लिखकर पूरा किया। परन्तु अंग्रेजी सरकार के कारण यह ग्रन्थ भारत में छपाना असम्भव हो गया। यह देखकर इसका अंग्रेजी अनुवाद किया गया और गुप्त रूप से हालैण्ड में छपाया गया। छपने पर सभी प्रतियां फ्रांस में पहुंचाई गई और गुप्त रूप से प्रसारित की गई। 1909 में इसका दूसरा संस्करण फ्रांस में लाला हरदयाल और श्रीमती कामा के सहयोग से छपा। फिर इसका अनुवाद उर्दू पंजाबी तथा हिन्दी में प्रकाशित हुआ। यह ग्रन्थ इतना प्रिय और दुर्लभ हुआ कि अमरीका में यह डेढ़-डेढ़ सौ रुपयों में बिका। इस ग्रंथ का तीसरा संस्करण 1929 में सरदार भगतसिंह ने इसका अंग्रेजी अनुवाद गुप्त रूप से छपाया। अंग्रेज सरकार ने इसे जब्त घोषित कर दिया। फिर भी 1930 के सत्याग्रह आन्दोलन के समय इसके कुछ अध्यायों को साइक्लोस्टाइल कराकर प्रसारित किया गया। ज्वालामुखी नाम से इसका तामिल भाषा मे भी अनुवाद छपा।

1946 में कांग्रेस द्वारा प्रान्तीय शासन सूत्र सम्भालने पर इसकी जब्ती को रद्द कर दिया और यह स्वतन्त्र रूप से छप कर बिकने लगा।

सन् 1907 की 10 मई को लन्दन में 1857 की क्रांति के 50 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में एक समारोह मनाया गया। उस समय सावरकर ने अपने भाषण में कहा—'10 मई 1857 का प्रारम्भित युद्ध 10 मई 1907 को समाप्त नहीं हुआ है और उस 10 मई तक समाप्त न होगा जब तक कि साधना पूरी होकर भारत माता स्वाधीनता प्राप्त न कर लेगी।'

मई 1908 में सावरकर ने 'इंडिया हाऊस' में 1957 के विद्रोह का पचासवर्षीय उत्सव मनाया। इंग्लैंड के विभिन्न शहरों से लगभग 100 भारतीय विद्यार्थी इसमें सम्मिलित होने के लिए लन्दन आए। इधर भारत में कन्हाईलाल दत्त और सत्येन्द्र को फासी दे दे गई।

इस समाचार ने वहां और भी उत्तेजना फैला दी। मदनलाल धींगड़ा भी उक्त हाऊस के सदस्य बन गये। एक दिन रात के समय सावरकर तथा मदनलाल में बहुत देर तक गुप्त बातचीत होती रही। अन्त में सावरकर ने उनसे जमीन पर हाथ रखने को कहा। मदनलाल के दोनों हाथ पृथ्वी पर रखते ही सावरकर ने ऊपर से सूवा मार दिया। सूवा उसे छेद पार निकल गया और खून की धार बह चली, किन्तु फिर भी उस वीर की आकृति में अन्तर नहीं आया। सावरकर ने सूवा दूर फेंक दिया। उस समय दोनों के हृदय प्रेम से गद्गद हो उठे। उनकी आंखों से आंसुओं की धारा बह चली। हाथ फैलाने भर की देर थी। दोनों हृदय एक-दूसरे से मिल गये। आंखों के आंसू पोंछते हुए सावरकर ने मदन को छाती से लगा लिया।

अगले दिन इण्डिया हाऊस की मीटिंग में मदनलाल नहीं आए। कुछ लोगों ने उन्हें सर करजन वायली की स्थापित की हुई भारतीय विद्यार्थियों की सभा में जाते देखा था। वायली साहब भारत मंत्री के एडीकांग थे और भारतीय विद्यार्थियों पर खुफिया पुलिस का प्रबन्ध कर उनकी स्वाधीनता को कुचलने के प्रयत्न में लगे रहते थे। मदनलाल के इस आचरण पर इण्डिया हाऊस के विद्यार्थियों में आलोचना शुरू हो गई, किन्तु सावरकर के समझाने पर सब चुप हो गये।

सन् 1909 की पहली जुलाई का दिन था। सर करजन इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट जहांगीर हॉल की सभा में किन्हीं दो व्यक्तियों से बातचीत कर रहे थे कि देखते-देखते मननलाल ने सामने आकर उन पर पिस्तौल का फायर कर दिया। सभा में हा-हा कार मच गया और मदनलाल पकड़कर जेल में बन्द कर दिये गये। चारों ओर से उन पर गालियों की बौछारें पड़ने लगी, यहां तक कि स्वयं पिता ने भी सरकार के पास तार भेजा कि मदनलाल मेरा लड़का नहीं है।

जिस समय इंग्लैंड में विपिन बाबू के सभापतित्व में उनके कार्य के विरोध में सभा हो रही थी और उन पर घृणा का प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास किया रहा था तो सावरकर उसका विरोध करने खड़े हो गये। इतने में एक अंग्रेज ने क्रोध में आकर यह कहते हुए कि "Look, how straight the English fist goes" उसके एक घूसा मार

दिया। पास ही में एक भारतीय युवक खड़ा था। उसने यह कहकर कि "Look, how straight the Indian Club goes उस अंग्रेज के सिर पर लाठी जमा दी। गड़बड़ हो जाने से सभा विसर्जित हो गई और वह प्रस्ताव पास न हो सका।

अदालत में मदनलाल ने सब बातें मानते हुए कहा—"मैं मानता हूं कि मैंने उस दिन एक अंग्रेज की हत्या की, किन्तु वह उन अमानुषिक दण्डों का एक साधारण सा बदला है जो भारतीय युवकों को फांसी और कालेपानी के रूप में दिए गये हैं। मैंने इस कार्य में अपनी अन्तरात्मा के अतिरिक्त और किसी से परामर्श नहीं लिया। एक हिन्दू के नाते मेरा अपना विश्वास है कि मेरे देश के साथ अन्याय करना ईश्वर का अपमान करना है, क्योंकि देश की पूजा श्री रामचन्द्र की पूजा है और देश की सेवा करना श्रीकृष्ण की सेवा है।"

इसके बाद नीरव आकाश की ओर देखकर उस भक्त पुजारी ने कहा—

"मुझ जैसे निर्धन और मूर्ख युवक पुत्र के पास माता की भेंट के लिए अपने रक्त के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है? और इसी से मैं अपने रक्त की श्रद्धांजलि माताश्री के चरणों में चढ़ा रहा हूं।"

भारत मे इस समय केवल एक ही शिक्षा की आवश्यकता है और वह है, मारना सीखना, और उसके सिखाने का एक मात्र ढंग स्वयं मरना है।

मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि "मैं बार-बार भारत की ही गोद मे जन्म लूं, उसी के कार्य में प्राण देता रहूं। वन्देमातरम्।"

अन्त को वीरतापूर्वक फांसी के तख्ते पर खड़े होकर 'वन्देमातरम्' की ध्वनि के साथ 16 अगस्त सन् 1909 को अपनी इहलीला समाप्त कर दी।

भारत में सरकार ने सावरकर के बड़े भाई गणेश सावरकर पर नासिक के कलेक्टर जैक्सन की अदालत में राजद्रोह का मुकदमा चलाया। अपराध बताया गया कि उन्होंने 1908 के आरम्भ में 'लघु अभिनव भारत मेला' नामक राष्ट्रीय गीतों की एक पुस्तक छापी थी। गणेश सावरकर को 9 जून 1909 को हाईकोर्ट से आजन्म कालेपानी की सजा दी गई।

इससे क्रुद्ध होकर सावरकर ने जहाज द्वारा पेरिस से बीस पिस्तौलों का एक पार्सल भारत भेजा। इस पार्सल को चतुर्भुज अमीन के सामान के नीचे छिपा दिया गया। अमीन इंडिया हाऊस में रसोईया था। गणेश सावरकर की गिरफ्तारी के एक सप्ताह बाद चतुर्भुज बम्बई आया। गणेश सावरकर ने अपनी गिरफ्तारी से पहले ही अपने एक मित्र से इस पार्सल के आने की बात प्रकट की थी। गणेश सावरकर के घर से तलाशी में बम बनाने की विधि के कागजात मिले थे, जिसमें 45 प्रकार के बम बनाने की पूर्ण जानकारी थी। गणेश सावरकर का केस डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट जैक्सन ने किया था, अतः उनकी हत्या का निर्णय लिया गया, और दिसम्बर 1909 में उन्हें एक बिदाई समारोह में गोली मार दी गई। मदनलाल धींगड़ा द्वारा की गई कर्जन वायली की हत्या का सावरकर ने एक भरी सभा में समर्थन किया था, इस पर एक यूरेशियन ने उनकी नाक पर घूंसा मारा। पास ही खड़े एक भारतीय युवक ने एक लाठी उस यूरेशियन के सिर

पर दे मारी जिससे उसका सिर फट गया और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। स्काटलैंड की खुफिया पुलिस में सावरकर के भी बहुत आदमी भारती हो गए थे, परन्तु इसका भयानक परिणाम हुआ। सावरकर और उनके साथियों को पुलिस द्वारा अधिक सताया जाने लगा। लोगों ने भयभीत हो सावरकर से मिलना बात करना बन्द कर दिया। सावरकर ने बैरिस्ट्री पास कर ली, परन्तु उन्हें सनद देना रोक लिया गया। सरकारी अंकुशों से बचने के लिए वे लन्दन से पेरिस चले गये, यहां मैडम कामा के घर रहने लगे। परन्तु 1910 में वे फिर लन्दन लौट आए। लन्दन आते ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें पुलिस के पहरे के साथ जहाज पर सवार कराकर भारत भेजा गया। जहाज जब मार्सलीज पहुंचा, तब सावरकर शौच के बहाने कोठरी में गए। कोठरी में एक छोटी खिड़की पोर्ट होल थी, उसका ढक्कन कुछ खुला हुआ था। इस समय उन्होंने अद्‌भुत साहस किया। वे चुस्त पाजामा और चुस्त बनियान पहिने पोर्ट-होल की खिड़की से सिर बाहर निकालकर समुद्र में कूद पड़े। सिपाही देखते ही रह गये। शोर मचा, पुलिस ने गोलियां दागीं, परन्तु एक भी गोली उन्हें न लगी—वे समुद्र में डुबकी लगाकर अन्दर ही अन्दर बहुत दूर तैर गए और किनारे पर आ पहुंचे। पहुंचते ही वे भागे, उनके पीछे अंग्रेज भी भागे। आगे एक फ्रेंच सिपाही खड़ा था। वे वहां तक पहुंचभी न पाए, अंग्रेज भी आ गए थे। उन्होंने सावरकर को पकड़ लिया और जहाज पर ले आए। भारत पहुंचने पर उन्हें नासिक जेल में रखा गया। बम्बई कोर्ट में उन पर राजद्रोह का केस चला। 22 मार्च 1921 को उन्हें आजन्म कालेपानी का दण्ड दिया गया।

आचार्य चतुरसेन का क्रांति में साहित्यिक योगदान

(अनुज चन्द्रसेन द्वारा प्रस्तुत)

प्रथम महायुद्ध अभी समाप्त ही हुआ था। आगरे के बलवन्त राजपूत कालेज के कुछ विद्यार्थी क्रांतिकारी भावनाओं के कारण अपने अंग्रेज प्रिंसीपल डा० फोरसाइट से उलझ बैठे। एक विद्यार्थी ने उन पर पत्थर फेंक कर मारा, जो उनके चश्मे के ऊपर जाकर टकराया। चश्मे का शीशा टूटकर आंख में घुस गया। शीशे और पत्थर की चोट के कारण उनकी आंख नष्ट हो गई। कुछ दिन बाद ही उनकी मृत्यु भी हो गई। परन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी पुलिस को उनकी मृत्यु का रहस्य ज्ञात नहीं हुआ, और उसे 'आत्म घात' कहकर उसने अपनी जांच बन्द कर दी। जिन विद्यार्थियों ने उन पर आक्रमण किया था, वे पुलिस की गिरफ्तारी से बचकर कालेज त्याग कर इधर-उधर भाग गये।

उन्हीं दिनों अलीगढ़ में क्षत्रिय महासभा का अधिवेशन काश्मीर नरेश महाराजा प्रतापसिंह की अध्यक्षता में हुआ। शाहपुराधीश श्री नाहरसिंह भी उसमें उपस्थित थे। स्वामी श्रद्धानन्द ने इस अधिवेशन में बड़ा भारी काम किया। उन्होंने मंच पर खुले रूप से घोषणा की कि "मलकाने (मुस्लिम) राजपूतों को सब संकोच त्याग कर पुनः अपनी

क्षत्रिय जाति में मिल जाना चाहिए। इस समय यहां भारत भर के क्षत्रियों के सरदार एकत्र हैं। क्षत्रियों को भी चाहिए कि वे अपने इन बिछड़े हुए भाइयों को अपने हृदय से लगा लें।" स्वामीजी के आह्वान पर सैकड़ों मलकाने मुसलमानों की वहीं शुद्धि हुई और वे पुनः हिन्दू बने। सबने उनके साथ मिलकर भोजन किया और हुक्का पिया। इसी अधिवेशन में आचार्य चतुरसेन भी सम्मिलित थे, और उनके दो भाषण आर्य संस्कृति पर हुए। उन्होंने कहा कि उच्च वर्णों को अन्त्यज्यों को भी अपने में मिलाकर उनके साथ रोटी-बेटी के सम्बन्ध स्थापित कर लेने चाहिए।

आगरे से भागकर आए हुए दो विद्यार्थी वीरेन्द्रसिंह और श्यामवीरसिंह भी इस अधिवेशन का शुद्धि समारोह देखने आए। उसमें आचार्य जी के ओजस्वी भाषण सुने तो उन्होंने उनसे भेंट करके अपनी क्रांतिकारी भावनाओं को प्रकट किया और अपने भागने का कारण भी बता दिया। आचार्य जी ने उन्हें आश्वासन दिया और अपने साथ उन्हें दिल्ली ले आए। रामजस शिक्षण संस्थाओं के संस्थापक राय साहब श्री केदारनाथ से कह कर आनन्द पर्वत पर उनके गुप्त वास का सुरक्षित प्रबन्ध कर दिया। वह कुछ वर्षो तक वहां रहते और पढते रहें।

सन् 1921 में आचार्यजी की प्रकाशित क्रांतिकारी पुस्तक 'सत्याग्रह और असहयोग' उनके राजनैतिक विचारों का उबाल था। पुस्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा था जब भी तलवार नंगी होगी मैं भी सिपाहियों में अपना नाम लिखाऊंगा। 1910 में इंग्लैंड के बादशाह सप्तम एडवर्ड का देहांत होने के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र जार्ज पंचम वहां की गद्दी पर बैठे। भारत में बंगभंग होने के कारण राजनैतिक अशान्ति को शान्त करने की दृष्टि से जार्ज पंचम ने दिल्ली आकर दरबार करने का निश्चय किया। उन्होंने दिल्ली आने से लार्ड हार्डिंग को वायसराय बनाकर दिल्ली पहले भेज दिया। 23 दिसम्बर 1912 को प्रातः दिल्ली के चांदनी चौक में उनकी भव्य समारोह से हाथी के होदे की पर सवारी निकाली गई। जब हाथी अपनी शान-शौकत से वायसराय को अपने सुनहरी होदे में बैठाकर चांदनी चौक मोती बाजार के समीप आया तो उत्तर दिशा से एक कमरे में छिपकर बैठे रासबिहारी बोस ने वायसराय को निशाना बनाकर बम फेंका। बम-प्रहार से वायसराय तो बच गए—परन्तु पीछे खड़ा हुआ छत्रधारी अर्दली मारा गया। जुलूस में भगदड़ मच गई। सारे चांदनी चौक को गोरे सिपाहियों ने घेर लिया। परन्तु बम प्रहारक रासबिहारी बोस कमरे से चुपचाप उतरकर एक पतली गली में लुकते-छिपते स्टेशन की ओर भाग गए और कलकत्ता की ट्रेन में बैठकर बनारस, बनारस से कलकत्ता पहुंच गए। उपरोक्त सारी घटना को आचार्य जी ने अपनी आंखों से देखा था। वे उस समय मोती बाजार के पास खड़े यह जुलूस देख रहे थे।

सन् 1928 में चांद का फांसी अंक उन्होंने विप्लववादियों के प्रति अत्यन्त प्रेम और सहानुभूति के कारण ही निकाला था। वे उन तरुणों को बहुत श्रेष्ठ मानते थे, जो अपना गरम नया खून भोग-विलास में न देकर मातृभूमि के चरणों में दे रहे थे। बहुत बार बहुत दिनों तक विप्लवी युवकों को उन्होंने छिप कर रहने में सहायता दी थी। फिर भी 'चांद' के फांसी अंक के प्रश्न को लेकर उस समय के विप्लववादियों की कार्य समिति

की एक गुप्त बैठक में आचार्यजी पर यह सन्देह प्रकट किया गया कि उन्होंने दल के कुछ प्रमुख व्यक्तियों द्वारा लिखे गए लेखों के नाम और पते ब्रिटिश सरकार को बता दिये हैं। कार्य समिति में इस पर विचार हुआ। कुछ सदस्यों ने उन्हें निर्दोष कहा, कुछ ने सन्देह की पुष्टि की। परन्तु विप्लववाद सन्देह को भी अपने लिए अहितकर समझता है। इसलिए निश्चय हुआ कि आचार्य जी को शूट कर दिया जाए। उन दिनों वह नई दिल्ली में हनुमान रोड़ की 15 नम्बर की कोठी में रहते थे। ऋषभचरण जैन उस समय गरम युवक थे और आचार्यजी के ऊपर बहुत श्रद्धा-भक्ति रखते थे। वह हमारे घर में परिवार-सदस्य की भांति उठते-बैठते थे। उन दिनों वह भी यौवन के द्वार पर थे और अपनी लेखनी के साथ-साथ विप्लववादियों से भी सम्पर्क रखते और उन्हें सहायता देते थे। एक सूत्र ने ऋषभचरण को यह सूचना दे दी कि आज रात्रि 11 बजे आचार्य जी को खत्म करने का समय निश्चित हुआ है। दल के निर्णय तो अटल होते ही हैं। ऋषभ यह सूचना पाकर व्यस्त हो गये। उन्होंने आचार्य जी के अनुज चन्द्रसेन से आकर कहा—"आज रात को 9 बजे से 11 बजे तक आचार्यजी के कमरे के द्वार पर खडे रहकर पहरा देने की सावधानी बरतना। घर में किसी को आभास न हो। मैं भी 10 बजे तक आ जाऊंगा।"

ऋषभचरण ने यह सूचना उन्हें सायं 5-6 बजे दी। और एक बार फिर उसी बात को दोहराकर वह साइकिल पर बैठकर तेजी से एक ओर चले गये। अधिक उन्होंने कुछ नहीं बताया, चन्द्रसेन से भी चुप रहने को कहा। मन में अनेक शुभ-अशुभ बातों को सोचते-विचारते चन्द्रसेन स्वाभाविक गति से अपने कार्य में लग गये। मन की बात दबा कर रखी। भोजन आदि से निबट कर आचार्य जी पुस्तक लेकर अपने बिस्तर में जा लेटे। सर्दियों के दिन थे। यही उनका नियम था, पढ़ते-पढ़ते या पत्नी से बातें करते-करते वह सो जाते थे। कुछ देर बाद वह सो गए।

9 बजे, 10 बजे, 11 बजे, 12 बज गए। चन्द्रसेन मन-ही-मन ऋषभचरण पर क्रुद्ध हो रहे थे कि मुझे आशंकित करके आए भी नहीं। एक घंटा और बीता। एक बजते ही एक काली मूर्ति लम्बे ओवरकोट में अपने शरीर को ढके चन्द्रसेन की ओर बढ़ी चली आ रही थी। वे आशंकित हो उठे। उन्होंने चुपचाप उस मूर्ति को अपने पास तक आने दिया। पास आकर मूर्ति ने उनका हाथ कसकर पकड़ लिया और धीरे से कहा—"चन्द्रसेन डरना नहीं, मैं हूं ऋषभचरण।" अब तुम जाकर सोओ, मैं यहां खड़ा हूं।

"पर क्यों? कुछ तो कहो?"

"चुप", उन्होंने उनके मुंह पर हाथ रख दिया—"आचार्य जी जाग जाएंगे। और भी कोई देखे सुनेगा। तुम मेरी आज्ञा मानकर अपने कमरे में जाकर सो रहो, पर देखो, दरवाजा खुला रखना, सम्भव है मैं आऊं। अभी इतना ही, बाकी बातें सवेरे होंगी।"

रात भर जागने से दिन निकलते-निकलते चन्द्रसेन को नींद आ गई और देर तक सोते रहे। 8-9 बजे नींद खुली। उनकी भाभी ने आकर कहा—"बहुत नाराज हो रहे हैं, इतनी देर तक सोते हो?"

चन्द्रसेन हंसकर उठ बैठे और काम में लग गये।

बड़ी अधीरता से दोपहर बीता और चन्द्रसेन ऋषभ के घर पहुंचे। देखते ही ऋषभ उठ खड़े हुए। ऋषभचरण उनको देखते ही उठ खड़े हुए और उनका हाथ पकड़ अपने घर से चलकर जामा मस्जिद के पास एडवर्ड पार्क में एक एकान्त स्थान पर आ बैठे। इधर-उधर देखकर उन्होंने सब बातें बताईं। कहने लगे—"तुम्हें सावधान करके मैं समिति के उस सदस्य से मिलने चला गया था, जिसे यह काम सौंपा गया था। बहुत ढूंढ़ने पर वह मिला। उसे सारी स्थिति बताई।"

सुनकर सदस्य ने कहा—"तब पुलिस को हमारे कुछ सदस्यों के नाम और पते कैसे ज्ञात हुए ?"

ऋषभ ने उन्हें समझाया कि आचार्यजी के फतेहपुरी वाले मकान में पुलिस दिन-भर तलाशी लेती रही थी, पर कुछ भी हाथ नहीं लगा। तब पुलिस ने आचार्यजी को कुछ नाम और पते बताकर पूछा था कि इन्हें जानते हो ? इस पर आचार्य जी ने अपनी अज्ञानता प्रकट की थी। असल में ये नाम और पते तो पुलिस को इलाहाबाद 'चांद' कार्यालय से रुपयों की रसीद के वाउचरों पर लिखे मिले थे। आचार्यजी भला कैसे बता सकते थे, उन्होंने तो पुलिस से इंकार ही कर दिया था। अब यदि तुम गलतफहमी में आचार्यजी की हत्या कर दोगे तो एक भारी अन्याय होगा। एक क्रांतिकारी साहित्यकार जिसने 'फांसी अंक' निकाल कर विप्लववाद की महत्ता जन-जन में व्याप्त कर दी है, की लोह-लेखनी सदैव के लिए बन्द हो जायेगी। जरा सोचो तो आचार्यजी शरीर से न सही, कलम से आप लोगों का कार्य कर रहे हैं।"

ऋषभ के बहुत कहने पर वह अपने साथी से परामर्श करने गया और कहता गया कि वह आधे घन्टे में उन्हें उत्तर देगा। परन्तु वह नहीं लौटा। एक बजे तक भी जब वह नहीं आया, तब ऋषभ आश्वस्त हुए। क्योंकि दल का यह नियम था कि नियत समय पर काम न हो जाए तो फिर उसे अन्य समय के लिए स्थगित कर दिया जाता है और दुबारा मीटिंग में तय किया जाता है। आश्वस्त होकर भी ऋषभ रात भर आचार्य जी के द्वार पर दूर खड़े निगरानी करते रहे और पौ फटने पर वे वहां से चल दिए। क्योंकि उनके ओवर कोट की जेब में पिस्तौल थी। इन्होंने यह निश्चय किया था कि यदि उनका अनुरोध न माना गया तो उसी पिस्तौल से वे उसे मार डालेंगे।

चन्द्रसेन ने हर्ष से अवरुद्ध कण्ठ से कहा—"ऋषभ, तुम महान हो, तुमने मुझे मात देदी। मैं तुम्हारी कैसे पूजा करूं।"

पर ऋषभ ने हंसते हुए कहा—"आओ, आचार्यजी के पास चलें। पर देखो, उन्हें या भाभी को यह कभी मत बताना। कसम है।"

इस घटना के कुछ दिन बाद ही आचार्यजी को लाहौर किले में लाहौर षड्यन्त्र केस के सिलसिले में जाना पड़ा। वहां उनसे भगतसिंह, सुखदेव, बटुकेश्वर दत्त आदि की शिनाख्त करने को कहा गया, पर उन्होंने किसी को भी पहचानने या जानने से साफ इंकार कर दिया था।

जिस दिन वह लाहौर गए, उस दिन चन्द्रसेन घर पर नहीं थे। एक सप्ताह पूर्व

कलकत्ता कार्यवश गया हुआ थे। आचार्यजी ने चन्द्रसेन को पत्र लिखा—'पत्र पढ़ते ही तुम घर पर अपनी भाभी के पास चले आना, अकेली हैं। मैं एक जरूरी काम से आज रात ही लाहौर जा रहा हूं। यदि मुझे वहां से लौटने में देर लगे तो जैनेन्द्र से मिल लेना।'

पत्र पढ़ते ही चन्द्रसेन कलकत्ते से चल पड़े। भाभी से उनके जाने का कारण पूछा। उन्होंने कहा—"एक शादी में गए हैं।" सुनकर मैं निश्चित हो गया। एक सप्ताह बाद वे लौट आए। लाहौर में क्या हुआ कैसी गुजरी इसका विवरण उन्होंने किसी को नहीं बताया, सिर्फ जैनेन्द्र जी से ही कहा।

भगतसिंह के बलिदान के दिनों में आचार्य जी लखनऊ प्रवास में थे और गंगा प्रेस में आरोग्य शास्त्र छप रहा था। मुंह अंधेरे ही अखबार वाले सड़क पर चिल्लाते हुए दौड़ रहे थे—'सरदार भगतसिंह को फांसी।' उन्होंने उठकर अखबार पढ़ा और पढ़ कर उदास हो गए। दिन भर कुछ नहीं खाया।

आचार्य चतुरसेन के सम्पादन में 'चांद' मासिक पत्रिका का प्रकाशन एक अभूतपूर्व क्रांतिकारी कदम था। प्रकाशित होने के एक घण्टे बाद ही वह ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था। फांसी अंक प्रकाशित होते ही पैकिंग करके गुप्त रूप से पहले हाई कोर्ट के एक जज की कोठी में पहुंचाया गया, यहां से जी० पी० ओ० वालों ने तत्काल ही सारे पैकेट इलाहाबाद स्टेशन से रात की मेल सर्विस में भारत के वे कोने-कोने में रवाना कर दिए। कुल तीन घंटों में यह कार्य देश-प्रेम की उत्कंठ भावना से उन लोगों के सहयोग और गोपनीय वृत्ति से हुआ। उसके बाद पुलिस ने चांद कार्यालय में घुसकर फांसी अंक बहुत खोजा, परन्तु दो प्रतियों के सिवा वह कुछ भी न पा सकी। अन्ततः वह जब्त हुआ और लोगों ने उसे सौ-सौ रुपये मूल्य में खरीदने की चेष्टा की।

देश में आतंकवाद, विप्लववाद, समाजवाद का भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में सहायक हो सकता है, इस भावना को प्रकट करने के लिए उस समय की आतंकवाद की गतिविधियों का सही विवरण देने की इच्छा से चांद के सम्पादक ने घोषणा की और इस अंक का सम्पादन का भार उस समय लोह लेखनी के धनी नाम से प्रख्यात आचार्य चतुरसेन को दिया गया जिसे उन्होंने पूर्ण योग्यता और निर्भीकता से किया।

आचार्य चतुरसेन के संपादन में चांद का 'फांसी अंक' प्रकाशित होने की सूचना देश भर में प्रकट हुई। 1928 के उत्तरार्द्ध के दिन थे। आतंकवाद की गर्मागर्म खबरें भारत के नवयुवकों को उद्वेलित करती रहती थीं। बंगाल और पंजाब के विप्लववादी गुप्त रूप से समान विचारों वाले व्यक्तियों की टोह में रहते थे। उन्होंने जब फांसी अंक निकलने की सूचना पढ़ी, तब कुछ प्रमुख युवक दिल्ली आए और आचार्य जी के संजीवन प्रेस में, जो उन दिनों फतहपुरी की एक गली मे था, आकर कम्पोजीटर बनकर कार्य करने लगे। प्रेस आचार्य जी के अनुज चन्द्रसेन की व्यवस्था में था। दो-चार दिन में ही उनके कार्य करने के ढंग से वे झुंझला उठते थे, क्योंकि वे नियत समय पर नहीं आते थे। कभी दिन में, कभी दिन छिपे, कभी रात में। कभी दो घंटे काम किया कि गायब, कभी पेशाब करने को कहकर बाहर निकले कि गायब। न अदब मानें, न कायदे-कानून। तीन-चार

दिन बाद उनमें से एक व्यक्ति ने दिन छिपे आकर, जब प्रेस खाली था, और सब लोग जा चुके थे, चन्द्रसेन से हंसते हुए आकर कहा—"जरा आचार्य जी से मिलना है, इस समय उनके पास कोई है तो नहीं ?"

चन्द्रसेन उनसे अप्रसन्न तो था ही, खीझकर पूछा—"क्यों क्या काम है ?"

"मेरी बहिन अकस्मात अस्वस्थ हो गई है, जरा दवा पूछूंगा।"

खीझ दूर करके उन्होंने कहा—"हां, अकेले ही हैं।"

युवक तेजी से उनके कमरे में चिक उठाकर घुस गया, परन्तु पन्द्रह-बीस मिनट बीतने पर भी वह बाहर नहीं निकला। चन्द्रसेन उसकी प्रतीक्षा में प्रेस बन्द करने से रुके रहे। हारकर वे आचार्य जी के कमरे में झांककर देखने लगे। युवक कुछ लिखे कागज उन्हें दिखा रहा था और आचार्य जी सतर्कता से उन पर नजर फेर रहे थे। आचार्य जी ने चन्द्रसेन से कहा—"जरा, बाहर ही बैठो।"

अगले दिन से ही तीन युवक आचार्य जी के मकान के ऊपर वाले कमरे में आकर रहने लगे और कभी दिन, कभी दोपहर, कभी रात में आ ताला खोलकर कुछ लिखा करते थे।

ये युवक सरदार भगतसिंह, चन्द्रशेखर, सुखदेव आदि थे, जिनका असली नाम आचार्य जी को भी असेम्बली बमकांड के समय ही ज्ञात हुआ। जिस दिन असेम्बली में बम फेंका जाना था, एक युवक ने आकर उन्हें दो पास दिए कि आप तुरन्त माताजी के साथ असेम्बली का आज का अधिवेशन देखने जाइए। समय हो रहा है, उठिए।

और आचार्य जी जिज्ञासावश सपत्नीक गए थे। बमकांड देखा था, भगतसिंह का असली नाम जाना था, उनका शौर्य देखा था।

चांद के 'फांसी अंक' निकलते ही एक तहलका मच गया था। आचार्य जी की 'उठो जागो' की भावना कुछ कर डालने की इच्छा युवकों में उभरकर व्यक्त हुई। अंक के निकलते ही आचार्य जी की लेखनी के चमत्कार पर सब चकित रह गए थे। प्रसिद्ध पत्रकार सत्यदेव विद्यालंकार ने इस विषय पर लिखा है—'···प्रकट रूप में आचार्य जी को कभी किसी ने क्रांतिकारी के रूप में नहीं देखा और उनकी किसी क्रांतिकारी प्रवृत्ति का किसी को पता नहीं चला। इसी कारण जब 'फांसी अंक' के सम्पादन के रूप में उनके नाम की घोषणा की गई, तब सब विस्मित-से रह गए। फांसी पर हंसते-खेलते झूलने वाले और क्रांतिकारियों की अमर गाथा लिखने का उनको अधिकारी मानने को उनके आलोचक तैयार न थे। परन्तु लार्ड हार्डिंग पर बम प्रहार की ऐतिहासिक घटना आचार्य जी के मन पर सदा के लिए गड़ गई थी और उससे उनके दिल और दिमाग पर देशभक्ति की भावना का जो बीजारोपण हुआ था, उसके अंकुर सदा ही हरे-भरे बने रहे।

आचार्य जी ने इस विशेषांक के सम्पादक बनकर उसके लिए सामग्री संचय करने में जिस साहस, धैर्य और निर्भीकता से काम लिया और जो भारी जोखिम उठाया उसकी कल्पना कर सकना कठिन नहीं होना चाहिए। वह साहसपूर्ण काम आग से खेलने के समान था। उसमें आचार्य जी ने जो सफलता प्राप्त की वह विस्मयजनक थी। उसको केवल एक विशेषांक के रूप में नहीं देखना चाहिए, अपितु उस वीर पूजा के रूप में देखना चाहिए,

जिसको उन दिनों में एक भयानक अपराध माना जाता था और जिसके लिए कुछ भी सजा दी जा सकती थी। अंग्रेज नौकरशाही और उसकी पुलिस ने उस अंक को तुरन्त जब्त कर लिया। आज क्रांतिकारियों के वीरतापूर्ण कारनामों के जिस इतिहास के लिखने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है, हिन्दी में उसका सूत्रपात्र आचार्य चतुरसेन ने उस अंक द्वारा उन दिनों कर दिया था, जब उसकी चर्चा करना भी अपराध था।

बैसाखी पर गोलीवर्षा

रविवार, 13 अप्रैल को बैसाखी थी। बैसाखी पंजाब का महत्वपूर्ण धार्मिक त्योहार है। अमृतसर जाने के रास्तों पर सिखों के पवित्र स्थान दरबार साहिब (स्वर्ण मन्दिर) के सरोवर में स्नान और पूजा करने वालों का तांता लग रहा था। बैसाखी पर्व होने के कारण पंजाब के प्रत्येक आंचल से स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध मेला देखने अमृतसर आये थे। मेले में घूम-फिरकर थकावट से चूर कुछ व्यक्ति बाग में विश्राम कर रहे थे। बाग में एक सभा भी असहयोग आंदोलन के सम्बन्ध में हो रही थी।

जब डायर को बताया गया कि शहर में बहुत बड़ी संख्या में लोग जमा हो रहे हैं तो उसने भयानक शक्ति प्रदर्शन का निश्चय किया। उसने एक सार्वजनिक घोषणा जारी की। उस घोषणा के बारे में लोगों को बहुत कम ज्ञान था। सुबह 9.30 के बाद ब्रिटिश और भारतीय सैनिकों का एक दस्ता शहर के बाजारों से होकर गुजरा। उसके पीछे-पीछे डायर की कार और दो बख्तरबन्द गाड़ियां थीं। दस्ते के साथ एक बैलगाड़ी भी थी जिस पर ढिंढोरची बैठा था। जगह-जगह गाड़ी रोककर वह ढोल पीटता और जोर-जोर से उर्दू में ऐलान पढ़ता। हाथ-के-हाथ एक और आदमी पंजाबी में समझाता जाता। यह दस्ता नगर में 19 स्थानों पर रुका और हर स्थान पर घोषणा पढ़कर सुनाई गई। घोषणा के अन्त में कहा गया था : "चार या उससे अधिक आदमियों का जुलूस या जमाव गैरकानूनी माना जाएगा और यदि आवश्यक हुआ तो शस्त्र बल द्वारा उन्हें तितर-बितर कर दिया जाएगा।" घोषणा सुनकर हजारों लोग गुस्से से लड़ने पर उतारू हो गए। कुछ लोगों ने मिट्टी के तेल के खाली कनस्तर बजाए और चिल्लाए, "अंग्रेजी राज मुर्दाबाद!"

सैनिक दस्ते को अमृतसर की सड़कों से गुजरने में दो घंटे से भी अधिक लगे। तब तक शहर भट्ठी की तरह तपने लगा था। गर्मी इतनी अधिक हो गई थी कि डायर ने निश्चय किया कि अब और आगे न जाया जाए। इसके अलावा उसका विचार था कि घोषणा की सूचना ऐसे लोगों को भी एक-दूसरे के द्वारा मिल जाएगी जिन्होंने स्वयं उसे नहीं सुना है।

सदर मुकाम पर लौटने के तुरन्त बाद ही उसे पता चला कि घोषणा की अवहेलना

करते हुए लोग बहुत बड़ी संख्या में जलियांवाला बाग में एकत्र हो रहे हैं। शाम 4 बजे तक उसने अपना इरादा पक्का कर लिया। उसने 19वीं गुरखा से 25, 54वीं सिख फण्टियर फोर्स और 59वीं राइफल्स फ्रण्टियर फोर्स से 25 सशस्त्र सैनिकों और केवल खुखरी से लैस 40 गुरखों को एकत्र किया। एक बार फिर वह दस्ते के साथ सड़कों से मार्च करता निकला। जब वे बाग में पहुंचे तो दोनों बख्तरबन्द गाड़ियां बाहर सड़क पर ही रुक गई। बाग का दरवाजा इतना तंग था कि वे अन्दर प्रवेश नही कर सकती थीं। सभी सैनिकों ने दौड़कर कच्चे चबूतरे के साथ मोर्चा सम्भाल लिया। डायर ने उन्हें भौंचक्की भीड़ पर गोली चलाने का आदेश दिया।

किंतु उस आयताकार और ऊंची बाग दीवार के भीतर चल रही राजनीतिक सभा में वह विशाल भीड़ उन लोगों की कदापि नहीं थी जो केवल भाषण सुनने आये थे। उनमें से कुछ ही लोग भाषण सुन रहे थे—और वह भी पूरे ध्यान से नहीं। बाकी लोग ऊंघ रहे थे या ताश अथवा पांसे खेल रहे थे या गपशप कर रहे थे।

यह केवल नाम का ही बाग था क्योंकि जमीन पर न तो घास थी और न कहीं पेड़-पौधे ही थे। एक के बाद एक वक्ता भाषण देता गया। एकाएक बाग में उपस्थित लोगों ने भारी-भारी बूटों की आवाज सुनी। बाग के एक सिरे पर एक तंग रास्ते पर सैनिक दिखाई दिए जो तेजी से आगे बढ़ रहे थे। उनकी कमान सफेद बालों वाले ब्रिगेडियर जनरल रेजिनल्ड डायर के हाथ में थी, जो सीमाप्रांत के युद्ध में भाग ले चुका था। बाग में सैनिकों के घुसते ही डायर का आदेश गूंजा।

भारतीय और नेपाली सैनिकों का मिला-जुला दस्ता प्रवेश द्वार के दोनों ओर मिट्टी के कच्चे चबूतरे के साथ-साथ तुरन्त फैल गया। डायर की आवाज फिर गूंजी :

"फायर !" (गोली चलाओ।)

जैसे ही गोलियां दनादन चलनी शुरू हुईं, भीड़ में खलबली मच गई। सफेद कपड़े पहने बहुत से लोग जमीन पर लेट गए। कुछ ही क्षणों में लोगों में आतंक छा गया। लोगों ने आसपास की दीवारों या बाग से बाहर निकलने के तीन तंग रास्तों की ओर भागना आरम्भ कर दिया। घुटनों के बल बैठे सैनिक बड़ी सावधानी से निशाना साधकर गोलियां चला रहे थे और उनकी गोलियां ठीक निशाने पर लग रही थी। जब उनकी राइफलों में गोलियां खत्म हो गईं तो डायर ने उन्हें दोबारा गोलियां भरने और तेजी से गोलियां बरसाने का आदेश जारी किया। कच्चे चबूतरे पर चढ़े डायर ने इधर-उधर नजरें घुमाकर अपने सैनिकों को आदेश दिया कि वे राइफलों का रुख दीवार पर चढ़ने का प्रयत्न कर रहे और बाहर निकलने के रास्तों की ओर धक्कम-धक्का कर रहे लोगों की ओर कर दें। बाग की चहारदीवारी के भीतर एक छोटी-सी समाधि थी। जो लोग उसके पीछे छिपने का प्रयत्न कर रहे थे, उन्हें बुरी तरह भून दिया गया।

जो लोग किसी तरह दीवार पर चढ़ गए थे, उनमें से कई घायल हो जाने के कारण गिरकर मर गए। बाग की तरह बाहर की तंग गलियां भी शीघ्र ही लाशों से अट गईं।

गोलियां 10 मिनट तक चलती रहीं। सैनिक गोलियां चलाते, राइफलों में गोलियां खत्म हो जाने पर उन्हें फिर से भरते और पुनः गोलियां चलाना शुरू कर देते। जब सैनिकों

के पास कारतूस प्रायः खत्म हो गए तो डायर ने उन्हें गोलीबारी बन्द करने और वहां से चल देने का आदेश दिया। सैनिकों के उस छोटे दस्ते ने शांत चित्त से राइफलें कन्धों पर रखी और वहां से चल दिए। बाग में हुए जन-संहार के दृश्य पर दृष्टि डाले बिना ही डायर सैनिकों के पीछे-पीछे तेजी से चल दिया।

13 अप्रैल, 1919। जलियांवाला बाग लड़ाई का वीरान मैदान-सा दिखाई दे रहा था। दीवारों के साथ-साथ और बाहर निकलने के रास्तों पर लाशों के ढेर लगे थे। डायर के सैनिकों ने भीड़ पर कुल मिलाकर 1,650 राउण्ड गोलियां चलाई थी। गोली लगने या भगदड़ में कुचल जाने से 2000 व्यक्ति घायल होकर सिसक रहे थे, कुछ मर गये थे।

ब्रिगेडियर जनरल रेजिनल्ड हैरी डायर 54 वर्ष की उम्र में भी काफी सुन्दर था। उसके सिर के बाल सफेद हो चले थे और बहुत छोटे-छोटे कटे थे। उसकी मूंछें भी तराशी हुई थीं और भारी-भारी पलकों के नीचे नीली आंखें थीं। उसका अधिकांश जीवन भारतीय उपमहाद्वीप में बीता था।

स्कूल में उसे सिखाया गया था कि अंग्रेज एक पृथक जाति है और उनकी स्त्रियों के सम्मान की रक्षा हर कीमत पर की जानी चाहिए। घर में वह खाने की मेज पर सैनिक अधिकारियों तथा प्रशासकों को वार्तालाप करते सुनता। भारत पर शासन करना इंग्लैंड का दैवी अधिकार है, उनके इस विश्वास पर उसे कभी शंका नही हुई थी। उस वार्तालाप में अकसर 1857 के 'भारतीय गदर' की भी चर्चा होती। बूढ़े अंग्रेजों के दिलों में उसकी याद अभी तक ताजा थी। यही कारण था कि दूसरे गदर के भी संकेत के प्रति चौकन्ने रहना उनका स्वभाव-सा बन गया था।

'रेक्स' डायर बड़ी जल्दी गुस्से में आ जाता था और हाथापाई पर उतर आता था। स्कूल में वह अच्छा घूंसेबाज बन गया था। उसका स्वभाव उग्र था और उसे घूंसे के बल पर हर बात का फैसला करने की आदत थी। इसीलिए उसका प्रारम्भिक सैनिक जीवन दो बार संकट में पड़ चुका था। दोनों ही अवसरों पर उसके गैरअफसराना आचरण को क्षमा कर दिया गया था। भारतीय सेना में बदली हो जाने पर उसका नाम देश के हर आदमी की जबान पर आ गया और उसे 'कंपेनियन आफ द बाथ' की उपाधि से सम्मानित किया गया था। वह अपना वास्तविक रूप हमेशा बढ़ा-चढ़ा कर ही पेश करता था।

किन्तु 1919 तक डायर बीमार आदमी हो चुका था। वह काफी तगड़ा था, फिर भी खराब सेहत और चोट ने उसे जिद्दी बना दिया था। प्लूरिसी (फेफड़े की झिल्ली की सूजन), हाकी की स्टिक से तालू को पहुंची भयंकर चोट तथा घुड़सवारी के दौरान दो भीषण दुर्घटनाओं के अलावा लू लगने, लड़ाई के मैदान में बुखार और मलेरिया हो जाने से उसकी हालत वस्तुतः एक जीर्ण-शीर्ण व्यक्ति जैसी हो गई थी। डायर के लिए इससे भी अधिक *खराब बात यह थी कि वह 'आर्टीरियोस्क्लेरोसिस' से पीड़ित था।* धमनियों को कठोर कर देने वाला उसका यह रोग बिगड़कर असाध्य हो चुका था। पंजाब में उस समय असंतोष की चिनगारियां सुलग रही थी। ऐसी स्थिति में उस प्रदेश में कमान के

लिए उसे शायद ही आदर्श व्यक्ति कहा जा सकता था।

शारीरिक पीड़ा ने डायर के स्वभाव को अधिक उग्र बना दिया था। इसलिए किसी भी संकट के समय उस पर कुछ ज्यादा ही प्रतिक्रिया होने की संभावना थी।

सन 1919 तक पंजाब में विप्लव के चिह्न दिखाई देने लगे थे। उस समय ब्रिटेन में लायड जार्ज की सरकार भारतीय उपमहाद्वीप में एक नए युग के सूत्रपात्र की आशा कर रही थी। 20 अगस्त 1917 को भारत सचिव एडविन मांटेग्यू ने ब्रिटिश लोक-सभा में बताया था, "ब्रिटिश सरकार की नीति प्रशासन में प्रत्येक क्षेत्र मे भारतीयों को अधिकाधिक शामिल करने की है ताकि ब्रिटिश साम्राज्य के एक अविच्छिन्न भाग के रूप में भारत में धीरे-धीरे एक उत्तरदायी सरकार की स्थापना हो सके।"

अधिकांश शिक्षित भारतीयों ने मांटेग्यू के वक्तव्य को, भारतीय इतिहास में मील का पत्थर' बताकर उसका स्वागत किया था। भारत ने प्रथम विश्व युद्ध के लिए 13,00,000 सैनिक दिए थे जो प्रायः हर ब्रिटिश मोर्चे पर लड़े थे। भारतीयों को विश्वास था कि अन्ततः इस वफादारी पर उन्हें पुरस्कृत किया जाने वाला है, किन्तु भारत में रहने वाले अंग्रेजों में इस विषय पर कोई उत्साह नहीं था।

भारत में अंग्रेजों की शान शौकत और ठाठबाट, उनके आपसी सामाजिक भेदभाव और मुखर जातीय भेद-नीति ने मांटेग्यू को शीघ्र ही यह अनुमान करा दिया कि राजनीतिक और सामाजिक क्रांति से गुजर रहे इंग्लैंड से भारत कोसों दूर है। मांटेग्यू ने देखा कि वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड के मन में हर समय कायदे कानून की ही बात रहती है। उसे भारतीयों की राजनीतिक आकांक्षाओं में कोई दिलचस्पी नही थी। इस मामले में उसका रवैया बहुत ही कठोर था। पंजाब के चालाक मगर लड़ाकू लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर माइकेल ओरड्वार का रवैया तो और भी असहयोगपूर्ण था।

भारत के भविष्य के बारे में मांटेग्यू और ओ'ड्वायर के विचार बिलकुल विपरीत थे। ओड्वायर का यह दृढ़ विश्वास था कि भारत पर शासन करना ब्रिटेन का दैवी अधिकार है, उसकी मान्यता थी कि जमींदार ही भारत की रीढ़ की हड्डी है। इसीलिए उस ने मुख्यतः जमींदारों को दृष्टि में रखकर ही पंजाब का शासन प्रबन्ध चलाया। वह भारत के शिक्षित वर्ग का हस्तक्षेप सहन करने को तैयार नही था। उसका कहना था कि 'राजनीतिज्ञों की चीख पुकार' पर ध्यान न देकर 'मूक जनता' के हितों को प्राथमिकता दी जाए।

मांटेग्यू कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति था। उसने जिन सुधारों का सुझाव दिया था, उन पर चैम्सफोर्ड के साथ कठिन परिश्रम किया था। 24 अप्रैल 1918 को जब मांटेग्यू स्वदेश के लिए रवाना हुआ तो उसका खयाल था कि वह अपने उद्देश्य में कुछ हद तक सफल रहा है। उसे इस बात का पता नही था कि भारतीय राजनीतिज्ञ भी सरकार के प्रस्तावित सुधारों के विरोधी हो जाएंगे। आदर्शवादी मांटेग्यू को जो जहाज इंग्लैंड ले जा रहा था, उस पर एक और व्यक्ति भी सवार था जिसका नाम भारत में जंगल की आग की तरह फैलने वाला था। यह व्यक्ति था किंग की बेंच का न्यायाधीश सर सिडनी रौलेट।

1914-18 के युद्ध की समाप्ति पर ब्रिटेन ने भारत में विरोध की आशंका से भारत

रक्षा कानून की जगह दूसरा कानून बनाने का निश्चय किया था। भारत रक्षा कानून ब्रिटेन के युद्ध प्रयत्नों में रुकावट पैदा कर सकने वाले भारतीय आंदोलनों को दबाने के के लिए संकटकालिक कानून के रूप में बनाया गया था। भारत सरकार ने रौलेट की अध्यक्षता में एक समिति कायम की जिसका काम था भारतीय उपमहाद्वीप में विद्रोह को दबाने के लिए सरकार को विशेष अधिकार प्रदान करने वाले कानून की रूपरेखा तैयार करना। इस समिति के परिणामस्वरूप दो विधेयक सामने आए। एक विधेयक को गैर सरकारी तौर पर रौलेट-ऐक्ट कहा जाता था।

इस कानून के तहत सरकार को बिना वारंट के लोगों को गिरफ्तार करने और उन की संपत्ति की तलाशी लेने, बिना मुकदमा चलाए संदिग्ध व्यक्ति को नजरबन्द करने और लोगों पर ऐसी विशेष अदालतों में मुकदमा चलाने का अधिकार मिल गया जिनमें न तो जूरी के सदस्य थे और न ही जिनके फैसलों के विरुद्ध कोई अपील की जा सकती थी। इन नए कानूनों ने लोगों को हिंसात्मक कार्रवाइयों के लिए उकसाया।

6 फरवरी 1919 को मुहम्मद अली जिन्ना ने इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में चेतावनी दी कि रौलेट ऐक्ट से "देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक ऐसा असंतोष और आंदोलन फैलेगा जैसा आपने इससे पहले कभी नहीं देखा होगा।" किन्तु अंग्रेजों ने जिन्ना की इस चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया। रौलेट ऐक्ट पास होने के एक महीने के भीतर ही उपद्रव शुरू हो गए। और भारतीयों की सबसे ज्यादा नाराजगी सर माइकेल ओ'ड्वायर के पंजाब में ही देखने में आई।

पंजाब वालों को लगता था कि युद्ध के कारण उन्होंने अधिकांश भारतीय प्रदेशों की तुलना में अधिक कष्ट भोगे हैं। यूरोप को खाद्य सामग्री के निर्यात से स्थानीय बाजार में इन चीजों के भाव बेहद चढ़ गये थे। इससे उत्पादकों और व्यापारियों ने खूब लाभ उठाया था। गरीबों के लिए दो जून की रोटी जुटाना कठिन हो गया था। टैक्स बढ़ने और युद्ध ऋणों के लिए चंदा देने से पंजाबियों के कष्ट और भी बढ़ गए थे।

इसके अलावा अपनी लड़ाकू जातियों में से भारत की सेना के लिए अधिकांश सैनिक मुहैया करना पंजाब की परम्परा थी। जब-जब ब्रिटेन ने रंगरूटों की मांग की तो पंजाब ने उसे शानदार तरीके से पूरा किया। किन्तु भर्ती के जो तरीके अपनाए गए, उनके प्रति लोगों में गहरा असंतोष था। ओ'ड्वायर ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

उस समय अमृतसर में हिन्दू-मुस्लिम नेता उभरकर सामने आए। उनके मेल ने अंग्रेजों को आश्चर्य में डाल दिया। हिन्दू-मुसलमानों के आपसी विरोध के कारण ही मुख्यतः अंग्रेज यह काम करते थे कि भारतीय अपना शासन स्वयं चलाने लायक नहीं हैं। उन दोनों नेताओं ने अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की चाल को नाकाम कर दिया।

डॉ० सैफुद्दीन किचलू बैरिस्टर थे और उनकी शिक्षा-दीक्षा कैंब्रिज में हुई थी। डॉ० सत्यपाल जन्म एक मध्यमवर्गीय हिन्दू परिवार में हुआ था। डॉ० किचलू की तरह वे भी प्रभावशाली वक्ता और राष्ट्रवादी थे और शांतिपूर्ण तथा सांविधानिक उपायों से राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने में विश्वास रखते थे।

रौलेट कानूनों के सबसे प्रबल विरोधी थे महात्मा गांधी। इन कानूनों का विरोध

करने से गांधीजी भारत स्वाधीनता संग्राम के नेता बन गए। गांधीजी का विचार था कि रोलैट कानूनों को वापस लेने के लिए सरकार को विवश करने का सर्वोत्तम उपाय सत्याग्रह है। राजनीतिक अस्त्र के रूप में सविनय अवज्ञा की नीति का प्रयोग उन्होंने सबसे पहले दक्षिण अफ्रीका में किया था। सत्याग्रह को प्रभावशाली बनाने के लिए उन्होंने हड़ताल का आवाहन किया—सारा कारोबार और कामकाज ठप।

उनका कहना था, "यह हमारा धर्मयुद्ध है और मेरे विचार में इसकी शुरुआत आत्म-शुद्धि से की जानी चाहिए। अतएव भारत के सभी लोग उस दिन उपवास रखें और प्रार्थना करें।" वास्तव में गांधीजी इस प्रकार 24 घंटे की राष्ट्रव्यापी हड़ताल का आवाहन कर रहे थे।

पहले यह तारीख 30 मार्च, 1919 निर्धारित की गई थी किन्तु बाद मे इसे बदल कर 6 अप्रैल कर दिया गया क्योंकि यह लगा कि लोगों को इसकी सूचना पर्याप्त समय पहले नहीं दी जा सकी है। लेकिन कुछ क्षेत्रों में पहले तारीख रद्द कर देने की सूचना बहुत देर से मिली। परिणाम यह हुआ कि कुछ क्षेत्रों में 30 मार्च को ही हड़ताल हो गई। उन क्षेत्रों में अमृतसर भी था।

ओ'ड्वायर ने तिरस्कारपूर्वक कहा था, गांधीजी के 'आत्मबल' का मुकाबला 'मुक्के की शक्ति' से किया जाएगा। फिर भी ओ'ड्वायर को गांधीजी के रोलैट कानून विरोधी आंदोलन से बराबर खटका बढ़ता जा रहा था। 29 मार्च को उसने एक आदेश जारी करके डॉ० सत्यपाल के सार्वजनिक रूप से भाषण देने पर प्रतिबंध लगा दिया। अधिक निर्भीक पंजाबी समाचारपत्रों पर वह पहले ही रोक लगा चुका था। परिणामस्वरूप कुछ समाचारपत्रों को विवश होकर अपना प्रकाशन बन्द कर देना पड़ा था।

अब घटनाएं तेजी से घटने लगी थीं। 30 मार्च को अमृतसर में सब दुकानें बन्द रहीं और कारोबार ठप रहा। जलियांवाला बाग में डॉ० किचलू की अध्यक्षता में एक सभा में रोलैट कानूनों को रद्द करने के प्रस्ताव पास किए गए। यद्यपि डॉ० किचलू ने अपने भाषण के अन्त में खबरदार किया था कि 'सत्याग्रह शांतिपूर्ण रखना होगा,' किन्तु ओ'ड्वायर ने एक आदेश जारी करके उनके सार्वजनिक भाषणों पर भी पाबंदी लगा दी।

नेताओं को लगा कि 6 अप्रैल को फिर हड़ताल का आयोजन किया जाए। गांधीजी ने हड़ताल के लिए पहले जिस दूसरी तारीख का सुझाव दिया था, वह 6 अप्रैल ही थी। 5 अप्रैल को अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर सर माइल्ज अर्विंग ने स्थानीय मजिस्ट्रेटों और प्रमुख नागरिकों की एक बैठक बुलाई और उनसे इस हड़ताल को रोकने के लिए अपने प्रभाव का उपयोग करने का अनुरोध किया। अधिकांश लोग सहमत हो गये, किन्तु डॉ० किचलू और डॉ० सत्यपाल ने इस अनुरोध को मानने से इनकार कर दिया। अगले दिन अमृतसर में फिर सारा काम-काज और कारोबार बन्द रहा। तांगों को रोककर उनकी सवारियों को नीचे उतर जाने और पैदल ही चलने के लिए मनाया अथवा डराया-धमकाया गया। लोगों की विशाल भीड़ ने क्रिकेट के एक मैच को बीच में ही रोक दिया। लोगों ने खेल के मैदान की पिचें खराब कर दीं और विकेट उखाड़ फेंके।

इस गड़बड़ में हंसराज नाम के एक नौजवान ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। वह खूब जोरों से रोलैट कानून विरोधी नारे लगा रहा था। बाद में उस दिन 50,000 लोग जलियांवाला बाग में जमा हुए। वहां डॉ० किचलू और डॉ० सत्यपाल पर रोक लगाने पर विरोध प्रकट किया गया और घंटाघर पर एक परचा देखने में आया जिसमें लिखा था। "मरने-मारने के लिए तैयार हो जाओ।"

तीन दिन बाद 9 अप्रैल को रामनवमी का त्योहार था। अमृतसर में हर साल यह त्योहार बड़े उत्साह से मनाया जाता था। इस बार हिन्दुओं के इस त्योहार में मुसलमान भी सम्मिलित हुए। माइल्ज अरविंग यह मिलाप देखकर सचमुच चिंतित हो उठा। लोगों की विशाल भीड़ 'महात्मा गांधी की जय' और 'हिन्दू-मुसलमान की जय' के नारे लगा रही थी। हिन्दू और मुसलमान अब तक चली आ रही परम्परा की अवहेलना कर उन्हीं बर्तनों में पानी पी रहे थे।

उसी रात अरविंग को ओ'ड्वायर का आदेश मिला कि डॉ० किचलू और डॉ० सत्यपाल को अमृतसर से निर्वासित कर 160 किलोमीटर दूर धर्मशाला भेज दिया जाए। ओ'ड्वायर को खबर मिली थी कि गांधीजी पंजाब का दौरा करने की योजना बना रहे है। इसलिए उसने उसी समय यह भी निर्देश जारी कर दिया कि गांधीजी को पंजाब में प्रवेश करने से रोका जाए और उन्हें बता दिया जाए कि वे प्रांत में दाखिल नहीं हो सकते।

अरविंग ने डॉ० किचलू और डॉ० सत्यपाल के पास संदेश भेजकर उनसे विनम्रता-पूर्वक प्रार्थना की, "कृपया 10 अप्रैल को प्रातः 10 बजे मेरे बंगले पर मुझसे मिलें।" उन्हें जाल में फंसाने का जो कुचक्र चल रहा था, उससे अनभिज्ञ होने के कारण दोनों ने तांगे मंगवाए और उसके बंगले की ओर चल दिए। जब डॉ० किचलू चलने को हुए तो उन्हें घर के बाहर ही हंसराज मिला। उसने डॉ० किचलू के साथ चलने की इच्छा प्रकट की। हंसराज को वहां प्रतीक्षा में खड़े देखकर बैरिस्टर किचलू को कोई आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि वह 23 वर्षीय सुन्दर युवक उनका कट्टर समर्थक था।

राजनीति में हंसराज की रुचि अचानक ही उत्पन्न हुई थी, एक महीने पहले तक वह ऐसा व्यक्ति समझा जाता था जो कोई काम अच्छी तरह नहीं कर पाता। वह गबन के आरोप में दो बार नौकरी से निकाला जा चुका था। मगर 23 मार्च से हंसराज ने इन दोनों नेताओं के लिए सभाओं का आयोजन करने में मदद की थी और दोनों सफल हड़तालों में वह बड़ी प्रमुखता से उभर कर सामने आया था। संदेश भिजवाने या पर्चों और प्रस्तावों को छपवाने के काम की देखरेख के लिए वह अपनी सेवाएं प्रस्तुत करने को सदैव तत्पर रहता था। उसे सत्याग्रह की शपथ लेने वाले लोगों का रजिस्टर तक रखने का दायित्व सौंप दिया गया था। डॉ० किचलू को इस उत्साही नवयुवक पर किसी प्रकार का संदेह नहीं था। इनके अलावा जब उन्होंने हंसराज को तांगे में बैठ जाने को कहा तो उन्हें पूरा विश्वास था कि अरविंग के साथ बातचीत में अधिक-से-अधिक बहस हो सकती है और कुछ नहीं।

डॉ० किचलू और डॉ० सत्यपाल अरविंग के बंगले पर पहुंचे तो उन्हें बताया गया

कि अमृतसर में उनकी मौजूदगी सार्वजनिक सुरक्षा के हित में नही है, इसलिए उन्हें अमृतसर से बाहर एक गुप्त स्थान पर भेजा जा रहा है। दोनों नेता शांत रहे और उन्होंने अपने आप को भाग्य पर छोड़ दिया। किसी भी भारतीय राजनीतिज्ञ के लिए निर्वासन एक प्रकार से उसकी विजय का प्रतीक था। अरविंग ने उन्हें अपने-अपने परिवार वालों को संदेश भेजने की अनुमति दे दी और डॉ० सत्यपाल ने अपने पिता को लिखा, "मेरे बारे में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। कृपया अपने मन को शांत रखें और परेशान न हों।" इसके बाद डॉ० सत्यपाल और डॉ० किचलू को बाहर खड़ी मोटर-गाड़ियां उन्हें फौजियों की देखरेख में लेकर चल दीं।

उनके संदेश हंसराज को दे दिए गए। जब वह निर्वासित नेताओं के घर पहुंचा तो उसने कहा, "दोनों नेताओं ने मुझसे कहा है कि जनता इसका बदला ले।" डॉ० सत्यपाल के पिता यह सुनकर दंग रह गए क्योंकि उनके पुत्र के पत्र से ऐसा कहीं ध्वनित नहीं होता था।

इसके बाद हंसराज शहर के मध्यवर्ती भाग को लौट गया और उसने गांधी जी तथा भारतीय समाचारपत्रों को तार भेज कर डॉ० किचलू और डॉ० सत्यपाल के निर्वासन की खबर दे दी।

कुछ ही घंटों में नगर के विविध स्थानों पर भारी भीड़ एकत्र हो गई और ऊंचे स्वर में निर्वासित नेताओं का अता-पता जानने की मांग करने लगी। इसके तुरन्त बाद पत्थरों की वर्षा शुरू हो गई। उधर रेल के एक पुल पर ब्रिटिश और भारतीय घुड़सवार सैनिकों की एक छोटी-सी टुकड़ी के घिर जाने का गंभीर खतरा पैदा हो गया। दो सैनिक घोड़े से उतरे और उन्होंने मोर्चा संभालकर पांच-छः गोलियां चलाईं जिससे तीन-चार आदमी घायल हो गए या मर गए। भीड़ रोकने के लिए इतना काफी था।

लेकिन फिर स्थिति काबू से बाहर हो गई। अब वह क्रोध में आकर पत्थर फेंकने वाले लोगों की भीड़ नही रही थी, बल्कि जैसा कि हंसराज ने उन्हें उकसाया था। वह बदला लेने पर उतारू जन-समूह हो गया था। किसी ने चिल्लाकर पूछा, "डिप्टी कमिश्नर कहां है? हम उसके टुकड़े-टुकड़े कर देंगे।"

दूसरी पुरजोर कोशिश हुई रेल के पुल को पार करने की। अरविंग भी घटना-स्थल पर पहुंच गया, किन्तु भीड़ ने शांतिपूर्वक तितर-बितर हो जाने की उसकी विनती की ओर कोई ध्यान नही दिया।

दो स्थानीय वकील, मकबूल महमूद और गुरदयाल सिंह सलारिया, लोगों को और हिंसा न करने से रोकने का प्रयत्न कर रहे थे और साथ ही सैनिकों से भी यह प्रार्थना कर रहे थे कि वे गोलियां चलाना बन्द कर दें। किन्तु उनके प्रयत्नों का कोई असर नही हुआ और लोगों ने पत्थर तथा लकड़ियां फेंकना जारी रखा। सैनिकों ने गोली चलाई और 20-25 आदमी उपद्रवियों में से ही गिर पड़े। जल्दी ही सड़क पर खून की नदी बहने लगी। एक आदमी की आंख जाती रही और उसके मस्तिष्क के टुकड़े-टुकड़े होकर सड़क पर बिखर गए। वातावरण मरणासन्न और घायल लोगों की कराहटों से भर उठा। एक आदमी के मुंह से अंतिम शब्द निकले, "हिन्दू-मुसलमान की जय!"

जैसे-जैसे गोलियां चलने की खबर फैली, हजारों लोग हिंसक हो उठे। लोग किचलू और सत्यपाल को भूल गए। भीड़ का लक्ष्य अब यह हो गया कि जो भी यूरोपीय दिखाई दे, उसे पकड़कर मार डालो। वातावरण में आवाजें गूंजने लगी, "उन्होंने हमारे भाइयों को मारा है, हम उन्हें मार डालेंगे !" और "उनके दफ्तर और बैंक तबाह कर दो।"

रेलवे स्टेशन पर पहरा देने वाली टुकड़ी द्वारा भगाए जाने से पहले भीड़ ने तार-घर को नष्ट कर दिया। लोग तार-घर के मुख्य अधिकारी को सोते-सोते पकड़कर बाहर घसीट लाए, लेकिन 54वीं सिख टुकड़ी के एक जमादार ने उसको नाटकीय ढंग से बचा लिया। इसके बाद भीड़ मालगाड़ी के डिब्बों के गार्ड की ओर बढ़ी। उसने गार्ड राबिन-सन का पीछा कर उसे जा पकड़ा और पीट-पीट कर मार डाला। जब उसका शव मिला तो उसे देखकर ऐसा नही लगता था कि वह किसी मनुष्य की लाश हो। टेलीफोन और बिजली के तार काट डाले गए और कुछ जगह रेल की पटरियां उखाड़ दी गईं।

एक और भीड़ ने नेशनल बैंक पर धावा बोल दिया और मैनेजर तथा उसके सहा-यक को अंधाधुंध पीटकर मार डाला। फिर दफ्तर की मेज-कुर्सियों आदि के ढेर पर मिट्टी का तेल छिड़क कर उन लाशों को उस में भस्म कर दिया। चार्टर्ड बैंक में कोत-वाली से पुलिस के आ जाने से बैंक अधिकारियों के प्राण बच गए, किन्तु निकटवर्ती एलायंस बैंक में भीड़ने मैनेजर को उसके दफ्तर में ही डंडों से पीट-पीट कर मारा डाला। उसके बाद उसकी लाश को नीचे सड़क पर फेंक दिया और फूंक डाला। रेगो पुल पर एक और भीड़ ने सैनिक बिजली घर के मिस्तरी सारजेंट रोलैंड्स को पकड़ लिया और उसकी खोपड़ी के टुकड़े-टुकड़े कर दिए।

लूटपाट मचाते और आग लगाते उपद्रवी जनाना अस्पताल की ओर बढ़े और अस्पताल की बड़ी डॉक्टर मिसेज इजाबेल मेरी ईस्डन की बाकायदा तलाश करने लगे। अस्पताल के कर्मचारियों ने उसे छिपा दिया। बाद में एक वफादार चपरासी ने उसे वहां से बच निकलने में मदद दी। उसने उसे पहनने के लिए हिंदुस्तानी कपड़े दिए और स्याही से उसका चेहरा रंग दिया।

मारसेला शेरवुड नाम की एक मिशनरी महिला ने अमृतसर के लोगों के साथ काम करते हुए 15 वर्ष बिताए थे। वह उस समय साइकिल पर बैठकर बाजार से गुजर रही थी। वह पांच स्कूलों की प्रबंधिका थी और उन स्कूलों को बन्द करवाने तथा 600 मुसलमान और हिन्दू छात्राओं को घर भिजवाने के विचार से जा रही थी। अचानक उसका सामना नौजवानों की एक भीड़ से हो गया।

उसे देखकर एक व्यक्ति चिल्लाया, 'मारो इसे। यह अंग्रेज है।' घबराकर उसने साइकिल की रफ्तार तेज कर दी और उन गलियों की ओर मुड़ गई जहां लोग उसे अच्छी तरह जानते थे। किंतु भीड़ ने उसे जा पकड़ा। लाठी के प्रहार से वह जमीन पर गिर पड़ी और जब वह खड़ी होने का प्रयत्न कर रही थी तो लोगों के दोबारा वार करने से फिर गिर पड़ी। उसने फिर खड़ी होने की कोशिश की और लड़खड़ाती हुई एक मकान के दरवाजे की ओर बढ़ी, लेकिन मकान वालों ने उसे देखकर जोर से दरवाजा

बंद कर दिया। अंततः एक बर्बरतापूर्ण प्रहार से गिर कर वह बेहोश हो गई और हमलावर युवक वहां से चल दिए।

कुछ हिंदू दुकानदार घर से बाहर निकले और उसे उठाकर अंदर ले गए। भीड़ को जब पता चला कि वह अभी जीवित है तो उसने दरवाजा पीटना शुरू कर दिया और मांग की कि उस अंगरेज महिला को उनके सुपुर्द कर दिया जाए। इस मौके पर एक बूढ़ी भारतीय महिला ने अद्भुत साहस का परिचय दिया। उसने दृढ़तापूर्वक कहा कि मिस शेरवुड अंदर नहीं है। अंधेरा हो जाने पर मिस शेरवुड को एक छकड़े में डालकर और कंबलों में छिपाकर उसके घर पहुंचा दिया गया। अगले दिन उसे निरापद किले में पहुंचा दिया गया।

दो घंटों के भीतर ही भीड़ ने अनेक सार्वजनिक इमारतों को आग लगा दी या उन्हें जलाकर राख कर दिया। उनमें स्कूलों, डाकघरों, गिरजाघरों और धार्मिक संस्थाओं की इमारतें भी शामिल थी। टाउन-हॉल भी जलकर नष्ट हो गया। भीड़ ने रेलगाड़ियों पर हमले किए और अमृतसर के टेलीफोन के अधिकांश तार काट डाले जिससे वह नगर देश के दूसरे भागों से प्रायः कट गया।

इस समय स्थिति यह थी कि परिवहन का जो भी साधन हो सकता था, उसका प्रयोग अंग्रेज शरणार्थियों को जलते शहर से गोबिंदगढ़ के सुरक्षित किले में पहुंचाने के लिए किया जा रहा था। किले की ओर जाने वाले रास्तों पर इस कदर भीड़ थी कि लंदन की एक महिला को डरबी की लोकप्रिय घुड़दौड़ वाले दिन की याद आ गई, किंतु भागते यूरोपियनों को तंग करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया।

दोपहर बाद हताश अरविंग रेलवे के टेलीफोन से—जो बाहरी दुनिया से सम्पर्क का एकमात्र साधन रह गया था—लाहौर स्थित अपने उच्चाधिकारियों के साथ संपर्क स्थापित करने में सफल हो गया और उसने उनसे कुमुक भेजने की प्रार्थना की। किले में पहुंचने वाले सभी यूरोपियन हौलनाक किस्से सुना रहे थे। सड़कें प्रायः ऐसे बावले लोगों की भीड़ से भरी थीं जो गोरों के खून की मांग कर रहे थे। बैंकों से लूटी गई संपत्ति का प्रदर्शन खुलेआम किया जा रहा था। लोग चिल्ला रहे थे, "गोरों को मार डालो! हमारे उठ खड़े होने का वक्त आ गया है!"

किंतु आधी रात तक अमृतसर की सड़कें और गलियां सुनसान हो गईं और वहां असाधारण खामोशी छा गई। हर जगह मलबे के ढेर लगे थे। लुटे बैंक और जली इमारतें झिलमिलाती लौ-सी चमक उठती थीं। टेलीग्राफ के लटके तार मकड़ी के नष्ट-भ्रष्ट विशाल जाले जैसे प्रतीत हो रहे थे। एक ब्रिटिश कमिश्नर ने बाद में कहा था, "हमारा खयाल था कि भारत में हमें छोड़कर और कोई अंग्रेज नहीं बचा है।"

अंग्रेजी राज में दिखावे का बड़ा महत्त्व था। जनरल डायर और उसकी पत्नी जालंधर के फ्लैग स्टाफ हाउस में भोजन से पूर्व मद्यपान करते हुए अतिथियों से बातचीत कर रहे थे तो जनरल बिलकुल शांत लग रहा था। उसे देखकर यह अनुमान लगाना कठिन था कि दूर अमृतसर के बारे में सोच रहा है।

शाम 4 बजे लाहौर से मिले संदेश ने उसे अमृतसर की स्थिति की गंभीरता के

विषय में सचेत कर दिया था और उसने तुरन्त ही 300 सैनिकों को इकट्ठा करके रवाना कर दिया था। नवीनतम स्थिति की जानकारी प्राप्त करने के लिए वह खाने के बीच-बीच में गायब हो जाता। अधिक रात बीतने पर उसे मालूम हो गया कि स्थिति बहुत गंभीर है। अगले दिन, 11 अप्रैल को, डायर को स्वयं अमृतसर जाने का आदेश मिला। चलते समय उसने अपने बेटे से कहा, "मुसलमान और हिंदू एक हो गए हैं। कोई बड़ा हंगामा होकर रहेगा।" उसने अपने बेटे को बरामदे में सोने और अपनी मां तथा अपनी रिश्ते की बहन ऐलिस का ध्यान रखने को कहा। इसके बाद वह कार की तरफ चल दिया।

डायर रात 9 बजे अमृतसर पहुंचा। शहर कब्रिस्तान जैसा उजाड़ और वीरान लग रहा था। सुनसान सड़कों पर मलबा बिखरा पड़ा था और कई इमारतें अभी तक जल रही थीं। कई जगह जले ढांचे खड़े थे। दुकानें और बाजार बंद पड़े थे और उदास लोग अपने मृत सम्बन्धियों को दफनाने या फूंकने की तैयारी कर रहे थे। किला और रेलवे स्टेशन अभी तक अंग्रेजों के हाथ में थे। स्टेशन पर भागे हुए लोगों की भीड़ थी। किले में थकी-मांदी स्त्रियों और बच्चों की हालत और भी खराब थी।

डायर ने तत्काल एक बैठक बुलाई। उसमें माइल्ज अरविंग और पुलिस अधीक्षक उपस्थित थे। बातचीत में डायर को विश्वास हो गया कि अरविंग मानसिक तनाव से टूटता जा रहा है। बैठक के अंत में एक दस्तावेज तैयार किया गया और उसे अमृतसर के प्रमुख नागरिकों के एक समूह को दे दिया गया। उसमें चेतावनी दी गई थी कि सेना को आदेश है कि अमृतसर में व्यवस्था स्थापित करने के लिए जो भी कदम उठाया जाए। वास्तव में इसका अर्थ यह था कि अमृतसर को डायर के हवाले कर दिया गया है।

जनरल डायर के पास विविध टुकड़ियों के 475 अंग्रेज और 710 भारतीय सैनिक थे। उसने शक्ति का प्रदर्शन करने का निश्चय किया। 12 अप्रैल को प्रातः 10 बजे वह 435 सैनिकों के एक दस्ते के साथ शहर में से मार्च करते हुए निकला। दस्ते के पीछे-पीछे दो बख्तरबंद गाड़ियां थीं। जब वह सुलतानसिंह दरवाजे पर पहुंचा तो लड़ाई के लिए तत्पर भीड़ ने 'हिंदू-मुसलमान की जय' का जाना-पहचाना नारा लगाते हुए उस की हंसी उड़ाई और थूका। डायर क्रोध से उन्मत्त हो उठा। क्षण-भर के लिए उसने सोचा कि ऐसे में गोली चलाने का आदेश अनुचित न होगा।

लाहौर में ओ'ड्वायर ने भारत सरकार को स्थिति से अवगत करा दिया। जवाब में उसे बताया गया कि यदि सैनिकों को गोली चलाने के लिए विवश होना ही पड़े तो वह कार्रवाई सबक सिखाने वाली हो। उसने इस बात को अपनी डायरी में सावधानी से लिख लिया।

इस बीच भीड़ हंसराज को सुनने के लिए जमा हो गई। हंसराज ने ऐलान किया कि अगले दिन जलियांवाला बाग में एक सभा होगी। उसने लोगों से और अधिक त्याग के लिए तैयार रहने का अनुरोध किया और बताया कि हड़ताल पूर्व निश्चित कार्यक्रम केअनुसार होगी। उसने कहा कि जब तक डॉ० किचलू और डॉ० सत्यपाल को रिहा

नहीं किया जाएगा, सारा कारोबार बंद रहेगा।

अज्ञात गुरखों ने बड़े चाव से अपना काम किया। काफी समय बाद उनमें से दो गुरखों ने एक ब्रिटिश अधिकारी को बताया, "जब तक गोलियां चलती रही, हमें आनन्द आता रहा। इसीलिए हमारे पास जितनी भी गोलियां थीं, उन सबका हमने प्रयोग कर डाला।"

जब तक सैनिक वहां से चले नहीं गए, तब तक लोगों ने अपने सम्बन्धियों और मित्रों की तलाश में बाग में पहुंचने की हिम्मत नहीं की। अंधेरा होते ही लावारिस कुत्ते और गिद्ध भी मृत शरीरों को नोचकर खाने लगे। चीलें तो इतनी मुंहफट और लालची निकलीं कि सगे-सम्बन्धियों की खोज में आए लोगों की पगड़ियां भी अकसर अपने पंजों में लटकाकर उड़ जाती। बहुत से कुत्तों और गिद्धों ने भी डायर द्वारा रात 8 बजे से लगाए गए कर्फ्यू का उल्लंघन नहीं किया।

अगली सुबह, 14 अप्रैल को, एक प्रतिनिधिमण्डल ने डायर से मृत लोगों को दफ़नाने अथवा दाह-संस्कार की अनुमति देने की प्रार्थना की जिसे उसने स्वीकार कर लिया। चाटीविंड दरवाजे से होकर रोते-बिलखते लोगों के लम्बे-लम्बे जुलूस निकले। उनके आगे लाशों से ऊपर तक भरी बैलगाड़ियां थीं। लाशों की संख्या इतनी अधिक थी कि सामान्य रूप से अपनाए जाने वाले रिवाज की उपेक्षा कर एक ही चिता पर चार-चार, पांच-पांच व्यक्तियों का दाह-संस्कार कर दिया गया। शोक मनाने वालों ने मृत व्यक्तियों की सही-सही गणना करने का भी कोई प्रयत्न नहीं किया। यही कारण है कि आज तक कोई निश्चित रूप से यह नहीं कह सकता कि इस गोलीकांड में कुल कितने लोग मारे गए थे।

लाहौर से ओ'ड्वायर ने संदेश भेजकर डायर के कृत्य के प्रति अपनी सहमति व्यक्त की : "आपकी कार्रवाई सही थी और लेफ्टिनेंट गवर्नर उसका अनुमोदन करते हैं।"

अंग्रेजों ने तत्काल प्रतिशोधात्मक कदम उठाए। अमृतसर और लाहौर जिलों में मार्शल-लॉ लागू कर दिया गया—मार्शल-लॉ का आदेश पीछे की तारीख यानी 30 मार्च से लागू किया गया। इसका मतलब यह था कि हालांकि डा० सत्यपाल और डा० किचलू को गड़बड़ी के समय गिरफ्तार किया गया था, फिर भी उनके विरुद्ध मुकदमा चलाया जा सकता था। इसके अलावा समाचारों के प्रकाशन पर पाबंदी लगा दी गई। इसके बाद जो ऊटपटांग और अविवेकपूर्ण दंडात्मक कदम उठाए गए, उनसे अमृतसर के लोग दंग रह गए। जो भी व्यक्ति डायर या किसी अन्य यूरोपियन के सामने से गुजरता, उसे सलाम बजा लाना पड़ता। यदि कोई इनकार करता तो उसे कोड़े लगाए जाते या अपमान का घूंट पीना पड़ता। रेल से भारतीयों का आना-जाना बिलकुल ही बंद हो गया, क्योंकि इंटर और तीसरे दर्जे के टिकटों की बिक्री रोक दी गई थी। पटरियों पर दो से अधिक व्यक्तियों को एक साथ चलने की अनुमति नहीं थी। अमृतसर की पानी और बिजली की सप्लाई काट दी गई। इससे उन हजारों लोगों को भी भारी कष्ट का सामना करना पड़ा जिन्होंने उपद्रवों में कोई भाग नहीं लिया था। इसके अलावा कर्फ्यू को बहुत ही कठोरता से लागू किया गया जिससे दुबारा सामान्य स्थिति उत्पन्न होना एक प्रकार से असम्भव हो गया।

जिस किसी पर कांग्रेस आंदोलन से सम्बन्धित होने का सन्देह होता, वह पुलिस का शिकार बन जाता। अमृतसर मे तरह-तरह की अफवाहें गरम थीं कि पुलिस मार-पीट, अत्याचार और अपमानजनक तरीकों से सबूत तैयार करने के प्रयत्न कर रही है। पुलिस ने इन बातों का जोरदार खंडन किया। लेकिन एक बात के खंडन का प्रयत्न किसी ने नही किया और वह था रेंगकर चलने का डायर का कुख्यात आदेश।

19 अप्रैल को जब डायर ने मिस शेरवुड का पट्टियों से बंधा चेहरा देखा तो उसने आदेश दिया कि कूचा तवारियां नामक जिस तंग गली में उस पर हमला हुआ था, उसके मध्य भाग में कोड़े लगाने के लिए टिकटिकी लगा दी जाए, गली के दोनों सिरों पर चौकी बैठा दी जाए और जो भी भारतीय उस गली में से गुजरना चाहे, वह रेंग कर जाए। यदि कोई व्यक्ति रोटी या सब्जी खरीदने या मन्दिर में पूजा करने अथवा काम पर जाना चाहता तो उसे यह कड़ी यातना सहनी ही पड़ती।

मिस शेरवुड पर हमला करने के सन्देह में छः युवकों को गिरफ्तार किया गया। डायर ने उन पर मुकदमा चलाए जाने की प्रतीक्षा नहीं की। उसने आदेश दिया कि उन्हें रेंगने वाली गली में ले जाया जाए और एक-एक को 30-30 कोड़े लगाए जाएं। यह दंड उचित है या अनुचित—उसे इस बात से कतई कोई सरोकार नही था। उसे निश्चय हो गया था कि वही नौजवान मिस शेरवुड पर हमला करने के लिए जिम्मेदार है और उसके लिए इतना ही काफी था।

रेंगकर चलने का आदेश 24 अप्रैल तक लागू रहा। जब सर माइकेल ओ'ड्वायर को इस विषय में पता चला तो उसने इस आदेश को वापस लेने का अनुरोध किया। ओ'ड्वायर को इस आदेश से जो ठेस पहुंची, उसका कुछ संकेत उसके गहरे असन्तोष से मिलता है।

जिन सजाओं को 'मनमाना और विचित्र' कहा गया, उनकी ईजाद करने वालों में डायर अकेला नही था। लाहौर में भी लोगों को कोड़े या बेंत मारने की सजाएं आम हो गईं। पंजाब सरकार को उन पर भी पाबंदी लगानी पड़ी। यूरोपियन —जिनमें प्राय: अनेक स्त्रियां भी होतीं—अकसर बेंत मारने वालों को उकसाते : "और जोर से। और जोर से !" कसूर में कप्तान ए० सी० डोवटन के आदेश से लोगों को छलांग लगाने, कविताएं लिखने और माथे से जमीन को छूने के लिए विवश किया गया। जो लोग कर्फ्यू के दौरान कोठों पर गए, उन्हें उसने वेश्याओं के सामने ही कोड़े मारने का आदेश दिया। पुरोहित समेत एक पूरी-की-पूरी बारात को कोड़े लगाए गए, क्योंकि बारात में 10 से अधिक व्यक्ति होने के कारण वह एक गैर-कानूनी जमघट था।

पंजाब में उस समय जो कुछ हो रहा था, उस पर अंग्रेजों ने भी चिंता व्यक्त की। किन्तु वायसराय इस मामले में हस्तक्षेप करने को तैयार नहीं था। ज्यादा-से-ज्यादा उसने यह किया कि एक पत्र लिखकर ओ'ड्वायर को चेता दिया कि वह खतरनाक रास्ते पर चल रहा है। रेंगकर चलने के आदेश और अंधाधुंध कोड़े या बेंत मारे जाने के बारे में उसने लिखा : "क्या यह दंड न्याय संहिता के सभी सिद्धांतों के विरुद्ध नहीं है? इस प्रकार की कार्रवाइयों को जातीय अपमान के उद्देश्य से किया गया समझा जाएगा।

यह दंड दोषी लोगों को न देकर सम्पूर्ण भारतीय जाति को दिया जा रहा है।"

अंग्रेजों का दावा था कि ब्रिटिश राज ने भारत को एक सबसे बड़ा लाभ यह पहुंचाया है कि उसने यहां दुनिया भर में बेजोड़ न्याय प्रणाली स्थापित की है, लेकिन पंजाब में हुई गड़बड़ के बाद ब्रिटिश न्याय न तो ईमानदार रह पाया और न ही निष्पक्ष।

अधिक गम्भीर मामलों की सुनवाई फौजी कानून के तहत कायम किए गए कमीशन ही करते थे। ये सभी मामले प्रायः 'ब्रिटिश सम्राट के विरुद्ध युद्ध छेड़ने' के अपराध के अन्तर्गत आते थे। लाहौर में अंग्रेजों के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण 'अमृतसर के नेताओं का मुकदमा' था। इससे वे यह सिद्ध करना चाहते थे कि क्रांतिकारियों ने सचमुच 'युद्ध छेड़ने' का षड्यंत्र रचा था। इन 'नेताओं' में अमृतसर के सभी वर्गों के भारतीय शामिल थे। उनमें डा० किचलू जैसे धनवान से लेकर छोटे-मोटे व्यापारी और ऐसे कवि तक थे जो शादी-ब्याह अथवा सार्वजनिक सभाओं के लिए गीत लिखकर अपनी रोजी-रोटी कमाते थे। चूंकि इस मुकदमे की पैरवी के लिए पंजाब से बाहर के वकील नियुक्त करने पर रोक थी, इसलिए लोग अपनी पसन्द का वकील नहीं कर पाए। समाचार पत्रों के संवाददाताओं को इस मुकदमे की कार्रवाई से दूर रखा गया और अभियोग पक्ष ने अभियुक्तों के प्रति अपने वैर भाव को छिपाने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

अभियोग पक्ष का प्रमुख गवाह हंसराज था जो वादा माफ गवाह बन गया था। भीषण-से-भीषण घटनाओं के दौरान भी उसने उपद्रव, हत्या, आगजनी और लूटमार में हर अभियुक्त की अलग-अलग भूमिका दर्शाने में अपनी गजब की स्मरण-शक्ति का परिचय दिया था! बैंक के फर्नीचर को आग लगाकर उसमें लाशों को जब फूंका जा रहा था और विभिन्न भवनों को भूमिसात करके लूटा जा रहा था तब भी वह एक-एक आदमी की विशिष्ट भूमिका को याद करने में लगा था। जिस-जिस व्यक्ति ने सत्याग्रह का संकल्प लिया था, उन सबके नाम उसे याद थे। उसने न्यायालय को बताया कि रामनवमी के त्योहार को, जिसमें हिन्दू और मुसलमान एक हुए थे, जानबूझ कर एक राजनीतिक प्रदर्शन का रूप दिया गया। उसने यह कहकर डा० किचलू और डा० सत्यपाल की सभी आशाएं मिट्टी में मिला दी कि "सत्याग्रह तो बस बहाना था, हम तो क्रांति लाना चाहते थे।" इससे डा० किचलू का यह दावा निराधार लगने लगा कि अहिंसा सत्याग्रह का प्रमुख आधार थी।

5 जुलाई को न्यायाधीश ब्राडवे ने अपना निर्णय सुनाया। फैसले में कहा गया था कि पंजाब विद्रोह पर उतारू था। अमृतसर तथा अन्य स्थानों पर 30 मार्च को सरकार को डराने और रोलैट ऐक्ट को खत्म कराने के इरादे से एक भीषण षड्यंत्र रचा गया था। यही षड्यंत्र 10 अप्रैल को ब्रिटिश सम्राट के विरुद्ध 'युद्ध छेड़ने' के रूप में बदल गया था।

न्यायालय ने हंसराज की गवाही को जो मान दिया था, उसे सुनने के लिए वह न्यायालय में मौजूद नहीं था। उसे माफ तो किया ही गया था, साथ ही हर खतरे से बचाने के लिए उसे बहुत सारा धन देकर मेसोपोटामिया भेज दिया गया था। डा० किचलू को आजीवन निर्वासन की सजा दी गई थी। डा० सत्यपाल को भी यही सजा

मिली। एक को मौत और शेष को आजीवन देश निकाले की सजा मिली। उनकी सारी सम्पत्ति भी जब्त कर ली गई। पांच अभियुक्तों को बरी कर दिया गया और जिन अन्य लोगों पर कुछ छोटे अपराधों का अभियोग लगाया गया था, उन्हें कारावास की सजाएं दी गईं।

कुल मिलाकर, ब्रिटिश सम्राट के विरुद्ध 'युद्ध छेड़ने' के अपराध में लाहौर में 581 व्यक्तियों पर मुकदमे चलाए गए। उनमें से 108 को मौत की सजा दी गई, 265 व्यक्तियों को आजीवन काले पानी की सजा दी गई। दो को लम्बे समय के लिए देश-निकाले का हुक्म सुनाया गया, पांच को दस-दस साल की कैद की और 85 को सात-सात साल की कैद की तथा शेष को इससे कम समय तक जेल में रखने की सजा दी गई। कम गम्भीर अपराधों के लिए अलग-अलग सजाएं दी गईं जिनमें सामान्य थी कोड़े लगाने की सजा।

डा० किचलू, डा० सत्यपाल और उनके साथी दंडित अन्य व्यक्तियों ने तुरन्त सजा के विरुद्ध प्रिवी कौंसिल में अपील की। परिणामस्वरूप मुकदमा काफी लम्बा और जटिल हो गया। उन्हें दी गई सजाओं के खिलाफ इतना आन्दोलन मचा कि पंजाब सरकार को उन सबकी सजाओं पर फिर से विचार करने का निर्देश दिया गया।

इस समय तक लंदन स्थित ब्रिटिश सरकार इस बात के लिए बहुत उत्सुक थी कि किसी तरह यह कटु प्रसंग हमेशा-हमेशा के लिए खत्म हो जाए। सम्राट जार्ज पंचम भी इस मतके समर्थक थे। इसलिए उन्होंने एक शाही फरमान जारी कर सबको आम माफी दे दी। फरमान में कहा गया था : "मैं भारत में अपने वायसराय को आदेश देता हूं कि वह मेरी और शाही तख्त की ओर से उन सभी राजनीतिक अपराधियों को पूर्ण क्षमादान दे दे जिनका दंड देना उसकी दृष्टि में सार्वजनिक सुरक्षा के लिए जरूरी था।"

डा० किचलू, डा० सत्यपाल तथा अन्य सभी, जिनकी सजाएं अब तक बहुत कम की जा चुकी थीं, तत्काल छोड़ दिए गए। यूरोप में इस घटना को लेकर बहुत आक्रोश था। यद्यपि अब अन्याय दूर कर दिया गया था, परन्तु उसमें बहुत देर लग गई थी। भारत के प्रमुखतम कवि तथा नोबेल पुरस्कार विजेता सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने वायसराय को पत्र लिखकर अपनी 'सर' की उपाधि लौटा दी। उन्होंने लिखा : "पंजाब सरकार की दमनात्मक कार्रवाइयों की उग्रता देखकर हमें यही लगता है कि हम ब्रिटिश प्रजा के रूप में कितने निरीह और विवश हैं। भारतीयों पर जो अत्याचार हो रहे हैं, उन्हें देखकर ब्रिटिश सम्मान के इन चिह्नों से हमें गौरव के स्थान पर लज्जा का बोध होता है।" गांधीजी ने भी वे सब पदक लौटा दिए जो उन्हें अंग्रेजों से प्राप्त हुए थे।

ब्रिटिश पार्लियामेंट में एडविन मांटेग्यू पर निरन्तर दबाव पड़ रहा था कि पंजाब में जो कुछ भी हुआ, उस पर सदन में और प्रकाश डाला जाए। यह मानकर कि घटनाओं की जांच कराने से खतरनाक विद्रोह को दबाने वाले लोगों का सम्मान बढ़ेगा, उसने वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड को आदेश दिया कि वह इस सम्बन्ध में सुझाव दे कि जांच किस प्रकार की हो। उसने वायसराय से यह भी कहा कि "जांच पूरी सच्चाई जानने के लिए कराई जाए।"

इस सुझाव से लार्ड चेम्सफोर्ड बड़ा क्षुब्ध हुआ। वह सम्राट जार्ज पंचम को पहले ही बता चुका था कि "यह हमारा सौभाग्य था कि इस बलवे के समय पंजाब का प्रशासन माइकेल ओ'ड्वायर के हाथ में था।" इसलिए उसने मांटेग्यू को चेतावनी दी कि गड़बड़ी की व्यापक जांच करने की भारतीय 'उग्रपंथियों' की मांग बिलकुल न मानी जाए, क्योंकि उग्रपंथी इस जांच से ब्रिटिश प्रशासन और ओ'ड्वायर को बदनाम करना चाहते हैं।

लार्ड चेम्सफोर्ड की चेतावनी और विरोध के बावजूद मांटेग्यू जांच कराने की मांग पर अड़ा रहा। अन्ततः नवम्बर 1919 में उसने न्यायाधीश लार्ड हंटर की अध्यक्षता में एक जांच समिति के गठन की घोषणा की। हंटर जांच समिति भारत पहुंच गई।

लाहौर में हंटर समिति की जांच का पहला दिन उत्सुकता से भरा था। जांच कक्ष के बाहर लोगों की कतारें-ही-कतारें थीं। भारतीय लोग एक-दूसरे से आगे निकलकर जगह पाने की कोशिश कर रहे थे। जांच कक्ष की दर्शक दीर्घा यूरोपियनों से भरी थी। गवाह के बाद गवाह साक्षी देते रहे तथा अखबारों के संवाददाता उनकी गवाहियां दर्ज करते रहे। पर सभी को बेकरारी से इंतजार था कि ब्रिगेडियर जनरल रेजिनल्ड एडवर्ड हैरी डायर का।

ज्यों ही डायर ने गवाह के कटघरे में पहुंचकर लार्ड हंटर को सैनिक सलामी दी, ब्रिटिश दर्शकों ने तालियां बजाकर उसका स्वागत किया। शुरू-शुरू में हंटर ने बड़ी नरमी से सवाल किए, परन्तु जब डायर से पूछा गया कि उसने गोलियां चलाने का आदेश देने से पहले जलियांवाला बाग की सभा को भंग करने का प्रयास क्यों नहीं किया, तब हंटर की सख्ती स्पष्ट झलक रही थी।

जनरल डायर ने कहा, "मैंने कार में जाते-जाते ही यह निश्चय कर लिया था कि यदि मेरे आदेश का पालन नहीं किया गया तो मैं तत्काल गोलियां चलाने का आदेश दे दूंगा।"

उसने इस बात से सहमति व्यक्त की कि जैसे ही सैनिकों ने गोलियों की बौछार शुरू की, लोग तितर-बितर हो गए थे।

लार्ड हंटर ने बड़े संयत स्वर में पूछा, "जब लोग तितर-बितर होने लगे थे तो आपने गोलियां चलाना बन्द करने का आदेश क्यों नहीं दिया?"

शायद सवाल डायर की समझ में ठीक से नहीं आया। वह बोला, "जब तक लोग पूरी तरह से तितर-बितर न हो जाएं, तब तक गोलियां चलवाते रहना मेरा कर्तव्य था।" किन्तु इस स्पष्टीकरण के फौरन बाद उसने यह भी स्वीकार किया कि शायद जलियांवाला बाग में जनता की भीड़ गोली चलाए बिना भी तितर-बितर की जा सकती थी।

लार्ड हंटर ने उससे पूछा, "फिर आपने वही रास्ता क्यों नहीं अपनाया?"

डायर ने जवाब दिया, "बिना गोलियां चलाए मैं उन्हें जल्द नहीं भगा सकता था। इसके अलावा वे लोग कुछ देर बाद फिर वहां जमा हो जाते और मिलकर मेरा मजाक

उड़ाते। यह सब एक व्यापक विद्रोह का हिस्सा था और वह सिर्फ अमृतसर तक ही सीमित नही था। जलियांवाला बाग मे एकत्र लोग विद्रोही थे और वे ब्रिटिश फौजों को अंगूठा दिखा रहे थे। इसलिए मैंने उन पर गोलियां चलाना और अन्त तक चलाते रहना अपना फर्ज समझा। मैंने इसे एक निहायत अप्रिय कर्तव्य समझकर पूरा किया।

शीघ्र ही डायर इधर-उधर की हांकने लगा।

रेंगकर चलने के आदेश के बारे में पूछे जाने पर डायर ने कहा, "एक अंग्रेज महिला को उस गली में मारा गया था। आप जानते ही हैं, हम महिलाओं का कितना सम्मान करते हैं। वह गली पवित्र समझी जाए, इसीलिए मैंने लोगों को रेंगने का आदेश दिया था। मैं यह सोच भी नहीं सकता था कि इस आदेश के बाद कोई समझदार आदमी उसी गली में जाएगा।"

लेकिन उसकी समझ में यह बात नहीं आई कि वहां रहने वाले लोग अगर रेंगकर न जाते तो रोजमर्रा के काम कैसे करते। वह यह भूल गया था कि नगर में कर्फ्यू लगा था। जगह-जगह पुलिस तैनात थी। जब पुलिस हटाई जाती तभी तो लोग आ जा सकते थे। पर डायर का खयाल था कि अमृतसर में जो कुछ हुआ, उसे देखते हुए भारतीयों के लिए थोड़ा-बहुत कष्ट उठाना अनुचित नहीं था।

लार्ड हंटर के बाद न्यायाधीश रैंकिन ने सवाल किए। उन्होंने पूछा, "क्या आपका यह खयाल था कि भीड़ पलटकर आपके थोड़े-से सैनिकों पर हमला कर सकती है?"

डायर ने जवाब दिया, "नही। मैं निश्चय कर चुका था कि यदि लोगों ने सभा जारी रखी तो मैं एक-एक को मौत की गोद में सुला दूंगा।"

उसकी बातों का न्यायाधीशों पर क्या असर हो रहा है, इससे कतई अनजान डायर मजे ले लेकर न्यायाधीश रैंकिन के सवालों का जवाब देता रहा।

रैंकिन का प्रश्न था: "समय-समय पर आप गोलियां चलाने की दिशा बदलते रहे। आपने उस दिशा में ज्यादा गोलियां चलवाईं जहां लोग अधिक संख्या में जमा थे।"

"हां, ऐसा ही था", डायर ने जवाब दिया।

जांच समिति के भारतीय सदस्यों की तुलना में न्यायाधीश रैंकिन ने जो प्रश्न किए, वे काफी नरम थे। सर चिमनलाल सीतलवाड ने अपने निहायत शाइस्ता सवालों से डायर से जलियांवाला बाग के गोलीकांड की पूरी कहानी कबूलवा ली। डायर उनके सवाल करने के ढंग से इतना आश्वस्त हो गया कि एक नितांत काल्पनिक सवाल का भी जवाब दे बैठा।

सर चिमनलाल सीतलवाड ने पूछा, "मान लीजिए, रास्ता खूब चौड़ा होता और उससे हो कर बख्तरबंद गाड़ियां जलियांवाला बाग के अंदर जा पाती तो क्या आप भीड़ पर मशीनगनों से गोलियों की बौछार करते?"

"हां, शायद मैं ऐसा ही करता।"

अब पूछताछ का काम पंडित नारायण ने शुरू किया। उन्होंने इस आशा से जलियांवाला बाग के संबंध में इधर-उधर के सवाल किए ताकि जनरल डायर अपनी नादानी का और सबूत दे। डायर ने सचमुच यही किया।

उसने कहा, "मैं स्वयं अपनी देखरेख में गोलियां चलवा रहा था। मैंने एक भी गोली हवा में चलाने का आदेश नहीं दिया।" पंडित नारायण ने पूछा, "गोलियां चलाने का अच्छा असर हुआ, इससे आपका क्या मतलब है ?" डायर ने बिना सोचे-समझे कहा, "यह बताना तो कठिन है। मैं असल में बदमाश लोगों को सजा देना चाहता था, इसलिए कह नहीं सकता कि जो बदमाश नहीं थे, उन पर सजा का क्या असर हुआ।"

पंडित नारायण ने पूछा, "आपने एक क्षण के लिए भी यह नहीं सोचा कि जलियांवाला बाग में चार-पांच सौ आदमी मर गए हैं ? जो घायल हो गए हैं, उनकी दवा दारू का क्या होगा, उनके रिश्तेदार उन्हें किस तरह आकर ले जाएंगे, उनका किस तरह इलाज होगा, उन्हें कौन पानी देगा तथा रात आठ बजे के बाद लाशों को कैसे कहां से ले जाया जाएगा ?"

डायर ने अक्खड़पन से जवाब दिया, "जिन लोगों ने मुझसे घायलों या शवों को ले जाने की इजाजत मांगी, मैंने दे दी।"

पंडित नारायण चुप नहीं रहे। उन्होंने फिर पूछा, "क्या मृतकों के शवों और घायलों को वहां से ले जाने के लिए कर्फ्यू में ढील दी गई थी ? क्या इस बारे में कोई घोषणा की गई थी ?"

जनरल डायर ने और भी अक्खड़पन से जवाब दिया, "मैंने लोगों को अपने संबंधियों के शव और घायलों को ले जाने दिया, यही काफी था।"

"आपने पहले ही निश्चय कर लिया था कि यह अप्रिय कर्तव्य आपको हर हाल में पूरा करना ही है ?"

"हां।"

"क्या आपने एंबुलैंस आदि का इंतजाम किया ?"

"इसके लिए मेरे पास समय नहीं था।"

जब 19 नवंबर को डायर की गवाही समाप्त हुई तो वह साफ थका हुआ दिखाई दे रहा था। परंतु उसे विश्वास था कि उसने सभी सवालों के जवाब निर्भीकतापूर्वक दिए हैं। वह खड़ा हुआ। उसने न्यायाधीशों को सैनिक सलामी दी, मुड़ा और तालियों की गड़गड़ाहट के बीच गवाहों के कटघरे से निकल आया।

अब डायर लाहौर से जाने के लिए स्वतंत्र था। उसने जालंधर लौटने का निश्चय किया। वह और उसके कुछ साथी अधिकारी रात को एक ट्रेन पर सवार हुए। उसी डिब्बे में सबसे ऊपर की बर्थ पर एक युवा भारतीय लेटा था और उसका नाम था जवाहरलाल नेहरू। हैरो और कैंब्रिज में शिक्षित बैरिस्टर जवाहरलाल नेहरू पर इस संयोग का घातक प्रभाव पड़ा, क्योंकि डायर और उसके साथी खुलकर जलियांवाला कांड की चर्चा कर रहे थे। क्या उन्हें पता था कि ऊपर की बर्थ पर कोई भारतीय है ? अगर उन्हें पता भी था तो भी उन्होंने यह प्रकट नहीं होने दिया। पाजामा और गाउन पहने एक अंग्रेज़ बड़े दंभ से अमृतसर के अपने कारनामे बखान रहा था। थोड़ी ही देर की बातचीत से नेहरू को पता चल गया कि यही जनरल डायर है। ट्रेन के मंजिल पर पहुंचने तक नेहरू का क्रोध फटने को हो रहा था। उस एक रात ने अंग्रेजों के एक भारतीय

प्रशंसक को उनका कट्टर दुश्मन बना दिया था।

हंटर जांच समिति की विशद रिपोर्ट मई 1920 के अंत में प्रकाशित हुई। उससे पहले ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस 20 फरवरी को अपनी रिपोर्ट जारी कर चुकी थी। उसमें भारत और पंजाब में ब्रिटिश शासन की कड़ी निंदा की गई थी और रिपोर्ट के साथ जो फोटो प्रकाशित किए गए थे, उन्हें देखकर भारतीयों का क्षुब्ध होना स्वाभाविक था।

इस रिपोर्ट को तैयार करने वालों का कहना था, "हम कड़ी भाषा का इस्तेमाल करने के लिए बाध्य हो गए हैं, हमने हर विशेषण का प्रयोग जानबूझ कर किया है फिर भी पंजाब सरकार की हमारी भर्त्सना कम है।"

रिपोर्ट में कहा गया था कि ओ'ड्वायर और डायर समेत कई ब्रिटिश अधिकारियों पर मुकदमा चलाने की जरूरत है—लेकिन उनकी बरखास्तगी तो हर सूरत में जरूरी है। यह भी कहा गया कि 'पेट के बल रेंगने के आदेश' तथा अन्य 'मनमानी सजाएं' किसी भी सभ्य प्रशासन के नाम पर कलंक लगाने वाली हैं और इन्हें ईजाद करने वालों के नैतिक दिवालिएपन का प्रतीक हैं। जलियांवाला बाग का कत्लेआम अमानुषिकता का एक ऐसा कांड है जो बेरहमी के लिहाज से आधुनिक ब्रिटिश प्रशासन के इतिहास में बेमिसाल है।

कांग्रेस की रिपोर्ट में वही कुछ था जो एडविन मांटेग्यू इंग्लैंड में निजी बातचीत में कइयों के सामने स्वीकार कर चुका था। अलबत्ता जब उसे पूरी रिपोर्ट की जानकारी मिली तो उसे लगा कि वह भारत सरकार तथा भारत में रह रहे ब्रिटिश लोगों को कभी मंजूर नहीं होगी। जब ब्रिटिश समाचार पत्रों ने भारतीय रिपोर्ट की एक प्रकार से उपेक्षा की तो उसने राहत की सांस ली।

परंतु हंटर जांच समिति की 'अधिकृत' रिपोर्ट ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण दस्तावेजों में से होगी, यह सभी को पता था। पंजाब के उपद्रवों को एक वर्ष से अधिक हो गया था और सभी जांच रिपोर्ट के प्रकाशन की बेकरारी से प्रतीक्षा कर रहे थे।

मैदानी इलाके की गरमी से छुटकारा पाने के लिए आए सैलानियों से भरी पर्वतीय नगरी शिमला में वायसराय और उसकी कार्यकारी परिषद (एग्जक्यूटिव कौंसिल) ने हंटर समिति के निष्कर्षों का बड़े ध्यान से अध्ययन किया जो सर्वसम्मत नहीं थे। जांच समिति के यूरोपियन सदस्य संख्या में अधिक थे, इसलिए उनकी रिपोर्ट बहुसंख्यकों की रिपोर्ट थी और भारतीय सदस्यों की रिपोर्ट अल्पसंख्यकों की। यद्यपि भारतीय सदस्यों की भाषा कड़ी थी, किंतु उनके और यूरोपियन सदस्यों के निष्कर्ष बहुत कुछ मिलते जुलते थे। अधिकांश रिपोर्ट में पंजाब सरकार द्वारा लागू मार्शल-लॉ की निंदा ही की गई थी।

योरोपियन सदस्यों की बहुसंख्यक रिपोर्ट में भी डायर की इस बात के लिए कड़ी निंदा की गई थी कि उसने बिना चेतावनी दिए ही जलियांवाला बाग में गोली चलाने का आदेश दिया और जब तक गोलियां खत्म नहीं हो गईं, वह गोलियां चलवाता रहा।

उसकी यह कार्रवाई इसलिए भी उचित नहीं मानी गई कि इसका दूसरी जगहों पर भी प्रभाव पड़ सकता था।

इस रिपोर्ट में कहा गया था : "दमनात्मक कार्रवाई उसी हालत में उचित है जब उसका परिणाम अपेक्षित परिणाम के विपरीत न हो। बहुसंख्यक रिपोर्ट में यह भी कहा गया था कि डायर को इस बात का भी कोई डर नहीं था कि भीड़ पलट कर उसके थोड़े से सिपाहियों पर हमला कर सकती है। असल में उसने खुद भी यह स्वीकार किया था कि उसने रास्ते में ही भीड़ पर गोलियां चलाने का निश्चय कर लिया था। रिपोर्ट में कहा गया था : हमें बताया गया है कि जनरल डायर की इस कार्रवाई ने पंजाब की स्थिति को बिगड़ने से बचा लिया और 1857 जैसे एक और गदर को टाल दिया। लेकिन हमें यह बात जंचती नहीं, क्योंकि यह सिद्ध ही नहीं होता कि गड़बड़ी शुरू होने से पहले ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ने का कोई षड्यंत्र रचा गया था।"

भारतीय सदस्यों का मत और भी कड़ा था। उन्होंने डायर की इस कार्रवाई की तुलना 1914 में फ्रांस और बेल्जियम में जर्मन सैनिकों द्वारा किए गए अत्याचारों से की। उन्होंने उस डायर को हैवान की संज्ञा दी जिसने घायलों का इलाज तक करवाने की परवाह नहीं की और जिसने यहां तक माना कि यदि बाग में बख्तरबंद गाड़ियां जा पातीं तो वह भीड़ पर मशीनगनों से गोलियों की बौछार करवाता। दोनों ही रिपोर्टों में 'पेट के बल रेंगने के आदेश,' गोरों को सलामी देने के आदेश तथा अन्य मनमानी सजाओं की निंदा की गई थी।

भारत सरकार ने हंटर रिपोर्ट का एक-एक अध्याय देखा और यह स्वीकार किया कि अमृतसर की घटनाओं ने अन्य स्थानों पर जो कुछ हुआ, उसे फीका कर दिया है। सरकार ने इस बात पर भी खेद व्यक्त किया कि नगर का नियंत्रण जनरल डायर को सौंप कर असैनिक प्रशासन निश्चित हो गया। यह भी कहा गया कि डायर ने 13 अप्रैल को जो घोषणा जारी की थी, उसकी लोगों को व्यापक रूप से जानकारी दी जानी चाहिए थी। जलियांवाला बाग में गोली चलाने से पहले उसे लोगों को चेतावनी देनी चाहिए थी ताकि जिन लोगों को उसके आदेश के बारे में जानकारी नहीं थी, वे वहां से जा पाते। इसके साथ ही भारत सरकार का यह मत था कि डायर ने जो कुछ भी किया, नेक-नीयती से किया —क्योंकि वह अपने कर्तव्य-पालन में हद से ज्यादा बढ़ गया।

रिपोर्ट के साथ एडविन मांटेग्यू का एक लंबा वक्तव्य भी संलग्न था। उसमें उसने 'पेट के बल रेंगने के आदेश' से विशेष रूप से असहमति व्यक्त की थी उसका कहना था। "यदि यह आदेश उन आदमियों के लिए ही दिया जाता जो वाकई अपराधी थे, तब भी इसका समर्थन करना मुश्किल होता। लेकिन यह तो उन लोगों के लिए दिया गया जिनका अपराध से कोई वास्ता नहीं था। इस लिहाज से यह आदेश सभ्य सरकार के हर कायदे कानून के विपरीत था।"

मांटेग्यू का यह भी कहना था कि अपने कर्तव्य के संबंध में डायर की धारणा ब्रिटिश सरकार की धारणा से इस हद तक अलग है कि "अब उसे इतनी जिम्मेदारी के पद पर बने रहने देने के लिए उपयुक्त नहीं समझा जा सकता।"

'पंजाब का रक्षक' कहे जाने वाले जनरल डायर के भविष्य के बारे में निर्णय टाला नही जा सका।

संयोगकी बात है कि तभी डायर को सैनिक मोर्चे पर भारी सफलता मिली। पंजाब के उपद्रवों के फौरन बाद अफगानिस्तान में विद्रोह भड़क उठा। ब्रिगेडियर जनरल डायर ने अफगान सेना को करारी हार दी। यह हार अफगानों के विद्रोह को खत्म करने में निर्णायक सिद्ध हुई। जालंधर लौटने पर डायर को बताया गया कि उसे उत्तरी डिवीजन का कमांडर नियुक्त किया गया है। इसका मतलब था पदोन्नति। उसे मेजर जनरल बना दिया गया था और उसे 'सर' की उपाधि मिलने की भी आशा बंध गई थी।

किंतु डायर को इसके लिए भारी कीमत चुकानी पड़ी थी। उसका स्वास्थ्य तो पहले ही अच्छा नही था, अफगानिस्तान के ऊबड़-खाबड़ इलाकों में लड़ाई ने उसके स्वास्थ्य पर और भी बुरा असर डाला था। शरीर से जर्जर जनरल डायर 55 वर्ष की आयु में ही बहुत बूढ़ा दिखने लगा था। उसे सिरदर्द तथा जोड़ों के दर्द की शिकायत रहने लगी थी।

उसने इंग्लैंड जाने के लिए छः मास की बीमारी की छुट्टी मांगी, पर उसे बताया गया कि अगर वह स्वदेश गया तो उसे अपना वर्तमान पद छोड़ना होगा। उसके लिए यह एक गहरा और अप्रत्याशित आघात था। फिर जब उसे यह पता चला कि उसकी प्रस्तावित पदोन्नति का आदेश वापस ले लिया गया है तो उसे और भी सदमा पहुंचा। अमृतसर की घटना होती, या न होती: सच्चाई यह है कि उसे सेना में कोई और पदोन्नति नहीं मिलनी थी। उत्तरी डिवीजन के कमांडर के रूप में उसकी नियुक्ति केवल उसी समय तक के लिए अस्थायी तौर पर की गई थी, जब तक कोई स्थायी कमांडर नियुक्त नहीं हो जाता।

इस स्पष्टीकरण के बाद भी डायर यह मान नही पाया कि उसे बलि का बकरा नही बनाया गया है। 27 मार्च को उसने बाकायदा इस्तीफा दे दिया। 6 अप्रैल को वह भारत प्रवास के अपने स्मृति, चिह्नों तथा अपने सारे सामान के [illegible] थ इंग्लैंड के लिए रवाना हो गया। उस शाम डायर औ[illegible] जालंध[illegible] गले की सीढ़ियां उतर रहे थे। जालंधर छावनी का ह[illegible] क[illegible] सैनिक अधि-

से करुणा झलकती है। अमृतसर की घटना के बारे में उसके दृष्टिकोण को उसके इन शब्दों से आंका जा सकता है जो उसने अपनी कारवाई की सफाई में सार्वजनिक रूप से पहली बार कहे थे। उसने कहा था : 'वह मेरा कर्तव्य था—एक भयंकर अप्रिय कर्तव्य। मुझे गोलियां चलानी पड़ी। मुझे क्या करना है, यह निश्चय करने के लिए मेरे पास केवल 30 सेकंड थे। भारत में मैं जिस किसी अंग्रेज से मिला, उसने मेरी इस भयंकर कारवाई को सही करार दिया है। यदि मैंने गोलियां न चलाई होती तो मैं और मेरे थोड़े से सैनिक भूसे की तरह उड़ जाते—और आप स्वयं सोच सकते हैं कि तब क्या होता ?"

'डेली मेल' की इस 'अनोखी खबर' पर भारत में तत्काल प्रतिक्रिया हुई। इससे एक बार फिर पता चल गया कि भारत में इस बारे में गहरे मतभेद हैं, ब्रिटिश स्वामित्व वाले 'टाइम्स आफ इंडिया' ने डायर के इस दावे का खंडन किया कि हर अंग्रेज ने उसकी कारवाई को उचित ठहराया है। पत्र ने लिखा : "जहां भी इस दुःखद घटना की चर्चा होती है, वहां उसकी निंदा ही होती है।" किंतु ब्रिटिश पत्र 'पायोनियर' का मत बिलकुल दूसरा ही था। उसने 'संपादक के नाम' स्तंभ में ऐसे कई पत्र छापे जिनमे सुझाव दिया गया था कि "भारत को 1857 जैसे एक और भयंकर गदर से बचाने के लिए ओ'ड्वायर तथा जनरल डायर को सम्मानस्वरूप तलवारें देने के लिए एक कोष की गवर्नर स्थापना की जाये।"

युद्ध मंत्री सर विंस्टन चर्चिल ने जुलाई के प्रारंभ में ब्रिटिश लोक सभा को बताया कि सैनिक परिषद ने निश्चय किया है कि डायर को गलत निर्णय लेने से बरी नहीं किया जा सकता। परिषद ने भारत के प्रधान सेनापति के इस निर्णय को भी स्वीकार कर लिया है कि डायर को कमांडर के पद से हटा दिया जाए। उसका वेतन घटाकर आधा कर दिया जाए और उसकी पदोन्नति न की जाए। चर्चिल ने कहा, "सैनिक परिषद इन निर्णयों को स्वीकार करती है, किन्तु वह आगे कोई और कारवाई करने की जरूरत नहीं समझती।"

ब्रिटिश संसद में बहस

लेकिन मामला अभी खत्म नहीं हुआ था। जुलाई में ब्रिटिश लोक सभा की बैठक में भारतीय मामलों को ठीक से न निबटाने के लिए ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पर बहस हुई। पर यह बहस डायर की बरखास्तगी के ठीक या गलत होने तक सीमित रह गई।

8 जुलाई की सुबह सदन के बाहर भारी भीड़ जमा थी। 'टाइम्स' ने उदार रुख अपनाए जाने की आशा व्यक्त की थी, किंतु जो लोग वहां घंटों से एकत्र थे, उनका दूसरा ही मत था।

सदन के अंदर जनरल डायर अपनी पत्नी और माइकेल ओ'ड्वायर के बीच बैठा था।

सरकार की ओर से बोलने वालों में सर्वप्रथम एडविन मांटेग्यू था। उसने कहा कि सदन के सामने सीधा-सा मामला है। "जब एक अधिकारी अपने किसी काम को यह कहकर ठीक ठहराता है कि 'यदि मेरे पास और ज्यादा साधन होते तो मरने वालों की संख्या और ज्यादा होती, कि मेरा उद्देश्य सारे पंजाब को सबक सिखाना था,' तो मेरा यह कहना है कि यह आतंकवाद का सिद्धांत है। मेरा यह भी कहना है कि जब आप भारतीयों को एक विशेष स्थान पर पेट के बल रेंग कर चलने का आदेश देते हैं, जब आप सभी भारतीयों को *ब्रिटिश सम्राट के किसी अधिकारी को जबरदस्ती सलाम करने का आदेश देते हैं* तो आप एक समूची जाति का अपमान करते है। जब आप अपराध सिद्ध होने से पहले ही लोगों को कोड़े लगवाते हैं, एक पूरी बारात को बेंतों से पिटवाते हैं तो इसका मतलब है कि लोगों को आप आतंकित करना चाहते हैं, क्या आप आतंकवाद, जातीय भेदभाव और अपमान से तथा डरा-धमका कर भारतीयों पर शासन करना चाहते हैं अथवा सद्भावना के बल पर?"

सदन में *'शेम शेम', 'लानत है', 'नहीं, नही' और 'वापस लो' की आवाजें गूंज उठीं।* एक के बाद एक वक्ता डायर के समर्थन में बोलता चला गया। लगा कि जनरल डायर की बरखास्तगी के सवाल पर ब्रिटिश सरकार गिर जाएगी।

टोरी दल का विद्रोही मिजाज सर एडवर्ड कारसन के भाषण में पूरी तरह प्रतिबिंबित हुआ मांटेग्यू को घूरते हुए उसने कहा, "आप स्वाधीनता के महान सिद्धांतों की बात करते हैं। *जनरल डायर को भी तो यह कहने के अधिकार हैं कि उस पर ये सिद्धांत* लागू किए जाएं। उसे केवल एक जांच समिति के बयान पर उस समय तक सेना से नहीं निकाला जाना चाहिए जब तक कि वह मुकदमे में दोषी सिद्ध न हो जाए—और अभी तक उस पर मुकदमा नही चलाया गया है।"

जब चर्चिल बोलने को खड़ा हुआ तो उसे पता *था कि सरकार का अस्तित्व खतरे में* है, पर वह सदन में झुकने को तैयार नही था। वह मानता था कि डायर सस्ते में छूट गया है, कि उसे कड़ा दंड तो सचमुच ही नही मिला है।

चर्चिल ने सदन को बताया, "एक महत्वपूर्ण तथ्य और जान लेना जरूरी है। मेरा आशय जलियांवाला बाग में उस दिन करीब 400 व्यक्तियों के संहार तथा इससे तिगुने-चौगुने लोगों के घायल होने से है, मेरे खयाल में ब्रिटिश साम्राज्य के आधुनिक इतिहास में इसकी और कोई मिसाल नही है। यह एक असामान्य घटना है, एक भयानक और वहशियाना घटना है जो निहायत शर्मनाक और अपनी मिसाल आप हैं।"

चर्चिल ने अपना भाषण जारी रखते हुए कहा, "इस जन-संहार ने भारत को नही बचाया। भारत में और विश्व में अन्यत्र हमारा शासन केवल फौजों के बल पर शासन करना ब्रिटिश साम्राज्य के लिए घातक होगा।"

सदन को एकदम सांप सूंघ गया। चर्चिल को जिनसे समर्थन की आशा थी, वे भी खामोश रहे। परन्तु उसके भाषण का असर हुआ और जब अविश्वास प्रस्ताव पर मतदान हुआ तो सरकार के कई समर्थकों द्वारा मतदान में भाग न लेने पर भी सरकार जीत गई। पंजाब के उपद्रवों के संबंध में सरकार द्वारा अपनाए गए रुख की विजय हुई।

ब्रिटिश लोक सभा में जीत के इतने नजदीक पहुंच जाने पर डायर अपनी हार से बहुत निराश हुआ। किंतु एक ही सप्ताह बाद लार्ड सभा (उच्च सदन) में वाइकाउंट फिनले ने यह प्रस्ताव पेश किया: "यह सदन जनरल डायर के मामले को निबटाने के ढंग की निंदा करता है और उसे उस अधिकारी के प्रति अन्याय मानता है। यह उदाहरण किसी अन्य अफसर के भविष्य में विद्रोह की स्थिति में कानून की व्यवस्था बनाये रखने के दायित्व से मुंह मोड़ने की गलत प्रेरणा देगा।"

मतदान में फिनले का यह प्रस्ताव 43 के बहुमत से पास हो गया। किन्तु उच्च सदन का यह मत ब्रिटिश लोक सभा के निर्णय को उलट नहीं सकता था। अलबत्ता उसे जनरल डायर के कृत्य का पूर्ण समर्थन माना गया। उसका भारत-ब्रिटिश सम्बन्धों पर भी बुरा असर पड़ा और जो विवाद धीरे-धीरे शान्त होता जा रहा था। वह फिर से उठ खड़ा हुआ।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इस बारे में टिप्पणी की: "तब मुझे पहली बार यह लगा कि साम्राज्यवाद कितना निर्मम और अनैतिक है, कि किस तरह इसने ब्रिटेन के उच्च वर्ग की आत्मा को खोखला कर दिया है।"

उसी महीने टोरी दल के प्रभावशाली पत्र 'मार्निंग पोस्ट' ने 'भारत के रक्षक' के लिए धन संग्रह का आवाहन किया। पत्र ने लिखा कि अपने को बदनाम होने से बचाने के लिए डायर को अपनी पैरवी पर बहुत खर्च करना पड़ा है। सैनिकों को राजनीतिज्ञों की तरह बड़ी-बड़ी तनख्वाहें नहीं मिलतीं। अब डायर का न केवल दिल टूट गया है बल्कि वह आर्थिक दृष्टि से भी विपन्न हो गया है। इस समय उसके लिए दिया गया पैसा न केवल उसे आर्थिक कष्टों से राहत पहुंचाएगा बल्कि संकट की इस घड़ी में यह भी प्रतीत कराएगा कि उसके देशवासियों की उसके प्रति सच्ची सहानुभूति है और वे "राजनीतिज्ञों और अवसरवादियों की कायरता से अलग होकर" उसके आभारी हैं।

पैसा आने लगा, भारत से पटसन और रेलवे कर्मचारियों ने पैसा भेजा। 'पायोनियर' और 'इंगलिशमैन' ने 10,000 रुपए, कलकत्ता के 'मार्निंग पोस्ट' के संवाददाता ने 500, 'मद्रास पर', 'रंगून टाइम्स', 'सिविल एंड मिलिटरी गजट' एवं अन्य कई समाचार पत्रों ने चेक भेजे। भारत में यूरोपियन एसोसिएशन और मद्रास क्लब ने डायर के समर्थन में रैली निकाली। प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों और सैनिक अधिकारियों ने अज्ञात नामों से धन भेजा।

छद्मनाम 'पुअर एंड प्राउड' से किसी ने एक भारतीय सिक्का भेजा। मिस लिली फाकनर ने प्राचीन सिक्कों का संग्रह ही भेज दिया। गुरखा ब्रिगेड के एक भूतपूर्व सदस्य द्वारा भेजे गए पांच रुपये के नोट के बदले में एडवर्ड श्रूस्मिथ ने पांच पौण्ड पेश किए। पैसा भेजने वालों में देहाती, उच्च सैनिक अधिकारी, एडमिरल और निम्नवर्गीय लोग भी थे। कवि और लेखक रुडयार्ड किपलिंग ने 10 पौण्ड भेजे। जब धन संग्रह का कार्य बंद किया गया तो उसमें 26,317 पौंड 4 शिलिंग 10 पेंस की रकम जमा हो चुकी थी। डायर दिवालिएपन की स्थिति से उबर कर एक धनी आदमी बन गया था।

'मार्निंग पोस्ट' के इस तरह चंदा उगाहने तथा उच्च सदन में डायर के समर्थन में

प्रस्ताव पास होने से अधिकतर लोगों ने यही समझा कि मामला खत्म हो गया है कि डायर को जनता ने तथा कानून से सम्बद्ध देश की सबसे उच्च संस्था ने दोष मुक्त कर दिया है, ओ'ड्वायर जनरल डायर के लिए न्याय पाने की खातिर अब भी जूझ रहा था और यह भविष्यवाणी कर रहा था कि यदि ब्रिटेन का यही रवैया रहा तो भारत में ब्रिटिश राज के लिए संकट पैदा हो जाएगा। किन्तु जिस आदमी को लेकर यह सारा तूफान उठा था, वह इस समय मृत्यु-शैय्या पर पड़ा था।

अन्तिम क्षण

कभी का लंबतड़ंग और सीमाप्रांत के मोर्चे का विजेता इस सबसे टूट कर एकदम जर्जर शरीर और एकाकी-सा होकर अपने शेष दिन बिताने के लिए ब्रिस्टल की बाहरी बस्ती लांग ऐशटन में रहने चला गया था। वहां 11 जुलाई, 1927 को उसे दिल का जबरदस्त दौरा पड़ा। उसकी पुत्रवधू फिलिस ने उसे शीघ्र ही अच्छा होने की सांत्वना देनी चाही।

"धन्यवाद," वह बड़बड़ाया, "लेकिन मैं ठीक होना नही चाहता। बहुत से लोग कहते है कि मैंने अमृतसर में जो कुछ किया, ठीक किया···लेकिन कितने ही लोग यह भी कहते हैं कि मैंने गलत काम किया। मैं अब सिर्फ मरना चाहता हूं ताकि अपने बनाने वाले से यह जान सकूं कि मैंने सही किया था या गलत।"

धीरे-धीरे वह छीजता चला गया और 23 जुलाई की शाम को 62 वर्ष की आयु में इस दुनिया से सदा के लिए विदा हो गया।

डायर के शव को वेलिंगटन की सैनिक छावनी के गिरजाघर में लाया गया। वहां से उसके ताबूत को आयरिश गार्ड दस्ते के आठ गैर कमीशन अधिकारी अपने कंधों पर लेकर चले। उन्होंने लाल रंग की ट्यूनिक और फर की ऊंची टोपियां पहन रखी थी। जनरल डायर के शव पर उसका हेलमेट रखा था। ताबूत को शाही तोपखाने की तोपगाड़ी पर रखा गया। उसे तीन जोड़ी घोड़े खींच रहे थे। उसके पीछे-पीछे कारों के काफिले में डायर के परिवार वाले तथा प्रतिष्ठित सैनिक अधिकारी चल रहे थे। यह लंबी शव यात्रा माल रोड पर भारी भीड़ में से होती हुई सेंट मार्टिन गिरजाघर की ओर बढ़ रही है। *डायर को श्रद्धांजलि देने वालों में कवि रुडयार्ड किपलिंग की श्रद्धांजलि भी थी: "उसने* अपना जो फर्ज समझा, वह पूरा किया।"

उपसंहार

13 अप्रैल, 1919 को जलियांवाला बाग में कत्लेआम से जो लोग बचे, उनमें 19 वर्ष का एक अनाथ युवा सिख ऊधम सिंह भी था। जब डायर तथा सैनिक चले गए तो वह खड़ा हो गया और वहां पड़े घायलों को पानी ला-लाकर पिलाने लगा। उस भीषण

हत्याकांड को उसके मन पर अमिट छाप पड़ी और उसने उसी रात बदला लेने की प्रतिज्ञा कर ली।

21 साल बाद उसने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। लंदन के कैक्सटन हॉल में उसने अपनी पिस्तौल निकाल कर मंच और अगली पंक्ति में बैठे लोगों पर एक के बाद एक छः गोलियां चलाईं जिनमें से दो सर माइकेल ओ'ड्वायर को जाकर लगीं।

'पंजाब का लौह पुरुष' तत्काल मर गया। तब उसकी उम्र 75 वर्ष की थी। ओल्ड बेली की अदालत से ऊधम सिंह को मौत की सजा हुई। ऊधम सिंह ने अदालत में अपने जोरदार भाषण से भारत में ब्रिटिश शासन की धज्जियां उड़ा दी। किन्तु उस समय ब्रिटेन नात्सी जर्मनी से युद्ध में उलझा था, इसलिए सरकारी आदेश पर आपातकालीन अधिकारों के तहत उसका वह भाषण अखबारों में छपने से रोक दिया गया। जब 31 जुलाई, 1940 को पेंटनविल जेल में ऊधम सिंह को फांसी दी गई तो अधिकतर ब्रिटेनवासियों ने ओ'ड्वायर की हत्या को एक पागल का कृत्य समझा।

34 साल बाद 19 जुलाई, 1974 को ऊधम सिंह की अस्थियां भारत लाई गईं। भारतीय तिरंगे झंडे और फूलमालाओं में लिपटा उसका अस्थि-कलश दिल्ली लाया गया जहां प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने उसे श्रद्धांजलि अर्पित की। तब वे अस्थियां सारे पंजाब और हरियाणा में घुमाई गईं।

जब अस्थियां अमृतसर पहुंचीं तो उन्हें जलियांवाला बाग ले जाया गया। जो कभी एक सपाट मैदान था। अब वह एक सुन्दर उपवन का रूप धारण कर चुका था। बाग की सारी जमीन कई फुट ऊंची उठा दी गई थी। जिस जगह सैकड़ों का खून बहा था, वहां अब घास का मैदान, झाड़ियां, पेड़ और फूल-ही-फूल थे। जिस कच्चे कबूतरे से डायर ने अपने सैनिकों को गोलियां चलाने का आदेश दिया था, वह अब पक्का था।

हर क्षण वहां स्त्रियों और पुरुषों की भीड़ लगती रही। लोग कतार में एक के बाद एक उन अस्थियों के दर्शन करने आते रहे। लोग ऊधम सिंह के लिए रोते हुए किसी प्रकार का संकोच नहीं कर रहे थे। उसके बाद अस्थियों को अंत्येष्टि के लिए उसके गांव सुनाम ले जाया गया। फिर उसकी भस्मी आनन्दपुर ले जाई गई और गंगा तथा सतलुज नदियों में प्रवाहित कर दी गई। जल-धारा अस्थियों को बहा ले जा रही थी। लग रहा था कि 55 वर्ष पूर्व जो कुछ हुआ, उसकी दुःखद स्मृति भी धीरे-धीरे बही जा रही है।

कमल

कमल की जो तीन किस्में संसार में विख्यात हैं वे सब जल-कमल के वंश की हैं परन्तु उनमें परस्पर बहुत अन्तर है। दक्षिणी यूरोप में कमल भूमि पर झाड़ियों में होता है

उसमें जंगली बेर के बराबर फल लगता है जिसे निर्धन व्यक्ति खाते हैं। दूसरी प्रकार के कमल के दो भेद हैं : एक श्वेत कमल जो कली की अवस्था में तीलीदार पंखुड़ियों से युक्त होता है और खुलने पर गोल होता है। यह कमल मुख्यतः यूनान में होता है। दूसरा, मिस्र में मिलने वाला नील कमल है जिसकी पंखुड़ियां नोकदार होती हैं।

तीसरी प्रकार का कमल भारत का पवित्र कमल है जो पहले केवल भारत में ही मिलता था और आज भी बहुतायात से केवल हमारे ही देश में ही होता है।

यह पवित्र कमल मिस्र और यूनान में अज्ञात था। वह भारत से यूनान गया और यूनान से रोम पहुंचा। मिस्र में कमल का उपयोग केवल सजावट के लिए होता था; वहां के साहित्य अथवा धर्म में इसका उल्लेख नहीं है। मिस्र की चित्रात्मक भाषा में कमल के चित्र का प्रयोग प्रारम्भ में कभी नहीं हुआ। बाद में फारस के मार्ग से भारत के सम्पर्क में आने पर और सिकन्दर महान् के भारत और मिस्र पर आक्रमण के पश्चात् मिस्री और यूनानी देवताओं के हाथ में देवत्व और अमरत्व के प्रतीक के रूप में कमल का प्रादुर्भाव हुआ। मिस्री कमल को जीवन के मूल का प्रतीक मानते थे और उन्होंने इसका सम्पर्क अपनी पवित्र नील नदी से जोड़ दिया था।

ऋग्वेद में और उसके बाद के वेदों, उपनिषदों, पुराणों, इतिहासों, काव्यों और कथाओं में दो प्रकार के कमलों का उल्लेख है। पहला पुण्डरीक है जिसकी तुलना ऋग्वेद और अथर्ववेद में मनुष्य के हृदय से (हृदय कमलम्) से की गई है। पंचविंश ब्राह्मण में कहा गया है कि पुण्डरीक का जन्म नक्षत्र—पुंज, त्रिमूर्ति, कृत्तिके, सप्तर्षि, त्रिशंकु और अश्विनी से हुआ है।

कृष्ण यजुर्वेद में नारायण के कमल-पुष्पों का हार पहने क्षीर सागर में योग निद्रा में मग्न होने का उल्लेख है। इसका आशय यही है कि आकाश में असंख्य तारागण हैं। ऋग्वेद मे उल्लिखित कमल की दूसरी किस्म पुष्कर है। ऋग्वेद में पुष्कर का अनेक बार और बाद के वेदों और पुराणों में असंख्य बार उल्लेख किया गया है। पुष्कर को 'नीलोत्पल' (नीला कमल) कहा गया है जो झीलों में होता है। यह धारणा इतनी जमी कि कमल-रहित झील को झील ही नहीं माना गया। इसीलिए झील को पुष्करिणी भी कहते हैं। राजपूताना में ब्रह्मा के मन्दिर के आगे बनी बड़ी झील को आज भी पुष्कर कहते हैं हालांकि मनुष्य की उपेक्षा के कारण आज वहां कमलों से अधिक मगरमच्छ ही होते हैं।

'ब्राह्मणों' में कमल का सम्बन्ध प्रजापति से दिखाया गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में प्रजापति को जल राशि के किनारे, पृथ्वी के निर्माण की इच्छा से (स्वराट् आपः, विराट् आपः, सर्वम् अम्मयं जगत्) बैठा हुआ दिखाया गया है।

प्रजापति ने कमल के एक पत्ते (पुष्करपर्ण) को बहते पानी पर सीधा खड़ा तैरते देखा। यह सोच कर कि कमल का पत्ता अवश्य ही किसी-न-किसी वस्तु पर आधारित है उन्होंने वराह के रूप में पानी में डुबकी लगायी। वहां उन्होंने पृथ्वी को देखा और उसे उठाकर वे पानी के तल पर ले आये। इस प्रकार पृथ्वी का उदय हुआ।

तैत्तिरीय आरण्यक में कहा गया है कि प्रारम्भ में केवल अथाह जलराशि थी। उस

जलराशि से कमल का एक पत्ता बाहर निकला और कमल के उस पत्ते से प्रजापति का जन्म हुआ। बाद में प्रजापति ने संसार की रचना की। महाभारत के अनुसार सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा का जन्म विष्णु की नाभि से निकले कमल से हुआ। इसीलिए ब्रह्मा को पद्मज, अब्जज या अब्जयोनि और विष्णु को पद्मनाभ कहते हैं।

महाभारत में यह भी कहा गया है कि कमल विष्णु के मस्तक से निकला और उससे श्री या लक्ष्मी का जन्म हुआ। इसीलिए लक्ष्मी को पद्मा या कमला भी कहते हैं। महाभारत के अनुसार नलिनी झील (मानसरोवर) और कैलाश पर्वत के निकट मन्दाकिनी नदी में स्वर्ण-कमल खिले रहते हैं। नलिनी भी सरोज और सरोजिनी की भांति कमल ही का एक नाम है।

ब्रह्मकमल

कमल को वेदों के युग से ही पाप-मुक्त पवित्रता और अमरत्व का प्रतीक माना जाता है। मनुष्यों को यह आदेश है कि वे कमल के समान बनें जो कीचड़ और गन्दे पानी से जीवन प्राप्त करता है और फिर भी गन्दगी से मुक्त रहता है। हिन्दुओं के महान् धार्मिक ग्रन्थ, और उपनिषदों के स्रोत, भगवत्गीता का एक प्रसिद्ध श्लोक है:

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि
संगं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन
पद्मपत्रमिवाम्भसा ।। (गीता श्लोक 10)

कमल जल में रहकर भी जल से अछूता रहता है, इसी प्रकार मनुष्य को संसार में रहते हुए भी संसार से अलग रहना चाहिए, कर्म करते हुए भी इनमें लिप्त न होना चाहिए। कैसी सुन्दर उपमा है यह। इससे स्पष्ट है कि धर्म में कमल का प्रयोग आध्यात्मिक पक्ष व्यक्त करने के लिए किस प्रकार किया जाता था।

भारतीयजन आज भी कमल को गुलाब से कहीं अधिक अच्छा मानते हैं। गुलाब केवल इस लोक का एक सुन्दर फूल है और उसका दूसरे लोक से या अमरत्व से या जीवन-प्रदान करने वाले सूर्य से कोई सम्बन्ध नहीं। प्राचीन भारतीय सूर्योदय पर कमल के खिलने और सूर्यास्त पर कमल के बन्द होने पर मुग्ध हो गये थे। पुराणों के अनुसार, रात्रि होने पर सूर्य कमल में चला जाता है और वहां सो जाता है। इसीलिए, जैसे रात होने पर द्वार बन्द हो जाते हैं उसी प्रकार सूर्यास्त होने पर कमल का फूल बन्द हो जाता है। प्रातःकाल, घर के द्वार खुलने के समान कमल का फूल भी खुल जाता है और सूर्य आकाश-भ्रमण की अपनी दिनचर्या आरम्भ कर देता है।

भौतिक प्रक्रिया को उलट देने के इस प्रयास से स्पष्ट है कि भारतीय इस दिव्य फूल से कितना स्नेह करते हैं। कवियों ने इसकी पंखुड़ियों को 1 हजार बताकर अतिशयोक्ति की है और इन 1 हजार पंखुड़ियों की तुलना ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में वर्णित ईश्वर के हजार शिरों, हजार नेत्रों और हजार चरणों (सहस्रशीर्षा, सहस्राक्ष, सहस्रपाद) से की है। वास्तव में हिन्दुओं, बौद्धों और जैनों के सभी देवताओं का इस दिव्य फूल से सम्बन्ध है। देश के हजारों मन्दिरों में इस फूल की पंखुड़ियां इन देवताओं पर चढ़ायी जाती है।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती, अग्नि, गणेश, राम और सूर्य, इन सभी के वर्णन में यह दिखाया गया है कि उनके हाथ में कमल का फूल है। यह दिखाने के लिए कि ये सब इस लोक के नहीं देवलोक के वासी हैं, इन सबको पद्मासन की मुद्रा में कमल के फूल पर बैठा दिखाया गया है। बुद्ध-चरित और सद्धर्म पुण्डरीक जैसे बौद्ध ग्रन्थों में लक्ष्मी को दोनों हाथों में कमल लिये और कमल ही पर बैठे हुए दिखाया गया है। दोनों ओर दो हाथी अपनी सूंड में पानी भरकर इन कमलों पर छोड़ रहे हैं। उदयगिरि, मरहूत, सांची और पोल्लनरुवा की मूर्तियों से भी यह स्पष्ट है।

इसी प्रकार, इन ग्रन्थों में बुद्ध को भी पद्मासन की मुद्रा में कमल पर बैठे हुए या कमल पर खड़े हुए दिखाया गया है। राजगिरि, कन्हेरी, कर्ली, गांधार, नेपाल, वर्मा, चीन और तिब्बत की बुद्ध मूर्तियों में भी भगवान बुद्ध को इसी मुद्रा में दिखाया गया है। इन मूर्तियों में जो कमल है उसकी चार या छः पंखुड़ियां दिखायी गई हैं। बोधिसत्वों को भी कमल पर आसीन दिखाया गया है।

वास्तव में सद्धर्म पुण्डरीक में कहा गया है कि बौद्ध-स्वर्ग, सुखवती में जहां स्त्रियां नही होंगी, सब पुरुष देवताओं की भांति कमल के फूलों पर आसीन होंगे और सब ओर असंख्य कमल फैले होंगे। बुद्ध को भी अपने चरण-कमलों द्वारा प्रत्येक कदम पर भूमि कमल की छाप छोड़ते हुए दिखाया गया है।

सन्त तिरुवल्लुवर ने 'कुराल' में भगवान के कमल के फूलों पर चलने का उल्लेख किया है और मनुष्यों को आदेश दिया है कि वे चरण-कमलों की शरण लें।

जैन तीर्थंकरों का भी कमल पर बैठे होने का उल्लेख है। आचारांगों के अनुसार उनके हाथ में भी कमल का फूल होता है। जैनों का छठा चिन्ह भी कमल ही है।

यह स्पष्ट है कि बौद्धों और जैनों ने कमल का चिन्ह वेदों से ग्रहण किया। भारतीयों के लिए वेदों के काल से ही कमल मुख्यतः दैवी जन्म का प्रतीत है। इसके अतिरिक्त कमल दैवी रचना शक्ति और अमरत्व का भी प्रतीक है। बौद्धों का विख्यात मंत्र 'ओम् मणि पद्मेहुम' (हे कमल में निहित रत्न मैं तुम्हारी अर्चना करता हूं) हिन्दू देवी-देवताओं की आराधना मे कहे गए मंत्रों का पर्यायवाची है।

अद्वितीय भौतिक सौन्दर्य के साथ-ही-साथ आध्यात्मिक सौन्दर्य से भी युक्त होने के कारण कवियों ने अपनी नायिकाओं की कमल के फूल से तुलना की है और उन्हें पुष्कराक्षी, पुण्डरीकाक्षी, कमलाक्षी, पद्माक्षी और अरविन्दाक्षी कहा है। वास्तव में शरीर के सभी अंगों के सौन्दर्य का वर्णन करते समय कमल की उपमा दी गयी है। उदाहरणार्थ श्री कृष्ण कर्णामृतम् के निम्नलिखित प्रसिद्ध श्लोक में कहा गया है :

> करारविन्देन पदारविन्दम्,
> मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम्।
> वटस्य पत्रस्य पुटे शयानम्,
> बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि॥

कमल से यह तुलना सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति में, चाहे वह आर्य हो अथवा द्रविड़, व्याप्त है। मलयालम की प्रसिद्ध लोरी है :

> ओमनतिंगल किदावो
> कोमलतामरप्पूवे।

गुरु के चरणों को चरण-कमल कहा जाता है। इसी प्रकार माता और पिता के चरणों को भी चरण-कमल कहा जाता है। कमल जीवन का स्रोत है, अतः बच्चे को जन्म देने वाले गर्भ को भी 'गर्भ पद्म' कहा गया है। गर्भोपनिषद में कहा गया है कि गर्भ कमल के अथवा प्रणव ओम् के समान होता है। महायान बौद्धों के महान ग्रन्थ सद्धर्म पुण्डरीक में भी कमल का नाम जुड़ा हुआ है।

यूनानियों के महाकाव्य 'ओडेसी' में वर्णित कमल-भक्षियों (लोटस ईटर्स) की कथा भी सम्भवतः भारत ही से ली गयी है। ओडेसियस ने एक अज्ञात समुद्र-तट पर ऐसे लोगों को देखा जो कमल का फल खाकर रहते थे। इन कमल भक्षियों ने ओडेसियस के साथियों को भी ये फल खाने को दिये। फल खाने के पश्चात् ओडेसियस के साथी अपने

घरबार और मित्रों को भूल गये और उनकी एकमात्र कामना उस अज्ञात समुद्र-तट पर रहकर कमल का फल खाने की रह गई। यह कथा इस भारतीय विचारधारा के अनुकूल है कि जो भी पद्मनाभ की पूजा करता है वह घरबार और मित्रों को ही नहीं बल्कि इस संसार को ही भूल जाता है और केवल अपने प्रेम-पात्र के लिए जीवित रहता है।

प्राचीन काल के असभ्य कमल-भक्षी सम्भवतः अफ्रीका और दक्षिणी इटली में रहते थे। परन्तु, जिन कमल-भक्षियों का वर्णन ओडेसी में किया गया है। वे हिन्दुओं के भक्ति-सूत्र या बौद्धों के सद्धर्मपुण्डरीक या जैनों के आचारांगों में वर्णित भक्तों जैसे लगते हैं।

मिस्रियों, असीरियनों और यूनानियों ने कमल को सजावट के लिए तो खूब अपनाया परन्तु उनके साहित्य में उसे स्थान नहीं मिला। केवल भारतीयों ने कमल को साहित्य में अपनाया है। सजावट के लिए कमल के दो रूप अपनाये गये—एक पूर्णतः विकसित कमल और दूसरा अर्धविकसित कमल। कमल के ये दो रूप बौद्धमत के साथ-साथ पूर्व में जापान तक प्रचलित हो गए।

पद्मपुराण में इस काल का वर्णन है जब संसार का जन्म एक स्वर्ण कमल से हुआ। ब्रह्मा के अन्तिम कल्प को पद्म कल्प कहा गया है। बौद्ध साहित्य में साधारण कमल का सम्बन्ध तारा और अवलोकितेश्वर, पद्मपाणि और मैत्रेय से जोड़ा गया है। हिन्दू साहित्य में लक्ष्मी और सरस्वती का कमल से सम्बन्ध है। खड्ग से आवृत्त कमल का सम्बन्ध बौद्ध साहित्य में सिंघनाद, तारा और मैत्रेय से है और हिन्दू साहित्य में महाकाली और महिषासुरमर्दिनी से। वज्र से आवृत्त कमल का सम्बन्ध बौद्ध साहित्य में मंजुश्री और वज्रपाणि से है और हिन्दू साहित्य में इन्द्र से। ग्रन्थ से आवृत्त कमल का सम्बन्ध बौद्ध साहित्य में मंजुश्री और प्रज्ञा परमिता से है और हिन्दू साहित्य में सरस्वती से।

साहित्य में कमल केवल आध्यात्मिक अथवा कलात्मक सौन्दर्य के लिए ही नहीं अपनाया गया। गणित की संख्या, पद्म, की धारणा कमल की पंखड़ियों की संख्या पर आधारित है। कमल के रूप में खड़ी की गयी सेना को पद्मव्यूह कहा गया है।

कमल की श्रेष्ठता के कारण पद्मश्री उपाधि बनी। शक्तिशाली दुर्जनों को पद्म अथवा महापद्म (जैसे महापद्म नन्द) कहा जाने लगा। कहीं-कहीं तो रावण के भी कमल पर आसीन होने का उल्लेख है। जो इसी बात का प्रतीक है कि उसके पास दैवी शक्ति थी। श्रेष्ठ जादूगर को पद्म सम्भव कहा जाता है और सबसे विषैले सांप को पद्म सर्प।

भारतीय साहित्य चाहे वह धार्मिक, सौन्दर्यात्मक और कलात्मक हो या यांत्रिक, तांत्रिक और यांत्रिक पर्वतों में जैसे हिमालय और नदियों में जैसे गंगा के वर्णन से भरा हुआ है उसी प्रकार फूलों में कमल के वर्णन से भरा हुआ है। हमारे धर्म-निरपेक्ष गंगाराम ने भी 6 हजार वर्ष पूर्व की परम्परा को अपनाते हुए राज्य की उपाधियों में पद्मश्री पद्म-भूषण और पद्मविभूषण को शामिल किया है।

कमल सदा से हमारे साहित्य और जीवन में हमारा साथी रहा है और जब तक भारत है तब तक वह हमारा साथी बना रहेगा।

पद्म-कमल

भारत धर्म-निरपेक्ष (सब धर्मों का आदर करने वाला) गणराज्य है। यह 6 हजार वर्ष प्राचीन परम्परा को अपनाकर विशिष्ट व्यक्तियों को सम्मानित किए जाने वाली चार राज्य उपाधियां प्रदान करता है—भारतरत्न, पद्मश्री, पद्मभूषण और पद्मविभूषण।

पद्म का अर्थ कमल है। भारत की संस्कृति, साहित्य, धर्म, सौन्दर्य, कला और मंत्र तन्त्रों में कमल की श्रेष्ठता व्याप्त है। कमल को पाप मुक्त, पवित्रता और अमरत्त्व का प्रतीक माना जाता है मनुष्यों को यह आदेश है कि वे कमल के समान बने जो कीचड़ और गन्दे पानी से जीवन प्राप्त तो करता है परन्तु स्वयं गन्दगी से मुक्त रहता है। कमल जल में रहते हुए भी जल से अछूता रहता है। कमल झीलों में उत्पन्न होता है। इसी से झील को पुष्करिणी कहते हैं। मानसरोवर झील में श्रेष्ठ किस्म के कमल उत्पन्न होते हैं उसमें स्वर्ण कमल खिले रहते हैं। कमल का फूल सूर्योदय होने पर खिलता है, रात्रि आगमन पर बन्द हो जाता है। भौंरा इसे बहुत प्यार करता है, वह इसी का रसास्वादन करता है और सूर्योदय होने पर इसी में बन्द हो जाता है। संस्कृत के अमर कवि कल्हण ने कमल को चन्द्र से प्रफुल्लित होने वाला बताया है।

कमल सात प्रकार का होता है—पुंडरीक (अतिश्वेत), सौगंधिक (नील), रक्तपद्म कुमुद तथा तीन अन्य प्रकार के क्षुद्र कमल, पद्मकमल की गंध भी पवित्र मानी गई है। कमल का रंग और गंध अत्यन्त मोहक होती है।

विद्या की देवी सरस्वती 'श्वेत पद्मासना' कही गई है। धन की देवी लक्ष्मी 'पद्माक्षी' 'पद्ममुखी' और कमला कही गई है। लक्ष्मी पूजन की मूर्तियों में लक्ष्मी के दोनों हाथों में कमल लिये और कमल पर बैठे दिखाया जाता है। दोनों ओर दो हाथी अपनी सूंड में पानी भरकर इन कमलों पर छोड़ते रहते हैं। सुन्दर नेत्र और सुन्दर मुख की उपमा कमल से दी जाती है। परमात्मा को कमल के फूलों पर चलने वाला बताया गया है, इसी से धर्म-ग्रन्थ कहते हैं कि मनुष्य चरण-कमलों की शरण लें। गुरु और माता-पिता के चरणों को भी चरण-कमल कहा जाता है।

साहित्य में कमल केवल आध्यात्मिक अथवा कलात्मक सौन्दर्य के लिए ही नहीं अपनाया गया। गणित की संख्या पद्म की धारणा कमल की पंखुड़ियों की संख्या पर आधारित है। प्राचीन काल के युद्धों में सेना पद्म-व्यूह रूप में खड़ी की जाती थी। दक्षिण भारत में ब्रह्मकमल को 'अनन्तशयनम्' कहते हैं। ब्रह्मकमल बड़े आकार का होता है और शीघ्रता से बढ़ता है। यह गरमियों या वर्षा ऋतु में होता है। इसकी पंखुड़ियां रात भर खिली रहती हैं और प्रातःकाल झड़ जाती है। ब्रह्मकमल की तीन किस्म होती हैं—हूकरी, ट्रन्केटम, और अलातम।

15 अगस्त 1947 की मध्य रात्रि

14 अगस्त की आधी रात को सबकी आंखें घड़ी की सुई पर टिकी हुई थीं। उत्सुकता से रात्रि में बारह बजने की प्रतीक्षा हो रही थी। संसद के केन्द्रीय कक्ष में जहां स्वतंत्रता की यह घोषणा होनी थी वहां अध्यक्ष के आसन पर विराजमान राजेन्द्र बाबू ने कहा—अब घड़ी की सुई को बारह तक पहुंचने में ठीक आधा मिनट शेष रह जाता है। मैं घड़ी की इन तीस सैकड़ों की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा हूं। कुछ ही क्षणों में सुई बारह पर पहुंच गयी। बारह बजते ही अध्यक्ष तथा सदस्य खड़े हो गये। राजेन्द्र बाबू ने सदस्यों को प्रतीक्षा लेने के लिए सावधान किया और सदस्यों से इन शब्दों में प्रतिज्ञा ग्रहण करवायी—

'अब जब कि हिंदवासियों ने त्याग और तप से स्वतंत्रता हासिल कर ली है, मैं—जो संविधान परिषद का एक सदस्य हूं अपने को बड़ी नम्रता से हिंद और हिंदवासियों की सेवा के लिए अर्पित करता हूं, जिससे यह प्राचीन देश संसार में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर सके और संसार में शांति स्थापित करने और मानव जाति के कल्याण में अपनी पूरी शक्ति लगा कर खुशी-खुशी हाथ बटा सके।'

संविधान परिषद में सदस्यों द्वारा शपथ ग्रहण करने के बाद लार्ड माउंटबेटन को वायसराय की बजाय उन्हें गवर्नर जनरल के पद पर नियुक्त करने की सूचना देने का भी निश्चय हुआ। अध्यक्ष श्री राजेन्द्र बाबू ने प्रस्ताव करते हुए कहा—अब ब्रिटेन के वायसराय को इस बात की सूचना दे दी जाए कि भारतीय विधान परिषद ने भारत का शासनाधिकार ग्रहण कर लिया है। इस सिफारिश को भी स्वीकार कर लिया है कि 15 अगस्त, 1947 से लार्ड माउंटबेटन भारत के गवर्नर जनरल होंगे। यह संदेश स्वयं अध्यक्ष तथा श्री जवाहरलाल नेहरू ने स्वयं जाकर लार्ड माउंटबेटन को दिया।

इसी अवसर पर भारत का राष्ट्र-ध्वज भी भारतीय महिला समाज की ओर से श्रीमती हंसा मेहता ने अध्यक्ष को भेंट किया। जिन महिलाओं की ओर से अशोक चक्रांकित यह तिरंगा ध्वज अध्यक्ष महोदय को भेंट किया गया, उन 74 महिलाओं में श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित, श्रीमती सरोजिनी नायडू, राजकुमारी अमृतकौर, कुमारी मणिबेन पटेल, इंदिरा गांधी आदि सम्मिलित थीं। श्रीमती हंसा मेहता ने राष्ट्र-ध्वज भेंट करते हुए कहा—पहली राष्ट्रीय पताका जो इस महिमामंडित भवन पर सुशोभित हो, उसे भारतीय महिला समाज एक उपहार की तरह उपस्थित कर रहा है। अपनी स्वतंत्रता की प्रतीक इस पताका को उपस्थित करते हुए हम पुनः राष्ट्र के लिए अपनी सेवाएं अर्पित करती हैं। महान भारत की प्रतीक यह पताका सदा फहराती रहे और विश्व पर आज जो संकट की कालिमा छाई है, उसे यह प्रकाश दे।

अध्यक्ष ने अपने भाषण में कहा—'आज हम अपने देश की बागडोर अपने हाथों में ले रहे हैं। इस असवर पर हमें उस परमपिता परमात्मा की याद करनी चाहिए जो मनुष्य और देशों के भाग्य बनाता है।

डॉ० राधाकृष्णन ने अपने भाषण में भारत की सांस्कृतिक विरासत की चर्चा करते हुए कहा—इस देश का भविष्य फिर वैसा ही महान होगा जैसा इसका अतीत महिमामय रहा है।

जवाहर लाल नेहरू ने कहा—'हमारे दिल में खुशी है। लेकिन यह भी हम जानते हैं कि हिन्दुस्तान भर में खुशी नहीं है। हमारे दिल में रंज के टुकड़े काफी हैं। दिल्ली से बहुत दूर नहीं—बड़े-बड़े शहर जल रहे हैं। वहां की गर्मी यहां आ रही है। ऐसे में खुशी पूरे तौर से नहीं हो सकती। लेकिन फिर भी हमें इस मौके पर हिम्मत से सब बातों का सामना करना है। न हाय-हाय करनी है न परेशान होना है। जब हमारे हाथ में बाग-डोर आयी है तो फिर ठीक तरह से गाड़ी को चलाना है। कई वर्ष हुए जब हमने किस्मत की एक बाजी लगायी थी, अब समय आ गया जब हम उसे पूरा करें। एक मंजिल पूरी हुई, लेकिन भविष्य के लिए एक प्रण और प्रतिज्ञा हमें करनी है। वह हिन्दुस्तान के लोगों की सेवा करना है।

जिन देश भक्तों ने इस दिन को लाने के लिए अपने प्राण न्योछावर कर दिये, हंसते-हंसते फांसी के तख्तों पर चढ़ गये। गोलियों के शिकार बने, जेलखानों और कालेपानी के टापू में घुल-घुलकर अपने जीवन का उत्सर्ग किया। आज का यह दिन उनकी तपस्या और त्याग का ही फल है।

15 अगस्त को प्रातः दस बजे भारतीय विधान परिषद की बैठक कांस्टीट्यूशन हॉल में हुई। अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद के साथ लार्ड माउंटबेटन और उनकी धर्मपत्नी भी इसमें पधारीं। प्रारम्भ में भारत के ऐतिहासिक स्वाधीनता पर्व के लिए विदेशों से आये कुछ विशेष स्वाधीनता संदेश पढ़ कर सुनाये गये। इन में चीन, कनाडा, आस्ट्रेलिया, इंडोनेशिया, नेपाल और संयुक्त राज्य के प्रधान मंत्री के संदेश भी सम्मिलित थे। उसके बाद माउंटबेटन ने ब्रिटिश सम्राट का एक संदेश पढ़ कर सुनाया—

'इस ऐतिहासिक दिन, जबकि भारत ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में एक स्वतंत्र और स्वाधीन उपनिवेश के रूप में स्थान ग्रहण कर रहा है, मैं आप सबको अपनी हार्दिक शुभ-कामनाएं भेजता हूं।'

'आपके इस स्वाधीनता महोत्सव में प्रत्येक स्वतंत्रता-प्रिय राष्ट्र भाग लेना चाहेगा, क्योंकि पारस्परिक स्वीकृति द्वारा सत्ता का जो यह हस्तांतरण हुआ है, उससे एक ऐसे महान लोकतंत्रीय आदर्श की पूर्ति हुई है जिसे ब्रिटेन और भारत दोनों देशों के लोग समान रूप से कार्यान्वित करने के लिए कटिबद्ध रहे हैं। यह बड़ी ही उत्साहवर्धक बात है। यह सब शांतिपूर्ण परिवर्तन द्वारा संपन्न हो सका है।'

'भविष्य में आपको बड़ी जिम्मेदारियों का भार वहन करना है किन्तु जब मैं आप के द्वारा प्रकट की गयी राजनीतिज्ञता तथा किये गए त्यागों का विचार करता हूं, तो मुझे विश्वास हो जाता है कि भविष्य का भार आप समुचित रूप से वहन कर सकेंगे।'

कवि रंगा ने कहा—

'ओ विप्लव के थके साथियो !
विजय मिली विश्राम न समझो।'

उपनिषद के स्वर्ग उपदेश

1. सत्यं वद—सच बोलो—	Speak the truth
2. धर्मं चर—धर्म का आचरण करो—	Walk in the way of thy duty
3. स्वाध्यायान्मा प्रमदः—स्वाध्याय में प्रमाद (आलस्य) मत करो—	Neglect not the study of higher knowledge.
4. आचार्याय प्रियं धन माहृत्य प्रजातन्तु मा व्यवच्छेत्सी—आचार्य की सेवा में मनोनुकूल धन अर्पित करके तुम गृहस्थाश्रमी के लिए उचित प्रजासूत्र का लोप न करना।	Treat thy teacher with respect and gratitute, And fail not in taking upon thyself the burden of life.
5. सत्यान्न प्रमदितव्यम्—सत्य में प्रमाद न हो	Thou shalt not be negligent of truth.
6. धर्मान्नि प्रमदितव्यम्—धर्माचरण में प्रमाद न हो।	Thou shalt not be negligent of thy duty.
7. कुशलान्न प्रमदितव्यम्—शरीर मन आत्मा के कुशल कर्मों में प्रमाद न हो।	Thou shalt not be negligent of social welfare.
8 भूत्यै न प्रमदितव्यम्—आर्थिक स्थिति में. प्रमाद न हो।	Thou shalt not be negligent of thy good.
9. स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्—निजी स्वाध्याय एवं औरों के अध्यापन में प्रमाद न हो।	Thou shalt not be negligent of the study and teaching of higher knowledge.
10. देवपितृ कार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्—देव और पितृ पितामह से सम्बद्ध कार्यों में प्रमाद न हो।	Thou shalt not be negligent of the duties unto God or unto the heritage which our fare-fathers have left behind them.

11. मातृ देवो भव—मातृ देव बनो	Let thy Mother be thy object of reverence, whom thou adorest.
12. पितृ देवो भव—पितृ देव बनो	Let thy father be unto thee as thy object of reverence.
13. आचार्य देवो भव—आचार्य देव बनो	Let thy teacher be unto thee as thy object of reverence.
14. अतिथि देवो भव—अतिथि देव बनो	And thou shalt serve thy guest with humility and reverence.
15. यान्यनवद्यानि कर्माणी तानि सेवितव्यानि नो इतराणि—जो आनन्दित कर्म है उनका आचरण हो, औरों का नहीं।	Thou shalt practise acts which are irreproachable and no others.
16. यान्य स्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि—हमारे भी जो सदाचार युक्त कर्म हों उनका तुम आचरण करना, औरों का नहीं।	Thou shalt practise deeds wich are good and righteous, and no others.
17. य के चास्मच्छे यांसो ब्राह्मणा: तेषां त्वयाऽऽसने प्रश्वसितव्यम्—जो कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण हमारे मध्य में हों उनका तुम आसनादि से सत्कार करना।	Treat men of high learnig and character with respect.
18. श्रद्धयादेयम्। अश्रद्धयाऽदेयम्—श्रद्धा से दान दो। श्रद्धाविहीन होकर न दो।	Thou shalt give with faith and reverence with out faith thou shalt not give.
19. ह्रियादेयम्। ह्रियादेयम्—सम्पत्ति के अनुकूल दो। शालीनता से दो।	Thou shalt given plentifully and with modesty.
20. भियादेयम्। संविदादेयम्—समाज और सृष्टि के नियमों से भय रखकर दान दो। सहानुभूति की भावना से दान दो।	Thou shalt give with humility and with sympathy.
21. अथ यदि ते कर्म विचिकित्सा वा वृत्त विचिकित्सा व स्यात्, ये तत्र ब्राह्मणा: सम्मार्शिन:, युक्ता आयुक्ता अलूक्षा धर्मकामा: स्यु:, यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र	It thou hast anydoubts about thy course or thy action learn from the behaviour ofmen of high learning and character,

वर्तेथाः—अब यदि तुम्हें कर्म के विषय में सन्देह हो या आचार के विषय में सन्देह हो तो समाज में जो ब्राह्मण विचारशील, समाहितचित और समाहित कर्म वाले हों, जो भावों की रुक्षता से रहित और धर्म की प्रेरणा से भरे हों वे उस विषय में जैसा करें वैसा तुम भी उस विषय में करना।

who are competent to judge *devoted, kind and virtuous* : even as they do in that thing so do thou.

22. अथाभ्याख्यातेषु ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मशिनि युक्ता आयुक्ता अलूक्षा धर्म कामः स्युः, यथा ते तेषु वर्तेरन् तथा तेषु वर्तेथाः—जो निंदित जन हैं उनके विषय में भी जो ब्राह्मण विचारशील समाहितचित्त और समाहित कर्म वाले हों, जो भावों की रुक्षता से रहित और धर्म की प्रेरणा से भरे हों वे उस विषय में जैसा करें वैसा तुम भी करना।

Treat those who are accused *or arraigned by their fellows* in the same manner as such men of high learning and character treat them.

23. शिवास्ते पन्थानस्सन्तु—May thy path be blest.
(तैत्तिरीय उपनिषद)

24. संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः
सह चित्तमेषाम्॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासित॥

,191)

Meet to-g... :
May your min... alike
Common be ,
Common be yo
Common be the
—so there may h

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतं गमय
From untruth lead me to the Truth,
From darkness lead me to Light,
From death lead me to Light.

अहमेव पन्था: सत्यंच जीवनंच
अहं जगतो ज्योति:
अहं पुनरुत्थानं जीवनंच
I am the Way, the Truth, the Life,
I am the Light of the world,
I am the Resurrection and the Life.

जीवन की परिभाषा

1. बुलबुल ने कहा—'जीवन संगीत है।'
2. छछूंदर ने कहा—'जीवन अंधेरे में एक युद्ध है।'
3. जंगली गुलाब की कली ने अपनी एक-एक पंखुड़ी फैलाते हुए कहा—'जीवन एक विकास है।'
4. तितली ने उसे चूमकर कहा—'जीवन आनन्द ही आनन्द है।"
5. मक्खी ने कहा—'जीवन ग्रीष्मकालीन छोटा दिन है।"
6. चीटी ने कहा—'जीवन कठिन परिश्रम है।'
7. नीलकंठ ने कहा—'जीवन आंसुओं की लड़ी है।'
8. गिद्ध ने कहा—'जीवन शक्ति और स्वतन्त्रता है।'

वर्तेथा:—अब यदि तुम्हें कर्म के विषय में सन्देह हो या आचार के विषय में सन्देह हो तो समाज में जो ब्राह्मण विचारशील, समाहितचित और समाहित कर्म वाले हों, जो भावों की रुक्षता से रहित और धर्म की प्रेरणा से भरे हों वे उस विषय में जैसा करें वैसा तुम भी उस विषय में करना।

who are competent to judge devoted, kind and virtuous: even as they do in that thing so do thou.

22. अथाभ्याख्यातेषु ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनि युक्ता आयुक्ता अलूक्षा धर्म कामः स्युः, यथा ते तेषु वर्तेरन् तथा तेषु वर्तेथा:—जो निंदित जन हैं उनके विषय में भी जो ब्राह्मण विचारशील समाहितचित और समाहित कर्म वाले हों, जो भावों की रुक्षता से रहित और धर्म की प्रेरणा से भरे हों वे उस विषय में जैसा करें वैसा तुम भी करना।

Treat those who are accused or arraigned by their fellows in the same manner as such men of high learning and character treat them.

23. शिवास्ते पन्थानस्सन्तु—May thy path he blest.
(तैत्तिरीय उपनिषद)

24. संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः
सह चित्तमेषाम्॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासित॥

(ऋग्वेद—10,191)

Meet to-gether, talk to-gether:
May your minds camprehend alike
Common be your action and achievement:
Common be your thoughts and intentions:
Common be the wishes of your hearts
—so there may be through union among you.

(Rigveda—X, 191)

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतं गमय
From untruth lead me to the Truth,
From darkness lead me to Light,
From death lead me to Light.

अहमेव पन्था: सत्यंच जीवनंच
अहं जगतो ज्योति:
अहं पुनरूत्थानं जीवनंच
I am the Way, the Truth, the Life,
I am the Light of the world,
I am the Resurrection and the Life.

जीवन की परिभाषा

1. बुलबुल ने कहा—'जीवन संगीत है।'
2. छछूंदर ने कहा—'जीवन अंधेरे में एक युद्ध है।'
3. जंगली गुलाब की कली ने अपनी एक-एक पंखुड़ी फैलाते हुए कहा—'जीवन एक विकास है।'
4. तितली ने उसे चूमकर कहा—'जीवन आनन्द ही आनन्द है।"
5. मक्खी ने कहा—'जीवन ग्रीष्मकालीन छोटा दिन है।"
6. चीटी ने कहा—'जीवन कठिन परिश्रम है।'
7. नीलकंठ ने कहा—'जीवन आंसुओं की लड़ी है।'
8. गिद्ध ने कहा—'जीवन शक्ति और स्वतन्त्रता है।'

9 रात्रि समीर ने कहा—'जीवन स्वप्न है।'

10. विद्यार्थी ने कहा—'जीवन स्कूल है।'

11. रसिक युवक ने कहा—'जीवन कभी न मिटने वाली एक तमन्ना है।'

12. प्रातः समीर ने कहा—'जीवन एक भेद है।'

13. सूर्य ने प्रकाश बटोरकर कहा—'उठो, उठो, जीवन एक आरम्भ है।'

स्वतन्त्रता संग्राम साहित्य खण्ड-2

आशा और आनन्द

1

उस चैत्य चत्वर पर शीतल वायु का प्रवाह पहुंच कर समाप्त हो गया। फूलों की राशि झड़कर बिखर गई। परन्तु यह रजनीगन्धा सघन पल्लवों के आंचल में छिपी लज्जा को अवगुंठन में लिये सिकुड़ी-सी खड़ी क्यों सिसक-सिसक कर सुगन्धित दीर्घ निःश्वास छोड़ रही है ? सुनो-सुनो, यह तो एक आन्तरिक वेदना का सुखद संगीत-सा प्रतीत हो रहा है।

2

संध्या के सूने और धुंधले, कुछ उजले कुछ मैले अन्धकार में वह कौन पक्षी उधर से एक चीत्कार-सा करता हुआ जा रहा है ? और अर्द्ध निशा में जब रात दूध में नहाकर चांदनी में अपना आंचल फैला कर सोना चाहती है, तब कौन पक्षी सुरीली तान में लोरियां गाने लगता है ? और उसका शावक बीच-बीच में स्वर मिलाकर प्रसुप्त वातावरण को तरंगित करता रहता है ? किसके लिए ? अरे, किसके लिए ?

3

चन्द्रमा के क्षीण प्रकाश में कालिन्दी की धारा अपनी उज्ज्वल घनश्याम घटा दिखाती बहीचली जा रही है। कब से ? कहां से ? कहां को ? क्यों ? कब तक ? अनन्त आकाश में जो वायु बह रही है वह कब समाप्त होगी ? कब ? कब ?

और अनन्त आकाश पर फैले हुए ये मेघ खण्ड। क्षुद्र हृत्पिण्ड का यह अनवरत स्पन्दन बहुरंगी प्रकृति की यह रूप राशि ? इन सब का कब अन्त होगा ? कौन बोला—कभी नहीं। क्या कभी नहीं ? अरे अरे यह मेघ खण्ड, यह हृत्पिण्ड, यह रूप राशि ? क्या कभी नहीं। इन्हें ऐसा ही वेदर्षियों ने देखा। राम और कृष्ण ने देखा, बाल्मीकि और कालिदास ने देखा, आज मैं देख रहा हूं। मेरी पीढ़ियां देखती रहेंगी। यही आकाश में फैले हुए मेघ खण्ड, हृत्पिण्ड का अनरव स्पंदन और प्रकृति की बहुरंगी रूपराशि ! रूपराशि !! रूपराशि !!।

4

यह वसन्त आया है, सो क्या इसलिए। पुराने पत्तों का पतझड़ करने और नई कोंपलों को विकसित करने। अरे वाह, कैसी शीतल मन्द सुगन्ध समीर से दिशाएं व्याप्त हो हैं। बूंद-बूंद नवजीवन बिखरता जाता है।

धारा बह रही है।
पवन चल रही है।
मेघ फैल रहे हैं।
हृदय स्पन्दित है।

किन्तु वह? जिसके लिए अर्द्ध निशा में कालिन्दी के तीर पर रजनीगन्धा सुगन्धित दीर्घ निःश्वासें छोड़ रही है। और आन्तरिक वेदना का गीत गा रही है? वह?

5

यह कौन सो रहा है भाई? रक्तहीन पीले कपोल, स्थिर नेत्रों की पुतलियां, निढाल अंग। यह गोद में क्या छिपाया है? लाल, लाल, लाल। किन्तु एकदम शीतल। अरे उष्ण रक्त में बर्फ घोली है। तीन बार घंटा बज चुका। तीन बार होंठ फड़के, 'हे राम' कहा। हां-हां कहा, हमने सुना। पर जगे नहीं। देखो भाई, वह रजनीगन्धा सिसक-सिसक कर···कदाचित तुम्हारे ही लिए। इसका अभिसार पूरा करो भाई। रात दूध में नहा रही है। चांदनी में उसका आंचल फैला है। कालिन्दी कलकल करती बह रही है। वासन्ती शीतल मन्द सुगन्ध समीर, इस अभिसार की रात में सोना क्या? सुनते हो नागर!

6

दिन तो निकल आया। चौकीदार का कुत्ता भौंक रहा है। उस वृक्ष पर पंडुरव धीमे दर्द-भरे स्वर में कराह-सा रहा है। ठंड खूब है। वह गाय कहां से आकर थकी-सी उदास बैठी है। कालिन्दी की धार में सूरज सोने का थाल सजाए खड़ा है। ओ नागर, आओ उस दिन की भांति गाएं···'उठ जाग मुसाफिर भोर भई।' वह रजनीगन्धा!···

7

वह मां है, उसका विश्वासमय शिशु घुटनों के बल खड़ा होकर अपनी गुलाबी बाहें मां की गर्दन में डालकर खेल रहा है। मां की आंखों में और कुछ नहीं है। वह उसी छोटे से शिशु को सुखी रखने में मग्न है। आनन्द की धाराएं उसके अन्तःकरण में विश्राम पा रही हैं। क्योंकि उसी का शिशु उसी की गोद में···सुनते हो! ओ नागर!

8

उस दिन जहां तुम झुके थे। वहीं मैं भी झुका था, तभी मैंने देखा था कि मेरे मानव होने का गर्व ढह गया। किन्तु मन का दर्प और ममता मेरे साथ थी। इसी से मां की गोद में सुरक्षित शिशु की भांति मैं संदेहरहित न हो पाया। मैं विपत्तियों के सम्मुख खड़ा न रह सका, मेरे उठे हुए हाथ तुम्हारे कर-कमलों में थे। परन्तु अगणित जन के बोझ से भरी

नाव उस अन्धकार में बिना केवट न खेई जा सकी। वह भंवर में जा फंसी। तभी से मैं तुम्हारी तलाश में भटक रहा हूं।

9

अब क्या कहते हो? क्या मैं मानवीय गर्व बिलकुल ही त्याग दूं, और उसका दंड स्वीकार करूं! यह सच है कि गर्व दैत्यों का है। और यही मेरे और तुम्हारे बीच की दीवार है। परन्तु जहां मेरी यात्रा समाप्त हो, और मैं विश्राम की शैया पर पैर फैलाऊं, वहीं क्यों न इस गर्व का विसर्जन करूं?

10

यौवन की उषा में मैं सत्य की खोज में निकला था। तब सोचा कि मनुष्य को संदिग्ध रहना ही उचित है। संदेह के सम्मुख सत्य यदि अपरिवर्तित और स्थिर रहे, तो वह ठीक सत्य है। भीषण आंधी-तूफान और अग्निकांड में जो प्रतिमा न विकृत हो, न डिगे, वही ठोस वस्तु है। मैंने देखा वह समुद्र, जिसकी भीषण तरंगें तूफान के बाद चट्टानों से टकराती हैं, पर पहाड़ी नाले की भांति समुद्र मर्यादा से बाहर नहीं हो जाता। उसके किनारे भंग नहीं होते। वह न मैदानी झील की भांति स्थिर है, न मन्दवाहिनी नदियों की भांति अमर्यादित। तब तुमने हंस कर उस हिरण की ओर संकेत किया था, जो मस्त होकर घास चरता है। मस्ती में आकर सींगों से झाड़ियों से उलझता है। और बसन्त की बयार के साथ मैदानों में छलागें भरता है। उसे तब तक किसी भय का भान नहीं होता, जब तक कि उसी का रक्त उसके खुरों तक न पहुंच जाय।

11

मैं तुमसे यह पूछने आया हूं कि क्या सचमुच मनुष्य भी इसी भांति जियेगा। आशा और आनन्द से स्वप्न में। जिसमें जीवन को छोड़ और कुछ दीखता ही नहीं है। अब कहो तुम, मनुष्य का आदर्श क्या है। वह जो दीख पड़ता है? या जो निर्मित हो रहा है? दोनों का भेद क्या है।

12

किन्तु तुम सो रहे हो नागर, मां की गोद में गलबाहीं दिये। फूलों से लदे हुए, कालिन्दी के तीर पर, सुरभित वायु में स्वच्छन्द, निर्भय निर्द्वन्द। और यह रजनीगन्धा, सघन पल्लवों के आंचल में छिपी लज्जा को अवगुंठन में लिये खड़ी सिकुड़ी-सी सिसक-सिसक कर सुरभित दीर्घ निःश्वास छोड़ रही है।

वह आन्तरिक वेदना का सुखद गीत गुनगुना रही है।

कालिन्दी की धारा बह रही है।

वासन्ती पवन चल रहा है।

मेघ आकाश में फैल रहे हैं।

हृदय स्पन्दित है।
पर, तुम सो रहे हो नागर।
···सोते रहोगे।
अभिसार न करोगे।
रज···।

जगत जाग रहा था—

उसका सौभाग्य यौवन में भरपूर था। बेतोल सम्पदा भरी पड़ी थी। खा रहा था और बखेर रहा था। रात-दिन वहां समान थे। बिजली का तेज और वायु की गति लिये प्रकृति वेश्या वहां हाजिर थी, हाथ में रक्तमद्य, और नयनों में हलाहल कटाक्ष लिये। अन्धाधुन्ध ढाल रही थी। ज्ञान और विज्ञान उसके मुसाहिब थे और वे अपने आप पर इतरा रहे थे।

उस समय विश्व विभूतियां नग्न-नृत्य कर रही थीं, और नर लोक उस अखण्ड ताण्डव पर मुग्ध और लीन हो रहा था। मूर्ख न्याय ताल दे रहा था और निर्लज्ज नीति अट्टहास कर रही थी। रूढ़ि सभापति थी। पाखण्ड के हाथ प्रबन्ध था, और पाप स्वागत कर रहा था। असत्य के अन्ध दीप जल रहे थे, और सत्ता का महदालोक अप्रतिम चमक रहा था।

वहां! मानव उत्कर्ष का स्वच्छन्द उपहास हो रहा था, भीषणताएं अदम्य वेग में भरी खड़ी थी। प्रतिहिंसा जीभ लपलपा रही थी, और दासता दुम हिला रही थी।

हिंसा! हिंसा की ओर सबकी दृष्टि थी। उसका कुञ्चित भृकुटि-विलास, कुटिल भ्रूभंग, विकट दन्तपेषण, क्षण-क्षण में आशंका उत्पन्न कर रहा था।

विश्व-ध्वंसिनी ज्वालाएं संकेत की बाट में हाथ बांधे खड़ी थीं। सब तरफ लाल ही लाल दीखता था। एक अस्फुट किन्तु अशान्त ध्वनि सबसे ऊपर उठ रही थी। न उसमें स्वर था न ताल, उसे सुनकर वातावरण में रह-रहकर कम्पन हो रहा था। कुछ होने वाला था।

भारत सो रहा था।

भारत सो रहा था !!

थकावट से चूर और बुढ़ापे से लाचार। वह सब कुछ कर चुका था, सब-कुछ पा चुका था, उसकी कोई साधना न रह गई थी। इतिहास के हजारों-लाखों पृष्ठों पर उसके हाथ के हस्ताक्षर थे।

दूसरी जातियां उन्हें पढ़ और समझ रही थीं।

वीरता, विद्या, व्यापार और वैराग्य की वाटिकाओं में उसके हाथ का जो कुछ बचा था, उसमें से जागती जातियों को जो कुछ मिल जाता था पाकर निहाल हो जाती थी।

वे उस पर लोटपोट थी। वे उससे ब्याह करने का चाव रखती थीं। बूढ़े को कुछ खबर न थी।

वह सो रहा था। थकावट से चूर और बुढ़ापे से लाचार।

वह सब कुछ कर चुका था, सब कुछ पा चुका था, उसकी कोई साधना न रह गई थी।

घर में सम्पदा, सुख और धर्म का मेह बरस रहा था।

आंगन से स्वर्ग तक सरल सीढ़ियां लगी थीं।

अभ्युदय और निःश्रेयस एकत्र घर को रखा रहे थे।

देवता आ रहे थे, जा रहे थे!

रत्नद्वीप जल रहे थे!

स्वर्ण-स्तम्भों पर बारहों राशियां दिप रही थी।

जल-थल और आकाश उनके निःश्वासों की सुगन्ध से सुरभित हो रहे थे।

वे आईं और पास बैठ गईं। जो मिला सो खाया और वहीं सो गईं!

यह बूढ़े की नींद का चमत्कार था !!

यह बूढ़े की नींद का चमत्कार था !!!

प्रभात आया और गया।

जातियां जागीं, उठीं, और वहीं अपनी आयु शेष कर गईं।

मनुकुल के वंश-बीज ने मद्य पी।

उत्तराखण्ड के प्रशान्त वातावरण में काम, क्रोध, होड़, बदावदी, ईर्ष्या, कलह, स्वार्थ और पाखण्ड भर गया।

दुर्धर्ष क्षोभ हुआ।

हाहाकार मच गया।

मनुष्य घोड़ों की तरह दौड़े, भेड़ की तरह और गधे की तरह पिसे।

यज्ञ स्तूप जलाकर मिलों की चिमिनियां बना डाली गईं।
तपोवनों में कम्पनियां खुलीं।
समाधि के स्थलों पर आफिस बने।
ध्यान के समय काम का दौर-दौरा हुआ !!
गंगा और यमुना की कोमल देह कुल्हाड़ों से क्षत-विक्षत कर डाली गई।
यज्ञ-धेनुओं के मांस-खण्ड प्रिय खाद्य बने।
असूर्यंपश्या महिलाएं सार्वजनिक हुईं।
अबोध बालिकाओं ने वैधव्य का वेश पहना और निवाहा।
स्त्रैण नरवरों ने प्रथक ताम्र खण्ड पर और पीछे जीवन की श्वासों पर अभ्युदय और निःश्रेयस बेच डाला।
अन्नपूर्णा ने भीख मांगी।
इन्द्र ने दासता के टुकड़े खाए।
विश्व देवा और रुद्र, वसु, यम पदच्युत हुए।
विवर्ण आर्यत्व की मर्यादा गई।
उसी अन्धकार में नैतिक प्रलय का स्फोट हुआ, उसी में नीति, धर्म, समाज और तत्व छिन्न-भिन्न और लीन हुए !!!
अब उसकी नींद खुली—

अब उसकी नींद खुली

उसने देखा—
अंधेरा है।
—उसी अंधेरे में, अन्धकार के अभ्यासी कुछ अपरिचित जन्तु सर्वस्व खा और बखेर रहे हैं।
और—
वह कसकर बंधा पड़ा है, और उसके शरीर का क्रय-विक्रय हो रहा है।
पड़े ही पड़े, दृष्टि के इस छोर से दृष्टि के उस छोर तक उसने देखा, सब कुछ नष्ट हो चुका है।
अब वह उस घर का कुछ न था।
अब वह उसका घर ही न था।
उसने अपने पुराने अभ्यास की एक गर्जना की।
उसने उबाल खाकर एक झटका दिया—बल लगाया—क्रोध किया,
पर, पुराना पुरुषार्थ योग्य न था।

अन्त में उसने हाय की, और अश्रुपात किया।
निर्दय, हृदयहीन, अकृतज्ञ जन्तु ठठा कर हंस पड़े।
एक पापकामा व्यभिचारिणी ने उसे खरीद लिया !!!

एक पापकामा व्यभिचारिणी ने उसे खरीद लिया

उसने—

उसके महाकाव्य भवन को पुरातत्व विभाग का कौतुकागार बनाया। अधम प्राणी की तरह उस महान बूढ़े को पिंजरे में एक कौतुक-द्रव्य की तरह उस कौतुकगार के द्वार पर लटका दिया। जिन जातियों की माताएं उस पर मोहित थीं, वे विज्ञान और अर्थवाद की अन्धी बालिकाएं—गर्वित-ग्रीवा उन्नत किए—उसे और उसके घर को अपने मनोरंजन के लिए देखने आईं।

देव-दुर्लभ रजकण, अपदार्थ और सर्व सुलभ हुए।
रहस्यमयी ज्ञान-गुहा विदीर्ण हुई।
अगम्य पन्थ सर्वालोकित हुए।
वहां की अप्रतिम रत्न-राशि उन बालिकाओं की क्रीड़ाकन्दुक बनी।
युगों की परिश्रम-साध्य-सम्पदा जीर्ण-शीर्ण और छिन्न-भिन्न हो गई।
हठात् निर्धूमोदय हुआ।

हठात् निर्धूमोदय हुआ

कर्मयोग का पुण्यपर्व आया।

कैलाशी रौद्र तेज से ओतप्रोत हो, उत्तर के उत्तुंग हिमाचल-शृंग से उतर कर दक्षिण में आसीन हुए।

यम ने दक्षिण दिशा का त्याग किया।
भारत के भाग्य फिरे।
दक्षिण में भारत का ध्रुव दर्शन हुआ।
पुण्यवती पूना को तिलक मिला।
नव्य काल का महाभाग बाल वहां अवतीर्ण हुआ।
पृथ्वी ने उसे गरिमापूर्ण गाम्भीर्य दिया।

जल ने उसका हृदय निर्माण किया।
तेज स्वयं शुभदृष्टि में आसीन हुआ।
वायु ने सूक्ष्म गमन की शक्ति प्रदान की।
आकाश ने विविध विषय व्यापकता दी।
चण्डातप ने दुर्धर्ष तेज दिया।
वज्रपाणी ने दन्तावलि को वज्रद्युति दी।
यम ने अमरत्व का पट्टा दिया।
महालक्ष्मी उसके दुपट्टे की कोर पर बैठी।
शारदा कंठ का हार बनी।
बालारुण ने रश्मियों के प्रतिविम्ब से पगड़ी को लाल किया।

इस प्रकार वह देवजुष्ठ-सत्व तिलक बनकर भारत के मस्तक पर शोभायमान हुआ।

इस प्रकार वह देवजुष्ठ-सत्व तिलक बनकर भारत के मस्तक पर शोभायमान हुआ

एक बार वह भूखण्ड सुशोभित हुआ।

करोड़ों हृदयों से चिरंजीव होने की कामनाएं प्रस्फुटित हुईं। वह महाप्राण, महाघोष, महानरवर, अरुण अग्निशिखा और धवल यश के समान केसरी आरूढ़ हुआ।

महामाया ने आंचल डालकर बलैयां लीं। पद्मा शुभ्र शरद के श्वेत पद्म पर बैठकर रत्न-थाल लेकर पूजने आईं। सरस्वती ने वीणा लेकर ताल स्वर-मूर्च्छनायुक्त विरदावलि गाई। रणचण्डी ने भीषण अट्टहास किया, वह उल्लसित होकर किलकारी भरकर, नर खप्पर हाथ में लेकर उठी।

तब तक!

तब तक

स्वालम्बन पथ पर चलने का बल देश की टांगों में न था। आत्मतेज का दीप्तिमान अंगार राख में छिपा पड़ा था। श्वेतांग की बाह्य-साधुता देख उसकी कर्म-निष्ठा पर देश मोहित था। उसकी न्यायनिष्ठा की जगत में धाक थी।

पक्षपात और अन्याय वैयक्तिक समझकर सहे जाते थे। निद्य दीनता मन में बसी थी

और साहस का बीज वपन नहीं हुआ था।

मान, ज्ञान, अधिकार, आराम और अमन बड़े-बड़ों का ध्येय था।

आबरू का पानी उतर चुका था, उसका कुछ मोल न था। दया प्रार्थना और भिक्षा ही भद्रोचित हैं—यह भाव वातावरण में ओत-प्रोत था।

श्वेतांग की श्रेष्ठता पर किसी को आपत्ति न थी, श्वेत दर्प बखानने और स्पर्द्धा की वस्तु थी।

सूरत में!

सूरत में

भरतखंड के सरदारों का संघ जमा। सभी के हाथ में भिक्षापात्र थे।

किन्तु, वह केसरी पर समारूढ़ होकर शिवाजी के असिचिन्हों को उस नगर की सड़क से ढूंढ़ लाया था।

वह रक्त-शिखा जब उन्नत हुई, महासभा के महानरमुंड एक साथ ही मंच की ओर उठे। प्रथम मन्द, फिर मध्य, फिर तीव्र वेग से कराल वाग्धारा का ज्वालामय प्रवाह बह चला—

"आत्मबोधहीन पशु मनुष्यों से डरते हैं।"

"जो मनुष्य से डरे वह नरवीर्य नहीं।"

"जगदीश्वर से पापिष्ट भय खाते है!'

"निष्ठावान् और कर्मयोग पर सत्यवती जनों के भगवान् पितृतुल्य रक्षक हैं।"

'निर्भय हो।"

"देश, धर्म और आत्मविश्वासे प्राण देकर भी रक्षणीय हैं।"

"शक्ति, संगठन और आत्मविश्वास बाजार में नहीं बिकते।"

"अधिकार मांगने से नहीं मिलते।"

"स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, वह बल से भी और प्राण दान से भी लिया जायगा।"

श्रोताओं के कर्ण-गह्वरों को विदीर्ण करती हुई केसरी की दहाड़ ने वीरों के रक्त की एक-एक बूंद को उछाल दिया। किन्तु नर्म नामर्दों का रक्त जम गया। जनरव उठा और वह कोलाहल हो गया। गर्म-गर्म महासम्वाद सागर की तरंगों पर नाच उठा,

धनुर्भंग हुआ।

धनुर्भंग हुआ

क्रूरजन कर्जन, महामहिम आसन पर आसीन हुए। गर्व की ज्वलन्त मूर्ति, आत्म-पुजारी और कूटनीति के धुरीण धुरी।

प्रथम चोट वंग पर हुई। वंग भंग हुआ, और क्षण भर को वह मूर्च्छित हो गया।

पर क्षण भर बाद।

नेत्रों में तेज आ जूझा, आंसू सूखकर अग्निशिखा की भांति जल उठे। रणरंग की हिलोरें बंगाल में भर उठी। हठीले बंगाली, पौनिया नाग की तरह फुंफकारते हुए दुर्बल तन में अडिग आत्मबल धारण करके उठे।

असल सजीले शूर की भांति।

सभाओं के प्रचण्ड घोष से आकाश फटने लगा। स्वदेशी की आंधी ने भीमकाय लंकाशायर और मैन्चेस्टर को हिला दिया। कुल-बालाओं को भी रोष हुआ। निन्द्य विदेशी चूड़ियों को चूर-चूर कर पल्लव की मलिनता दूर-कर दी।

फुलरशाह।

फुलरशाह

वीर की खाल ओढ़कर—क्रूर हृदय से शासन का भार ले, न्याय दण्ड में गुप्ती छिपा चण्ड मूर्ति हो रंणागंण में आ उतरे।

प्रेस एक्ट की लाल आंख दिखा, सिडीशन से दांत कटकटा, पुलिस के तीव्र भाले लेकर मत्त बंगगज को उन्होंने घेर लिया। जेल के द्वार खुले, सम्भ्रान्त सुजन, उद्ग्रीव युवक, और आत्माभिमानी नरवर उसमें ठूंसे गये। धैर्यहीन किन्तु तेजस्वी वीर रोपरिपु को न रोक सके।

"शठे शाठ्यं, की नीति पर षड्यंत्र विधान रचे गये। पूर्व बंगाल में उत्पात हुए, पशुबल को अवसर मिला, महापुरुष पिसे।

किन्तु, महायुग प्रारम्भ हुआ।

किन्तु, महायुग प्रारम्भ हुआ

योरोप का श्वेत दर्प, सर्प की भांति फुंफकार करता हुआ रणभेरी की लहर में लहराने लगा।

जर्मन के मर्द कैसर ने रक्त-रंजित अक्षत भेजकर पृथ्वी की महाजातियों को रण निमंत्रण दिया।

एशिया महाभूखण्ड को बांट खाने में व्यस्त महाजातियां चौकन्नी हो उठीं।

विकराल अग्निमुखी तोपें गर्ज उठीं।

धरती धमकने लगी।

आकाश विचलित हुआ।

वायुमंडल कम्पायमान हुआ।

महा नरवरों का महा नरमेध प्रारम्भ हुआ।

छैले फ्रांसीसी पेरिस की रंग रेलियां छोड़कर भाग गये। अग्निप्रलय ने नर-नारियों को निःशंक भक्षण किया। बहादुर अंग्रेज लंदन की गलियों में दम रोककर बैठ गये। लन्दन विधवा की भांति रस रंग और जीवन से रहित मूर्च्छित नगरी-सी हो गई।

तब भारत ने।

तब भारत ने

प्राचीन ओज प्रकट किया,

वह बूढ़ा, भूखा, नंगा गुलाम निरस्त्र और अपाहिज था।

फिर भी उसने अपने रक्त की अंतिम बूंद दी।

जहां, संसार की महाजातियों के बच्चे अपने अधिकार और जीवन के लिए लड़ रहे थे, वहां भारत के बच्चे अंग्रेजी सत्ता की रक्षा के लिए जूझ रहे थे।

फ्रांस के शीतल रणक्षेत्र में—

वर्षा, तुषार और हिम-वर्षण के बीच

सिक्ख, पठान, जाट, राजपूत और गोरखा—

अपने यौवन रसी, पुष्पों से परिपूर्ण हृदय को संगीनों की नोंक पर धड़क धड़क कर विदीर्ण करा रहे थे।

करालो तोपें अग्नि वमन कर रही थीं।

भारत के लाल, ज्वलन्त जातियों से कन्धे से कन्धा भिड़ाये, अपने प्राण और धर्म मोह को, उस श्वेत दर्शन की वेदी पर, धैर्य, शौर्य और सहिष्णुता की चरम सीमा नापकर खड़ा रहे थे।

वे सत्तावधि जवान बच्चे सदा के लिये वहां सो रहे हैं।

वे सदा सोते रहेंगे।

अपने देश और जाति से दूर, अपनी पत्नी, पुत्र पिता और परिवार से दूर, अपने प्यारे गांव और बाल्यकाल की क्रीड़ा भूमि से दूर, विदेश में।

विदेशियों के लिए।
वे मरे।
अथवा अमर हुए!

अथवा अमर हुए

अर्थवाद, कौटिल्य और वीरता के नाम पर।

वीरता मर चुकी थी—वह पराजित हुई।

अर्थवाद और कौटिल्य का विजय हुआ।

वीर शिरोमणि कैसर ने शस्त्रपात किया।

और महा-जातियां आप शांति रक्षा का निबटारा करने बैठीं।

महाजातियों की शान्ति रक्षा और भाग्य-विधान का महा वीभत्स और भण्ड पाखंड प्रारम्भ हुआ।

नीति और रीति में जो भेद है, उसने प्रकट होकर जीवन की गुत्थियां खोली।

"जिसकी लाठी उसकी भैंस" की कहावत चरितार्थ हुई। सभी राज मुकुट ध्वंस हुए। परन्तु पृथ्वी पर फिर भी महा अनर्थों का मूलभूत अंग्रेजों का एक महा-साम्राज्य शेष रह *गया। जिस तक्षक के लिए महा सर्पमेध हुआ था, उसमें सर्पवंश का नाश होने पर भी* तक्षक तो रह ही गया।

भारत ने क्या पाया?

भारत ने क्या पाया

नमक हलाली पर रक्तदान करके।
निरुद्देश्य वीरत्व का प्रदर्शन करके।
सुदूर विदेश में लोथों पर लोथों की भरमार करके
केवल दो धक्के !!!
भारत क्रीतदास की भांति जीवित रहे।
उसे जीवित रहने को आहार और श्वास लेने को वायु मिलती रहेगी।
चालीस करोड़ नर नारियों से परिपूर्ण भारत क्या इसीलिए जिए!
जो योद्धा है।

जो व्यापार पुंगव है।
जो काव्य शिरोमणि है।
जो विज्ञान का आचार्य है।
जो महा जातियों का पितामह है!
जो सर्वस्व खोकर भी प्रतापी जातियों के बराबर कन्धा भिड़ा कर अन्त तक खड़ा रहा। वह—
जीवित रहने भर को आहार और श्वास लेने भर को वायु पाकर जीवित रहे।
वह अंग्रेजों का विजित देश है। वह बलपूर्वक सदैव अंग्रेजों के अधीन रखा जायगा। प्रत्येक मूल्य पर !!!
महा शक्तिशाली अंग्रेज !

महाशक्तिशाली अंगरेज

न्याय और सभ्यता का वितरण करने के अभिमानी, अपने [illegible] का नख-शिख श्रृंगार किए, जगत के महान् प्रांगण में कटिबद्ध हैं, और कह रहे हैं—जो कोई हमारे दर्प के सम्मुख तन कर खड़ा होगा, जो कोई [illegible], जो कोई स्वच्छन्द वायु में श्वास लेगा—उसे हम अपने लोहमय [illegible]।

प्राचीन महाराज्यों की राजधानी।

प्राचीन महाराज्यों की राजधानी

दिल्ली अक्षय यौवन पुंश्चली, हिन्दुत्व के [illegible] में [illegible] कर यहीं [illegible] घूर-घूर कर देख रही थी।

ज्वलन्त सूर्य के प्रचण्ड उत्ताप में, जिन दिन तुर्क और ईरान के बर्बर नर पशुओं के साथ अपने लाखों बच्चों की तड़पती हुई लाशों पर अट्टहास करते हुए—उनके रक्त [illegible] पीकर महातांडव नृत्य किया था और अपने [illegible] गौरव और अतीत [illegible] लात मारकर अभागिनी मन्दोदरी की भाँति दुर्दम्य वासना से उन्मत्त हो [illegible] अंकशायिनी हुई थी।

और, उसी उन्माद में शील और संकोच का सर्वनाश [illegible] दिया था। इस प्रकार काल और घटनाओं के प्रबल थपेड़ों ने [illegible]

महिषी को ठोस पाषाण प्रतिमा बना दिया।

पृथ्वीतल पर कौन यति था जो उसे अपनी वज्रदृष्टि से भस्म करे।

उसी—

प्राचीन महाराज्यों की राजधानी में—

प्राचीन महाराज्यों की राजधानी में

नरवरों का रक्त अभिषेक हुआ।

मानव शक्ति का उत्कर्ष भीषण विध्वंस के रूप में अवतरित हुआ। राज-पथ पर, जहां वस्तु विक्रेताओं के निश्चिन्त प्रश्वास, अबोध बालिकाओं का साग्रह आल्हाद, महिलाओं का उत्सुक हृदय निरन्तर आनन्द वर्षा कर रहा था। हठात कराली मशीनगन ने रक्त वमन किया।

पृथ्वी और आकाश कांपने लगे।

चांदनी चौक पर मृत्यु विभीषिका फैली। सत्तावन का अन्तिम क्षण फिर वहां आया। प्रक्रुद्ध रुद्र महाताण्डव नृत्य थिरक-थिरक कर नाचने लगे। डमरू का भैरवरव वातावरण में व्याप्त हुआ। दानवी ज्वाला गड़गड़ाती, महासंहार करने लगी। अबोध शिशुओं के शरीर छिन्न-भिन्न होकर रुई के पहलों की तरह बिखर गये !!!

युवकों के विदीर्ण हृदय से रक्त के फव्वारे बह चले। मस्ती की सिसकारी के स्थान पर उस आनन्दालोक में हाय भर गई !!!

संन्यासी—

संन्यासी

आधी शताब्दी तक प्रकाश और अन्धकार के रहस्यों पर मनन करता हुआ।

जो विश्रान्ति की शैय्या पर घुटने टेक चुका था।

थकित पाद, और शिथिल बाहु जिसकी झुकी पड़ती थी।

इस घोर क्रन्दन को सुनकर चौंका।

जीवन की अन्तिम घड़ियों में—हृदय के रस के अन्तिम बिन्दु-कण उसके नेत्र-कोण पर उमड़ आए।

वृद्ध संन्यासी—

अपने भगवे वस्त्रों को संभालकर—अपने महान् पथ से तत्काल लौटा।

वहां !

वहां

जहां—लौकिक कल्याण की जगह लौकिक प्रलय हो रहा था।
जहां—शक्तिधर शिव रौद्र-नृत्य कर रहे थे।
उसने क्षण भर खड़े होकर देखा।
सब अलौकिक था।
रक्त सौंदर्य पर बूढ़ा मोहित हो गया।
यौवन की उठती तरंगों में जिन्होंने मदिरा की परछाई में रक्त-सौंदर्य का अध्ययन किया है, वे बूढ़े संन्यासी के मोह को समझें।
आगे बढ़कर
उसने अपना हृदय खोलकर दिखा दिया।
उसने, बूढ़े संन्यासी ने यौवन के रसिया की तरह कहा—'हे विश्वध्वंसिनी ! इस हृदय में निवास करो।'
यौवन और आवेग की मतवाली ठठा कर हंसी।
शुष्क और जीर्ण मांस खण्ड उसे पसन्द न था। असंख्य यौवन और शैशव उसके सम्मुख थे।
प्रत्येक में ताजा रक्त था। अदम्य यौवन था।
प्रत्येक को उसने चखा और तृप्त होकर भोगा।
असूर्यपश्या महिलाएं।

असूर्यपश्या महिलाएं

और अबोध मुग्धाएं रोने लगीं।
सरल-तरल स्नेह की सजीव मूर्तियां; सौन्दर्य और सुकुमारता की वास्तविक प्रतिलिपियां, पुरुष-स्तम्भों की आशा लतिकाएं, आशा और विश्वास की देवियां।
अपने चिर अभ्यस्त सहज हास्य को खोकर—
दारुण चीत्कार करने लगीं।
वातावरण भयंकर निनाद से गुंजायमान हुआ।
इन आपदा-ग्रसिताओं को देख-देख कर रणचण्डी सौतिया डाह से अट्टहास कर रही थी।
क्षण भर बाद—

क्षण भर बाद

पंजाब के सिंहद्वार पर,
अमृतसर के अमोघ प्रभाव को विदीर्ण करता हुआ,
गोविन्दसिंह के जाग्रत पहरे का उपहास करता हुआ,
प्रलय गर्जन उठा।
डायर !

डायर !

श्वेत दर्प की अक्षुण्ण पाषाण-प्रतिमा अचल आ खड़ी हुई।
अबोध नेत्रों ने देखा,
आतंक की देवी जलियांवाला बाग को रो रही है।
कुछ समझ में नहीं आया।
क्षण भर बाद ही ज्वाला का मेह बरसा !!
अतर्क्य भोगवाद की तरह विध्वंस आ उपस्थित हुआ।
मैदान में चरते पशु, बच्चों को बहलाते हुए पिता, बातचीत करते हुए मनुष्य, सब ढेर हुए !!!
वे पंजाबी सिक्ख—
जिन्होंने सुदूर फ्रांस के मैदान में संगीनों की नोंक पर अंग्रेजी साम्राज्य की लाज बचाई थी—इस प्रकार अपने ही घर के द्वार पर पागल कुत्ते की तरह मार डाले गये।
फिर !

फिर !

मानव सभ्यता के शैशव की जो मधुरिमामयी छवि उर्वरा पंचनद पर छा रही थी, उसे विदीर्ण करती हुई—सहस्त्र उल्कापात की तरह वज्र-निनाद करती हुई—शान्ति और आशीर्वचनों से उत्कण्ठित, उद्ग्रीव लक्षावधि निरीह नर-नारियों पर आकाश से व्योमयानों से संहारक अग्नि-वर्षा हुई।

हिंसक और निर्लज्ज सभ्यता ने और भी उत्साहित होकर असहाय अबलाओं की लाज लूटकर सांस ली।

ये, सहस्त्र-सहस्र अबलाएं, बेआबरूई की कीचड़ में सना हुआ अपना आंचल लिये, रक्त के आंसू भरे, शून्याकाश में, असमर्थ देवताओं को देख रही थी और उनके प्राणों से प्यारे पति, कलेजे के टूक पुत्र लहू-लुहान धूल में निर्जीव पड़े थे।

मसीह !

मसीह !

जो समस्त जगत के प्रेम और क्षमा के देवता तथा सहनशीलता, धैर्य और आत्म-बलिदान के उत्कट पथ-प्रदर्शक हैं, जिनके नाम पर लक्ष-लक्ष नरबलि शान्ति और उत्साह से आहुत की गई हैं, उनकी आत्मा स्वर्ग से देख रही थी और रो रही थी। अपनी स्वाभाविक करुणा और हृदय की महत्ता से कह रही थी—

हे महान् प्रभु ! इन अभागों को क्षमा कर। हाय ! ये मेरा लोहू पी रहे हैं और मांस खा रहे हैं।

श्वेत दर्प पर उसका कुछ प्रभाव न था !!!

ज्वालामुखी।

ज्वालामुखी

देखने में अपदार्थ, किन्तु अगाध तक उसका गर्भ विस्तार था, ऊपर से प्रशान्त और सुहावना दीखता था, किन्तु भीतर तरलाग्नि की असह्य और दुर्धर्ष ज्वालाओं का समुद्र उमड़ रहा था। विश्व के दुखियों की वेदनामय हाय की निःश्वास—उसे लुहार की मरी हुई खाल की धोंकनी की तरह भड़का रही थी। सत्ता का भीषण उत्ताप उसे असह्य न था।

उसका गगनस्पर्शी, प्रशान्त, क्षुद्रमुख एकटक अनन्त आकाश से कुछ कह रहा था।

आकाश में पूर्ण अवकाश था।

अपरिमित ज्वालाग्राही द्रव-सत्व संग्रह हो रहे थे।

जगत के पाप, दुःख, वेदना, पीड़न और परितापों की ज्वाला नदियों का, भूगर्भ मार्ग से चुपचाप उस अग्नि-समुद्र में संगम हो रहा था।

अकस्मात्।

अकस्मात्

स्फोट हुआ।

प्रथम एक अकल्पित सूक्ष्म धूम-रेखा उठी और सातों आकाश तक क्षण भर में पहुंच गई।

व्यवसाय-व्यस्त जनों ने देखा और धन्धे में लगे।

अच्छी तरह देखने और समझने का किसी को भी अवसर न था।

वह क्षीण धूम-रेखा धीरे-धीरे पुष्ट होकर एक भीमकाय स्तम्भ हो गई।

जिसका एक सिरा भूलोक में, और दुसरा स्वर्लोक में था, इसके बाद ही—

आरक्त पीत ज्वाला की लहरें दीख पड़ी।

प्रतिक्षण वे वृद्धिगति होती गई।

दूर से देखने में मन-मोहक थी।

सर्प सौन्दर्य की तरह वे अतिशय मनमोहक थीं।

मूढ़ श्वेतदर्प ने देखा

और हंसकर कहा—

'क्या मनोरम कुदरत का खेल है।'

उसने सत्ताओं के मूल अवयवों को एकत्र कर अपना अवशिष्ट कौशल समाप्त किया।

दुर्धर्ष क्षोभ हुआ।

दुर्धर्ष क्षोभ हुआ

सहस्र उल्कापात की तरह, नेत्रों की ज्योति को निष्प्रभ करता हुआ, ज्वालामयी धारा का एक वेगवान प्रवाह—एक बार अतर्क्य गति से आकाश तक उन्नत होकर जगत पर बरस गया। जगत की जातियां स्तब्ध खड़ी होकर देखने लगी।

लोहू और लोहे का घमासान पागल सा हो गया।

श्वेत दर्प की आकाश तक चढ़ी हुई मूंछें अस्त-व्यस्त हो गई !!

वह तरलाग्नि।

वह तरलाग्नि

निःशब्द प्रवाहित होकर अप्रतिहत गति से भारत के गम्भीर गर्भ में व्याप्त हो गई।
करोड़ों मनुष्यों की ज्वलन्त आकांक्षाएं भस्म हुईं।

करोड़ों मनुष्यों के आत्म-बलिदान के मनोरथ पूर्ण हुए।

करोड़ों मनुष्यों ने अपने आपको संभाला, उस अलौकिक अग्नि-समुद्र के उज्ज्वल आलोक में बहुतों ने बहुत कुछ देखा।

पराई विद्या के बैल।

पराई विद्या के बैल

और पराई बुद्धि के दलाल, जो अर्द्ध शताब्दी तक अपने को प्रकांड पंडित समझते रहे थे,

अपने आप पर लज्जित हुए।

उन्होंने तरलाग्नि में स्नान कर प्रायश्चित किया।

गौरवशालिनी महिलाएं—जो नैतिक पतन के पथ पर दूर तक यात्रा करके मात्र प्रदर्शन की वस्तु हो रही थीं—सिंहवाहिनी की भांति अग्रसर हुईं।

यह ज्योतिर्मय अग्नि-समुद्र में स्नान का चमत्कार था।

कोकिला।

कोकिला

जो अविकसित वसन्त के प्रस्फुटित रसाल-कुसुमों के सौरभ से मत्त होकर सदा कुहू-कुहू करती थी।

इस अग्नि-रूप पर चकोरी की तरह लोटपोट हो गई।

सागर के हृदय को विदीर्ण करके सीलोन और अफ्रीका का सुदूर आकाश पंचम तान पर कम्पायमान हुआ।

वह पौरुषमय स्त्रीत्व भारत में दर्शनीय था।

सहस्रों नेत्र कौतूहल से देख रहे थे।

तेज।

तेज

तेज के अधिष्ठान दो नेत्रों के समान ।
ज्वलन्त भावना और ज्वलन्त रक्त-बिन्दु के अश्रु भर कर—
संतप्त भारत को देखते ही जल उठे ।
कानून की क्रीड़ा-स्थली—अदालत के गर्भ में संतप्त शलाका की भांति प्रविष्ट हो वहां के गुरुडम को छिन्न-भिन्न कर दिया ।
ग्रेट ब्रिटेन के भेड़ियों की यह मांद कम्पायमान हुई ।
वे बन्द द्वार ।

वे बन्द द्वार

ज्योंही उनके लिए खुले, त्योंही भारत की यौवन और बलिदान से परिपूर्ण आत्माएं उसमें दौड़ पड़ीं । उन मनहूस दीवारों के भीतर—जहां खूनी, कलंकी और पतित दण्ड भोग रहे थे, भारत के महा नरमुण्डों की क्रीड़ास्थली निर्मित हुई । राष्ट्रीय गानों से वह अपावन वायु पूत हुई । महान् चरणों की रज से वह कलुषित भूमि गौरवान्वित हुई । स्वतन्त्रता और स्वाभिमान के पुजारियों ने ज्योंही वहां बसेरा लिया—वहां के भाग्य जाग गये ।
वहां भारत के लाखों नर-नारी, आनन्द और उल्लास बखेरने लगे ।
आनन्दी बन्दी ।

आनन्दी बन्दी

श्राद्ध में आमन्त्रित ब्राह्मण की भांति वह अदालत में दण्ड पाने को जा बैठा ।
दण्ड की विभीषिका से सर्वथा अज्ञान बालक की भांति उसने कौतूहल से कहा—"हां, मैं अपराधी हूं ! कहो, क्या दण्ड दोगे ?"
सरकारी वकील ने पूरी वाग्मिता दिखाकर उसे अपराधी सिद्ध किया और अधिक से अधिक दण्ड देने का अनुरोध किया । विचारक ने उसे 6 वर्ष का कारावास प्रदान किया ।
उस अनुग्रह को प्राप्त कर उसने मुस्कराकर सरकारी वकील से कहा—"अब तो खुश हुए ?"

उस'कुण्ठित कानूनी व्यक्ति ने उसी दिन अपना व्यवसाय त्यागा।

विचारक के हृदय में वह भावना जाग्रत हुई, जो मातृवध करते समय परशुराम के मन में पैदा हुई थी।

जो अंग्रेज।

जो अंग्रेज

तुच्छ वंश और क्षुद्र प्रदेश मे जन्म लेकर केवल अपनी मुठमर्दी के बल पर समस्त पृथ्वी के पंचमांश को बेधड़क भोग रहे थे, जिन्होंने चार सौ वर्षों से समस्त एशिया और योरोप की नकेल हाथ में ले रखी थी, जिन्होंने योरोप के भारी से भारी वीर से लोहा, लेकर विजय पाई थी, जिनकी शैतानी-आकांक्षाओं के मारे पृथ्वी भर की जातियां सुख की नींद नहीं सो सकी थी, जिन्होंने जर्मनी की चालीस वर्षों की रणसज्जा और कैसर की महाजातियों को थर्रा देने वाली सत्ता को परास्त कर अपनी मूछों को आसमान तक ऊंचा कर लिया था, जिनके सिर्फ बारह सौ मनुष्य चालीस करोड़ नर-नारियों से भरे भूखण्ड को मदारी के बन्दर की भांति उंगली के इशारे से नचा रहे थे, जो सारी पृथ्वी के राजमुकुटों को विध्वंस होते देख जरा भी विचलित नही हुए, और अचल भाव से अपना अकेला साम्राज्यवाद लिये खड़े थे,

उसने उन्हें 'शैतान' कह कर पुकारा।

उसने उन्हे 'शैतान' कहकर पुकारा

वह क्षीणकाय पुरुष सत्व, जिसकी सूखी हड्डियों पर केवल चर्म-लेप था, और कमर में केवल मोटा खद्दर का एक टुकड़ा, हाथ में शस्त्र के स्थान पर चार अंगुल की पैन्सिल थी।

सात्विक क्रोध के आवेश में उसने अंग्रेजों को जो गाली दी थी, उसे उसने उसी पैंसिल के टुकड़े से कलम बन्द कर दिया, उसमें फलाफल की उसे चिन्ता न थी, और जब सारा भारत उनकी भृकुटीविलास को ताक रहा था, उसने खड़े होकर कहा—

मैं इस शैतानी सल्तनत का नाश करूंगा।

मैं इस शैतानी सल्तनत का नाश करूंगा

तीस करोड़ प्रजा ने सन्देह से उसे देखा। मुंह लगे भिखारियों ने कहा—'पागल है।'

किसी बुद्धिमान ने कहा—'मूर्ख है।'

अंग्रेजों ने कहा—'वाह! अच्छी दिल्लगी है, कम कूवत और गुस्सा ज्यादा।' वे ठठाकर हंस पड़े।

सैकड़ों-हजारों लाखों-करोड़ों अविश्वासपूर्ण हताश दृष्टियों की हतौज चमक उस पर पड़ी।

उसने दुर्जेय आत्मतेज से अभिभूत होकर,
उच्च स्वर से एक पुकार लगाई।

उच्च स्वर से एक पुकार लगाई

उस पुकार में एक जादू था, उसे सुनते ही हजारों मनुष्यों की खुदी न जाने कहां चली गई।

पहले एक-एक, फिर दो-दो, और चार-चार, फिर दस-दस और सौ-सौ, नरवर कन्धे से कन्धा भिड़ाकर उसके साथ खड़े हो गये।

उनमें हिन्दू थे, मुसलमान थे, और थे ईसाई। जवान भी थे, बूढ़े भी थे, बालक भी थे, स्त्रियां भी उनके साथ थीं। देश की माताएं थी, बहुएं थी—बेटियां भी थी, कुछ राजाओं को लज्जित करने वाले धनकुबेर थे, कुछ संसार के प्रचण्ड धाराशास्त्रियों के मुखिया थे, कुछ पृथ्वी के श्रेष्ठ राजनीतिक पण्डित थे, कुछ तेज के पुतले थे—जिनकी हुंकार के साथ सात करोड़ तलवारें नंगी हो सकती थी। कुछ अपनी आयु का तृतीयांश व्यतीत किये हुए धवल केशधारी महज्जन थे।

सबका एक स्वर था।

सबका एक स्वर था

सबका एक मत था, एक वेश था, एक भाव थे। वे अबोध शिशु की भांति उसकी आज्ञा के अधीन थे। उसने कहा—

"अकम्पित रहो,
"अभय रहो,

"मरने का अवसर कभी न खोओ,
"कभी किसी को मत मारो,
"आत्मनिर्भर रहो,
"अहिंसा और सत्य, तुम्हारा बल है,
"तकली और चर्खा तुम्हारा शस्त्र है",

सब सहमत हुए। इसके बाद उसने धनकुबेरों की ओर दृष्टि की। देखते-ही-देखते करोड़ रुपयों का मेंह बरस गया।

अहमदाबाद में।

अहमदाबाद में

राष्ट्र की महासभा जुड़ी थी, उस जीती-जागती धवलपुरी में देखने वालों ने जो देखा वह ग्यारहवीं शताब्दी के बाद इन सात सौ वर्षों में भारत की आंखों को देखना नहीं नसीब हुआ था। भिन्न-भिन्न प्रान्तों के भिन्न-भिन्न भाषाभाषी—भिन्न-भिन्न जाति और धर्म के लोग एक ही भांति का वस्त्र पहिने हुए थे, एक ही भाषा बोल रहे थे, और एक ही ढंग से रह रहे थे। सबके इरादे एक थे, सबका एक मन्सूबा और एक ध्येय था। उन मन्सूबों में, ध्येय में सबका सर्वस्व बलिदान-सा हो रहा था।

क्या यह अपूर्व न था? मराठे जब उत्तर-भारत को लूटने गये थे, तब यदि उनके मन में ये भाव होते? मीरजाफर जब क्लाइव का गधा बना था, तब यदि हिन्दू-मुसलमानों में ये भाव होते, तो क्या भारत के इतिहास में आज हर साल करोड़ों आदमियों को भूखों मरने के हवाले देखने को मिलते? क्या भारत के मर्द और औरतें फिजी में कुली बनकर अपनी पत खोते?

गंगा की तरंग के समान श्वेताम्बरधारी स्त्री-पुरुषों के आवागमन प्रवाह को देखकर वह नंगा आदमी, लालटेन के एक खम्भे की आड़ में खड़ा हंस रहा था, सामने हिमालय के समान शुभ्र पण्डाल था।

उसका वह शुभ्र हास्य उस शुभ्र धवलपुरी पर शोभा बखेर रहा था।

उसका वह शुभ्र हास्य उस शुभ्र धवलपुरी पर शोभा बखेर रहा था

वह एक भयानक आत्म-युद्ध की घोषणा कर चुका था, वह कठिनाइयों के कांटों से भरे मार्ग में बहुत आगे बढ़ गया था, वह देश के बड़े-बड़े नर-रत्नों को—लाखों नर-

नारियों के साथ, जोखिमपूर्ण कार्य में प्रवृत्त होने की भारी जिम्मेदारी सिर पर ले चुका था। फिर भी वह हंसता था, चिन्ता और क्षोभ की छाया उसे छू भी न गई थी।

नटवर।

नटवर

अपनी कला का अप्रतिम विकास, शूलपाणि की अमरपुरी की रंगभूमि में अवतरित था, हिन्दुत्व का यौवन उसका हस्तामलक था। वह शुभ्रवेशी; शुभ्र स्मश्रुधारी मुनि वशिष्ठ की भांति अपने गौरव में दैदीप्यमान था। वह चतुराई से दो अश्वों पर एक ही काल में आसीन होने की करामात रखता था, उसकी रजत वाणी में सम्मोहिनी शक्ति थी। उसने शूलपाणि की अमरपुरी में माया-महल निर्माण किया और उसमें हिन्दुत्व के यौवन को प्रतिस्थापित कर दिया, वह पुजारी की भांति चिन्तित हुआ।

जब तरलाग्नि का तेजस्वी प्रवाह उस मायापुरी की नींव में टक्कर देने लगा तो उसने विकल बालक की भांति अश्रु-वर्षण किया, विकम्पित माया-महल हिलकर रह गया।

मोती।

मोती

जिसकी आबरू की आब में मृतप्राय: राष्ट्र के जीवन की झलक थी। दरिद्र राष्ट्र का वह अनमोल रत्न था, जिसे छूकर कितने ही पत्थर रत्न बन गये। उसकी उज्ज्वल आभा से साम्राज्य के नूतन हर्म्य दिप उठे। चेम्बर की उस बहुमूल्य कण्ठावली में उस एक मोती के सामने सारे मणि कांच दीख पड़ते थे। उसकी आरपार जाने वाली आंखें कूटनीति के डोरे को सदा छिन्न-भिन्न करती रहीं।

पृथ्वी पर किस रत्नगर्भा ने वैसा और मोती उत्पन्न किया? किस देश को वैसा सौभाग्य-मणि प्राप्त हुआ? वह दरिद्र मां का महान् मोती, बिना ही पूरी कीमत कूते गुदड़ियों में पड़ा था, और अन्त में पिसकर भारत के रजकण के प्रसाद से अक्सीर रसायन बन गया।

दास।

दास

धौंसे की धमक के साथ मारू की ताल पर तड़प कर मोर्चे पर जूझ मरने के लिए अनगिनत यौवनों को माया बल से प्रकट कर देने वाला जादूगर, बाघ की भांति बांकी अदा से आक्रमण के लिए सदैव समुद्यत दलपति, बंग देश के ओज का अवतार, समर्थ विद्रोही, जो आकाश मे इन्द्र-धनुष की भांति उठकर विलीन हो गया !! युवक वर्ग का प्रौढ़ अवतार, नवीन राष्ट्र की छाया प्रतिलिपि।

विजय की वैजयन्ती को तरलाग्नि में पखार दुर्धर्ष द्वार मे घुस गया। जहां प्रखर मस्तिष्क भारत भाग्य की लोरियां गा-गा कर सुला रहे थे। उसकी ललकार से साम्राज्य की दीवारें हिल गईं, सोया हुआ भारत का भाग्य जाग उठा।

वह शेर।

वह शेर

जो तरेसठ बरस तक साम्राज्य के इस्पाती पिंजरे में बन्द रहा, जिसने अपनी दहाड़ों से पिंजरे की जड़ें हिला दीं, जो पृथ्वी पर अपनी धाक का प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखता था, जिसे गुलाम देश में पैदा होने, गुलाम देश में सांस लेने, और गुलाम दोस्तों पर विश्वास करने का पूरा पुरस्कार जीवन में मिला। दिल्ली के गोल चिड़ियाघर के पक्षी जिसे भय और औत्सुक्य से देखते थे, समुद्र की लहरों ने जिसका चिरकाल तक मार्ग रोक रखा था, जो पृथ्वी की महाजातियों की दृष्टि में विक्रमशाली प्रमाणित था—तरलाग्नि को स्पर्श करते ही धवलयश में सराबोर हो गया।

मसीहा।

मसीहा

वह दिल्ली की एक तंग गली मे रहता था, उसे ढूढ़नें वाले उसे एक छोटी-सी अंधेरी कोठरी में एक सुखद कालीन पर दो मसनदों के सहारे अलस निढाल पड़ा पाकर मुस्कुरा देते थे। वह मृदुभाषी, मृदुल विचारधारा का स्रोत, माध्यम वृत्ति का नरवर, उत्तर से दक्षिण तक लक्षावधि मुसलमानों का आदर और श्रद्धा का पात्र था।

वह उस कुल में जन्मा था जिसमें शहरी कोमल भावना, देहलवी लताफ़त और मानव हितैषणा बर्पाती थी, वह लाखों मनुष्यों के लिए जीवनदाता था, अन्त में उसने तरलाग्नि स्पर्श से स्वयं भी अमर जीवन पाया।

गुरुदेव।

गुरुदेव

कैलाश के समान धवल और महान्, विश्वसंगीत की वीणा की मूर्छना के समान प्राण संजीवक और युग की विभूति के समान अमोघ उनका व्यक्तित्व था, पृथ्वी का नरलोक उनके सम्मुख अवनत मस्तक किये खड़ा था, महादेवी शारदा उन्हें अभिषिक्त कर चुकी थी।

उस दिन उन्हें, उस आनन्दी बन्दी की बुभुक्षित शैय्या के किनारे, कारागार के उस ऐतिहासिक आम्रवृक्ष के नीचे नतमस्तक खड़े देख, भारत के नेत्र विमूढ़ हो गये ! शुभ्रता की वह गंगा जो भारती के इस वरद् पुत्र की आत्मा से प्रवाहित हो रही थी—जब अनायास ही उस तरलाग्नि में मग्न हो गई—तो मानो कवित्व कल्पना जगत से सत्य में ओतप्रोत हो गया।

सरदार।

सरदार

विन्ध्याचल की कूटशिखा की भांति सीधा और साफ, स्थिर और नैसर्गिक। जिस प्रकार पर्वत से टक्कर खाकर वायु में निर्घोष उदय होता है, उसी भांति उसका घोष था। ज्वाला समुद्र का निकटतर बन्धु और ज्वालामुखी का प्रतिस्पर्द्धी, सर्दारी जिसका जन्मसिद्ध अधिकार था। जो बन्धन में उन्मुक्त, वेदना मे विनोदी, रुदन में सस्मित, पार दर्शी सत्व था। प्रवाहित ज्वाला की एक अमूर्त मूर्ति—जो भीतर बाहर सदैव एकरस रहा।

करांची के उन्मुक्त मंच पर, जिसने देश के क्षुब्ध युवकों को संयम का पाठ पढ़ाया, जिसने धैर्य-विवेक-साहस उदारता की लक्षावधि मनुष्यों को शिक्षा-दीक्षा दी।

राजर्षि।

राजर्षि

सावधान और चमत्कृत, नीरव किन्तु सजेत, जिसका समस्त ओज प्रच्छिन्न नेत्रों में, और अचल प्रतिज्ञा ओष्ठ सम्पुट में सदा विराजमान रहती थी, जो भाग्यशाली भारत के दक्षिण पार्श्व में—उस पूज्य पितृलोक के वारिस की भांति आसीन था, जिसके

सम्मान में हिन्दू कभी दक्षिण में पैर करके नहीं सोते हैं। वह जब बोलने खड़ा होता था तो ऐसा प्रतीत होता था—मानो राजर्षि भारत अपना पुण्य दक्षिण हाथ उठाकर आशीर्वाद वर्षा कर रहा हो।

जब असह्य अग्निस्नान के ताप से उत्पन्न सहस्रों जन असंयत होकर अंधेरे में अन्धे और निरीह होकर टकराने लगे थे, तब एक यही दाक्षिणात्य अचल खड़ा था।

मुसल्लिमान।

मुसल्लिमान

साम्प्रदायिक ढकोसलों से उस पार जो कर्तव्य और नीति पर अपने को मुसल्लिम ईमान रख सका, जिसने महावेदी के उत्तुंग शिखर से हमारे सामूहिक जीवन की सबसे बड़ी समस्या को हल किया, जो यथार्थ नाम अजातशत्रु है, जिसने सात करोड़ प्राणियों में सबसे अधिक अपने को समझा और समझाया। तरलाग्नि को छूकर उसने जीवन को बलि-वेदी पर बखेर दिया और भिन्नता का माध्यम बन भविष्य के लिए अमर हो गया।

यौवन।

यौवन

सुन्दर, सुगठित, सुसम्पन्न राष्ट्र के यौवन का पूर्ण प्रतिबिम्ब, जिसकी कर्मठ चेष्टाओं से और उल्लासपूर्ण हुंकारों से सुदूर समुद्र के उस पार के सागर-कूल विचलित होते रहे थे, जो राष्ट्र के जीवन की रीढ़ की हड्डी थी, जो भविष्य का भाग्य-निर्माता माना गया, जिसके साहस, तेज और उद्ग्रीव वाग्धारा और योजना से ब्रिटिश साम्राज्य डगमग करने लगा, जो अग्नि-सागर का दत्तक-पुत्र प्रकल्पित किया गया, शीर्ष स्थान पर खड़ा था।

मुमुक्षु।

मुमुक्षु

श्रीमन्ताई के आभामय मुकुट के स्थान पर जिसने धवल गान्धी टोपी पहनकर स्वेच्छा से त्याग और वेदना का मार्ग ग्रहण किया और हठपूर्वक तरलाग्नि के स्नान का अभ्यास

किया। जिसने अपने देश और उसकी प्रतिष्ठा पर अपने को अर्पण कर दिया, भक्ति और विश्वास जिसके जीवन की शोभा रही, जो सदैव ही श्रेय की तलाश में व्यग्र रहता रहा और भारत की विभूति जिसके प्रति अधिकाधिक निकटस्थ रही, अग्नि-स्नान कर उसने मन-वचन की एकान्त पवित्रता प्राप्त की और ऐहिलौकिक बन्धनों के प्रति मुमुक्षु बन बैठा।

अजातशत्रु।

अजातशत्रु

भगवान् बुद्धदेव की स्थली पर जिसकी सेवाएं मूर्तिमान होकर विचरण करती हैं, जिसके जीवन में सफलताएं आज्ञा पालन करती हैं। जिसने अधिक से अधिक त्याग, साहस और परिश्रम किया है। मोहमयी-बम्बई के समुद्र तट पर भटकती हुई देश की राष्ट्रीय नौका को जिसने अपने दृढ़ हाथों से खेया। एक दिन वह बुद्धि का विक्रेता था और उसके बाद वह बुद्धि का दाता प्रसिद्ध हो गया। उसने अस्त-व्यस्त भारत की राष्ट्रीयता को सुव्यवस्थित बनाने में अपने को अस्त-व्यस्त कर डाला। जिसके हाथों राष्ट्रीय रंगमंच सौंपकर आनन्दी-बन्दी ने हरिजन जाप का अनुष्ठान प्रारम्भ किया।

जवाहर।

जवाहर

त्याग और तप का देवता, वेदना की कंटकमयी शैय्या पर स्वेच्छा से सोने का अभ्यासी, पृथ्वी की महाजातियों के भविष्य, जीवन-संग्राम को अधिकाधिक समझने वाला, आत्माहुति का महायाज्ञिक, तरुण भारत का बादशाह था। करोड़ों आत्माएं उसके पद-चिह्नों पर चलने को उत्सुक थीं।

पंजाब की मर्मस्थली में श्वेत अश्व पर आरूढ़ होकर उसने स्वाधीन गर्जना की, राष्ट्र के उस अधिपति का उसके पिता ने अभिवादन किया और अपने पिता के पद को धन्य किया, जिसकी राष्ट्रीय ऋण-सम्बन्धी घोषणा से महाजातियों के स्वर्णमान पर राहु का ग्रास लगा। जो साम्राज्यवाद के लिए प्राची में सर्वाधिक भय की वस्तु रहा।

स्फुलिंग।

स्फुलिंग

अथवा चिनगारियां, जो उठते हुए भारत के सौभाग्य पर हर्ष मनाने को अग्नि कौतुक की भांति, उसी अग्निस्नान में पुनीत होकर एक ज्वाला - चमत्कार भारत के भाग्य निर्माताओं की क्रीड़ा-स्थली में दिखाकर चमत्कृत कर गयीं। चिनगारियों की लाल वर्षा करके अन्त में रस्सी के फंदे पर, क्षण-भर ऊपर नाच कर अंगारे और फिर राख के ढेर बन गईं, जिसे निर्द्वन्द्व वायु ने उड़ा-उड़ा कर देश की आत्माओं में 'इन्कलाब जिन्दाबाद' की प्रतिध्वनि ध्वनित कर दी। शून्य आसनों पर जिनके लिए अनुपस्थित न्याय वितरण किया गया और जिनकी उष्णता और धुआं सुदूर पूर्व तक फैल गया, आतंकवाद की वे अमूर्त्त मूर्तियां अन्ततः तेज और त्याग की स्मृतियां बखेर गईं।

तदनन्तर।

तदनन्तर

जब ज्वलन्त जातियां भौतिक-अग्नि में ध्वस्त होने के लिये महानरमेध की भूमिकाएं रच रही थीं, भारत की यह सभी जाग्रत विभूतियां मानव-जीवन को निर्भय रहने की रीतियों की खोज मे व्याकुल थीं।

योरोप का श्वेत दर्प एशिया की नवोत्थित हुंकार से चौकन्ना हो रहा था। एशिया की अलस और आत्मविस्मृत जातियां अब केवल वैयक्तिक और आर्थिक तुष्टि पर निर्भर रहना नहीं चाहती थीं। वे समझ गई थीं कि जीवन का मूल्य रोटियां नही हैं। रोटियों ही के लिए लाखों पुरुषों को महाजातियां नहीं कटाया करतीं।

कौरव-पांडव युद्ध, ग्रीक और ईरानियों के संघर्ष, रोमन महाराज्य की पृथ्वी-विजय, योरोप के जंगलियों का दक्षिण में आना, अरबों का जंगलों में भटकना, जेरूसलम की दीवारों पर क्रूजे उरस का धावा बोलना, मुहम्मद का नंगी तलवार लेकर मैदान में आना, प्रोटेस्टेन्ट और कैथलिकों के सदियों के झगड़े, फ्रांस के प्रजातन्त्र के सम्मुख समस्त योरोप का एक साथ अड़ जाना, प्राचीन इटली और ग्रीस का पुनर्जीवित होकर घूमना, फ्रांस और जर्मनी का साधारण बात पर लड़ पड़ना, रूस और तुर्क का धर्म के बहाने भिड़ जाना, और ग्रेट ब्रिटेन का भारत में आकर चालीस करोड़ मनुष्यों की छातियों पर लाल लोहे की वर्षा करके अधर्म का लोहू बहाना, केवल एक रोटी के टुकड़े के लिए नहीं है।

राम, कृष्ण, अलेग्जेण्डर, सीजर, नैपोलियन, पियोरस, हनिवाल, सीथियो, लियोनिडस, पोरस, रोटी के टुकड़े के लिए धरती को कम्पायमान करके लाखों-करोड़ों प्राणियों के लोहू से धरती को लाल नहीं कर गये। उनके इस महान कार्यों में एक गंभीर

प्रश्न था, राज्य-सत्ता, नीति, धर्म और धर्म-नीति, स्वातन्त्र्य, अधिकार, कर्तव्य और जनपद का निर्भय सामूहिक जीवन।

खुला षड्यन्त्र।

खुला षड्यन्त्र

एशिया के लाखों नर-नारी योरोप की सत्ता से उन्मुक्त होने को खुला षड्यन्त्र करने को कटिबद्ध हो उठे और सैकड़ों वर्षों से गुलामी की जंजीरों में जकड़ी हुई जातियां स्वाधीनता का जीवन प्राप्त करने को बेचैन हो उठी। वे अपने बड़े हित की रक्षा के लिए छोटे हितों को त्यागने को इच्छुक थी।

भारत में।

भारत में

अंधकार में डूबी हुई जाति के भीतर-ही-भीतर एक नवीन जाति उत्पन्न हो रही थी। प्राचीन हिंदू जाति में जो धर्म-ग्लानि के कारण क्षुद्रता उत्पन्न हो गई थी—उसे अनेक महान्-आत्माओं ने अपनी शक्ति और प्रतिभा से नष्ट कर दिया था। उनके अमोघ प्रभाव से देश में नवीन जातीयता के बीज उग आये थे। जिनमें साहसी, तेजस्वी, उच्चाशय, उदार, स्वार्थ-त्यागी, परोपकाररत देश-हितैषी वीर फल रहे थे। वृद्धों और युवकों की विचारधारा और कार्यक्रम में अनैक्य तथा विरोध होने लगा था। अन्धकार का युग-कलियुग व्यतीत सा हो रहा था। देश का तरुण मण्डल अग्निस्फुलिंग के समान पुराने झोपड़ों को भस्म करके राष्ट्र का नवीन महल निर्माण कर रहा था। इस नई संतति ने जिस उद्योग में हाथ डाला, उसे बिना पूर्ण किये वह शांत होता नहीं दीखता था। इस नवीनता के भीतर जो प्राचीनता थी, वही निकट भविष्य के स्वाधीन भारत को संसार के राष्ट्रों में प्रमुख स्थान देने वाली थी।

जो भारत।

जो भारत

अठारवी शताब्दी में विद्या का, लक्ष्मी का, रणशक्ति का केन्द्र था, जिस पर प्रबल योद्धा और वर्धनशील कट्टर मुसलमान भी 700 वर्षों में क्षण के लिये निर्विघ्न शासन न कर सके, उसे ग्रेट ब्रिटेन ने 50 वर्षों में अनायास ही मुट्ठी-भर चरित्र और नीतिहीन व्यक्तियों के द्वारा अधिकृत कर लिया और 100 वर्षों तक एक छत्रछाया के जादू से मोहित कर मोह-निद्रा से सुला रखा। जब यह अद्भुत घटना घटी थी, तब देश दुर्बल, अज्ञानी और जंगली जातियों का स्थान न था। प्रत्युत् राजपूत, मराठा, सिख, पठान, मुगल आदि योद्धा-जातियों का निवास था। उस समय नाना फड़नवीस जैसे विलक्षण राजनीति-पटु पण्डित, माधोजी सिन्धिया जैसे रणपण्डित, सेनापति हैदरअली और रण-जीतसिंह जैसे तेजस्वी और प्रतिभाशाली राज्य-निर्माता देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जन्म ले चुके थे और यह अधिकारपूर्वक कहा जा सकता है कि 18वीं शताब्दी के भारत-वासी संसार की किसी भी जाति की अपेक्षा कम शौर्यशाली और तेजस्वी एवम् बुद्धिमान न थे।

फिर किसलिये।

फिर किसलिए

ग्रेट ब्रिटेन ने भारत अधिकृत कर लिया? क्या एकता के अभाव से? महाभारत के काल में भी एकता का अभाव था, चन्द्रगुप्त और अशोक के समय भी एकता न थी, भारत में कभी एकता न थी, न मुगल-राज्य-काल में, न 18वीं शताब्दी में।

तब क्या अंग्रेजों के गुणों के कारण? क्या क्लाइव और हैस्टिग्ज जैसे नर-पशुओं के कारण? नहीं-नहीं, भारत की पराजय होने का कारण था।

जातीयता का अभाव।

जातीयता का अभाव

जो उस समय भारत में था। अंग्रेजों में जातीयता कम नहीं थी। उस जातीयता की भावना ने ग्रेट ब्रिटेन को भारत पर विजय दिलाया। यह देशप्रेम से भिन्न वस्तु [illegible]
वीं शताब्दी के अंग्रेज ने स्वदेशहित के लिए भारत में पदार्पण नहीं किया [illegible]

स्वदेश हित के लिए भारत को विजय ही किया। वे व्यक्तिगत स्वार्थों से प्रेरित होकर आये थे, उसी भावना से उन्होंने भारत को विजय भी किया। परन्तु उसके मूल में जातीयता के पूर्ण भाव विद्यमान थे। जो कोई अपने देश के सात्विक अहं भाव पर अपने स्वार्थ को न्यौछावर करता है, वह देश-प्रेमी है, और जो अहंभाव को अक्षुण्ण रखकर उसी के द्वारा देश के अहं को वर्धित करता है, वह जातीयता के भाव से ओतप्रोत है। इसी जातीयता के भाव से प्रेरित होकर अंग्रेज अपने स्वार्थ-साधना के साथ मानगौरव और साहस के साथ युद्ध में निर्भय प्राण त्यागते थे, भारत में उसके स्थान पर तामसिक-अज्ञान और राजसिक-भावना बहुत अधिक हो गई थी, इसी से उसमें अनुवृत्ति, शक्तिहीनता, विषाद और हीनता उत्पन्न हो गई थी।

स्वाधीनता और संगठन।

स्वाधीनता और संगठन

ये दो प्रबल गुण अंग्रेजों में चिरकाल से थे, उन्ही के बल पर वे संसार विजयी हो सके।

भारतवासी इन गुणों के न होने पर भी शौर्य, बल और तेज में अतुलनीय थे, इसी से सहस्रों वर्षों के आक्रमण सहकर भी वे जीवित रह सके। उस समय उत्तर भारत में आत्मकलह और युद्ध-विग्रह ने तथा बंगाल की बौद्धिक-संस्कृति के ह्रास और तमोगुण की वृद्धि ने जर्जर कर दिया था, तब बंगाल में द्रव्य और तुच्छ स्वार्थ पर मरने वालों की कमी न थी।

आध्यात्म शक्ति ने दक्षिण की रक्षा की। शंकर, रामानुज, चैतन्य, तुकाराम, नानक रामदास, दयानन्द वहां जन्म लेते गये। पर देश की नीयत शुद्ध न थी, शंकर के अद्वैत ने तमोगुण भावों का समर्थन किया, चैतन्य के प्रेम ने अकर्मण्यता का रूप ग्रहण किया, रामदास की शिक्षा प्राप्त करने पर भी महाराष्ट्र स्वार्थ-साधना और आत्म-कलह में जा गिरा।

अठारहवीं शताब्दी में

अठारहवीं शताब्दी में

हमारा धर्म और समाज विधानकर्ताओं के साथ बद्ध था। बाह्याडम्बर और क्रियाएं धर्म कह कर पुकारी जाती थीं। परन्तु इस बार जब देश सामूहिक रूप से जागा तो

उसमें जातीयता की वायु बह रही थी। उसने प्रथम बार जो जातीय-गान हृदयंगम किया वह था—

वन्देमातरम्

वन्देमातरम्

ने देश में एक जीवन दिया, जातीयता की प्रतिष्ठा का अंकुर हृदय में उगा कर प्रथम सात करोड़ बंगाली और अन्त में चालीस करोड़ भारतीयों का यह जातीय गीत बना। जातीय धर्म का सदा घात करने वाली पराधीनता की भित्ती को भारत ने समझा। रोमन राज्य के अधीन हो तथा रोमन सभ्यता को स्वीकार कर समस्त यूरोप ने अति आनन्द के दिन व्यतीत किये थे, परन्तु अन्त में मनुष्यत्व का उसी में विनाश हुआ था।

नव्य भारत

नव्य भारत

नव्य भारत पृथ्वी भर के राजनैतिक पण्डितों के लिये अध्ययन करने का महत्त्वपूर्ण विषय हो उठा है। संसार की तीनों महाशक्तियां—यूरोप, अमेरिका और रूस भारत की ओर टकटकी लगा देख रही हैं। यूरोप ने एशिया को हर तरह कुचल कर उसका रक्त पान किया था। अमेरिका विकसित यूरोप की मिश्रित जातियों का एक महत्त्वपूर्ण विकास था, जिसने अध्यवसाय, साहस और संगठन के जोर पर अपनी वह हैसियत पैदा की थी कि वह चाहे जब प्रतापी यूरोप को लात मारकर नीचे गिरा सकता था। किन्तु एशिया, जो प्राचीन महाराज्यों और महाशक्तियों का एक विस्तृत भूखण्ड था, इस समय तक अपने अतीत इतिहास के कारण पृथ्वी भर के विद्वानों के लिये कौतूहल और चमत्कार का मध्य बिन्दु तथा रहस्यपूर्ण बना हुआ था। परन्तु अब जाग्रत होकर अपनी पुनर्रचना कर रहा है तथा शीघ्र उद्ग्रीव योरुप और गर्वित अमेरिका के बराबर खड़ा होने की स्पर्धा करना चाहता है। रूस उसे अपना अमोघ अस्त्र बनाने की घात में है। भविष्य का भारत ही उसके अभ्युदय का केन्द्र होगा। भारत के प्रांगण में ही निकट भविष्य में एशिया और योरुप के भाग्यों का फैसला होने वाला है।

ध्रुवध्येय

ध्रुवध्येय

मनुष्य और परमेश्वर के प्रति हम अभय हों, नीति और धर्म हमारे ऐहिलौकिक जीवन का प्राण हों, समानता और सहयोग हमारा व्यवसाय हो, प्रेम हमारा मूलमन्त्र और त्याग हमारा आदर्श हो। हम अपने आप पर सन्तुष्ट एवं सुखी हों। हमारे मस्तिष्क गुलामी से मुक्त रहें और हम सेवा और जन कल्याण के चिन्तन में जीवन व्यय करें। हे प्रभु, ऐसी ही हमें शक्ति, बुद्धि और भावना दीजिए।

स्वतन्त्रता संग्राम साहित्य खण्ड-3

(1)

1915 की फरवरी की शीत भरी प्रभात बेला। बम्बई से एक ट्रेन दिल्ली जंक्शन पर आकर रुकी और उसमें से एक असाधारण सा आदमी उतरकर शीघ्रता से बाहर आया। यह आदमी साहबी ठाठ में था, अंग्रेजी सूट पहिने और हैट लगाए था। उसके स्वागत के लिए सी० एफ० एन्ड्रूज और सेंट स्टेफेंस कालेज के प्रिंसिपल प्रो० रुद्रा तथा अन्य अनेक साथी आए थे। यह असाधारण व्यक्ति 'गांधी' था, जो दक्षिण अफ्रीका में प्रसिद्धि प्राप्त कर अब भारत आया था। यह उसकी प्रथम दिल्ली यात्रा थी।

प्रो० रुद्रा वेशभूषा में पूरे अंग्रेजी साहेब थे। एन्ड्रूज तो लम्बे-तगड़े अंग्रेज थे ही। उन्हें भारत में अंग्रेजों ने यह देखने के लिए भेजा था कि यहां के राजनैतिक वातावरण पर नजर रखें, जब उन्हें समाचार मिला कि एन्ड्रूज ने गांधीजी के चरण छूकर नमस्कार किया है तब उन्हें निराशा हुई। एन्ड्रूज इन दिनों शांतिनिकेतन में थे, और गांधीजी का स्वागत करने कलकत्ता से आए थे। एन्ड्रूज गांधीजी के भक्त और प्रशंसक दक्षिण अफ्रीका में बन चुके थे।

स्टेशन से बाहर आकर तीनों एक फोर्ड गाड़ी में बैठकर चांदनी चौक की ओर चले। गाड़ी चलकर काश्मीरी गेट पर स्थित लाल पत्थरों से बने सेंट स्टेफेन्स कालिज के फाटक में घुसी। यहां गांधीजी प्रो० रुद्रा के अतिथि रूम में ठहरे। इस कालेज का शिलान्यास 1 अप्रैल, 1890 में सर चार्ल्स ए० एलियट के० सी० एस० ने किया था। प्रिंसिपल आवास का मुख्य द्वार काश्मीरी गेट मार्ग पर था, जो लाल किले तक जाती थी। गांधीजी ग्राउन्ड फ्लोर में ठहरे, जहां प्रो० रुद्रा सपरिवार रहते थे। गांधीजी के आने पर परिवार ऊपर की मंजिल में चला गया, जिससे गांधीजी को कोई असुविधा न हो। इसी भवन के सामने बहुत बड़ा गिरिजाघर था, जहां प्रति रविवार को प्रातःकाल दिल्ली के सभी अंग्रेज आकर प्रार्थना करते थे। गांधीजी भी आकर उसमें सम्मिलित होते और उनके साथ गाते थे—'Abide with Me ! and Lead kindly light.'

अपने कमरे में गांधीजी चटाई पर सोते और बैठते थे। उनके सामने चरखा रखा रहता जिसे वे कातते थे। देश के बड़े नेता गांधीजी से मिलने आते तो जूता उतारकर चटाई पर बैठकर बातें करते थे। कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठकें कभी-कभी देर रात तक चलती रहती थी। यहीं गांधीजी ने खिलाफत आन्दोलन और असहयोग का निर्णय लिया था। यहीं से उन्होंने वायसराय को पहला महत्वपूर्ण नोट लिखा था कि मैं जलियांवाला बाग के नृशंस कांड को अमानवीय कृत्य कहता हूं। यहीं पर तिलक, मोतीलाल नेहरू

मौलाना मोहम्मद अली, हकीम अजमल खां, मौलाना आजाद और जवाहरलाल नेहरू ने गांधीजी से प्रथम बार भेंट की। मौलाना आजाद ने कहा है—यहां गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन की पूरी रूपरेखा हमें समझाई थी, जो हमें पसन्द आई और हमने स्वीकृति दी।

कुछ कैम्ब्रिज के प्रतिनिधियों ने प्रो० रुद्रा से गांधीजी को वहां ठहराने पर आपत्ति की तो उन्होंने कहा—'मैंने ठीक किया है।'

गांधीजी ने जब यह देखा कि अनेक राज कर्मचारी प्रो० रुद्रा को आकर उनके ठहराने के कारण नाराज होते हैं, तो उन्होंने स्वयं रुद्रा से कहा—'मेरा अब यहां ठहरना ठीक नहीं है, क्योंकि मैं शीघ्र ही असहयोग आन्दोलन छेड़ना चाहता हूं।'

वे दरियागंज में डा० अंसारी की कोठी में चले गए। यही से 1 अगस्त, 1920 को असहयोग आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ। डा० अंसारी की कोठी 12000 वर्ग गज क्षेत्र में बहुत विस्तार में थी। लॉन था, बरामदे थे। इसमें 96 कमरे थे। इस मकान को शाहजहां ने अपने प्यारे बेटे दारा शिकोह के लिए बनाया था, पर दारा इसमें बहुत दिनों तक नहीं रह सका, क्योंकि औरंगजेब ने उसकी मुगल सम्राट बनने की इच्छा को कुचल डाला था। डा० अन्सारी ने यह कोठी 1907 में रायबहादुर सुलतानसिंह से पचास हजार रुपयों में अपना नर्सिंग होम खोलने और आवास के लिए खरीदी थी।

जब भी गांधीजी दिल्ली आते, डा० अन्सारी की कोठी में ठहरते थे। उनके लिए 6 कमरों का एक कक्ष अलग कर दिया गया था, जहां देश के नेता आकर राजनीतिक निर्णय करते रहते थे। 1924 तक गांधीजी बराबर यहीं ठहरते थे, परन्तु बाद में अन्यत्र भी ठहरने लगे।

अपने पिता के मरने और असहाय अवस्था में होने पर 1946 में डा० अन्सारी की गोद ली हुई पुत्री जोहरा ने इस कोठी को 5 लाख रुपयों में रामकिशनजी को बेच डाला।

जब गांधीजी को वायसराय मिलने बुलाते तो गांधीजी कार में न जाकर लाठी लेकर पैदल वायसराय हाऊस चलकर जाते थे, जो 5 मील दूर था।

वर्किंग कमेटी की मीटिंग कभी-कभी बहुत रात में समाप्त होती थी और गांधीजी का सूत पूरा नहीं कतता था, तो वे मीटिंग समाप्त होने पर उसे पूरा करते थे। वे 220 गज सूत नित्य कातते थे।

गांधी-इर्विन समझौता के दौरान, जो 4 मार्च को सहमत हुआ था, गांधीजी रात को वायसराय हाऊस गए और रात 2 बजे (2 A. M.) लौटे। आकर उन्होंने नेहरू, पटेल, आजाद आदि नेताओं को सोते से जगाया, जो गांधीजी की प्रतीक्षा करते-करते सो गए थे, और वायसराय से हुई बातचीत विस्तार से बताई तथा समझौते की स्वीकृति की सूचना दी। यह कांग्रेस की विजय थी।

अगले दिन क्वीन्स गार्डन (कम्पनी बाग) में एक विशाल जनसभा यह सब बताने के लिए हुई। इस सभा में 1 लाख से अधिक भीड़ थी, जबकि उस समय दिल्ली की कुल आबादी 4 लाख थी।

डॉ० अन्सारी यद्यपि प्रसिद्ध चिकित्सक थे और उनकी फीस बहुत बड़ी होती थी

जिसे अमीर और राजा लोग ही दे सकते थे, परन्तु यदि कोई निर्धन रोगी भी उनके पास जाता तो वे उसकी चिकित्सा नि.शुल्क करते थे। औषध ही नहीं, खाना, कपड़ा, फल, दूध आदि भी। उनका रसोईघर हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए सदैव खुला रहता था। दोनों के पृथक-पृथक खाद्य बनते थे।

1920 के बाद डा० अन्सारी के कार्यकलापों से लार्ड विलिंगडन नाराज हो गए और उन्होंने रजवाड़ों को अन्सारी की सेवाएं न लेने का हुक्म प्रचारित किया, जिससे राजा लोगों ने उनसे चिकित्सा कराना बन्द कर दिया। कुछ समय तक राजाओं ने इसका पालन किया, परन्तु *अन्य कोई डाक्टर, इंग्लैंड-रिटर्नड डाक्टर अन्सारी के समान योग्य* नहीं था, वे फिर उन्हें चिकित्सा के लिए अपने महलों में बुलाने लगे। उन दिनों भारत में डॉ० अन्सारी सर्वश्रेष्ठ सर्जन माने जाते थे।

इतना होने पर भी जब डा० अन्सारी मरे, तब वे धनहीन थे। उन्होंने अपने लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखा, सब बांट दिया या गरीबों को दिया।

(2)

लार्ड ब्रॉकवे हाऊस आफ लार्ड्स के लेबर पार्टी सदस्य, 1927 में मद्रास में आयोजित एक कान्फ्रेंस में सम्मिलित होने के लिए भारत आए। वहां उन्हें एक सड़क दुर्घटना का शिकार होकर एक अस्पताल में तीन महीने तक रहना पड़ा। एक रात उन्हें बहुत कष्ट हुआ। बहुत तेज बुखार भी रहा। अगले दिन गांधीजी उन्हें देखने आए। यह उनका मौन दिवस था—उन्होंने कागज पर लिखकर पूछा—'रात भर कष्ट रहा है ?'

चमत्कार हुआ। गांधीजी ने उनके हाथ को अपने हाथों में लिया और कुछ ही मिनटों में ज्वर उतर गया। कष्ट और बेचैनी भी मिट गई और वे गहरी नींद सो गए। उनकी दृष्टि में गांधीजी में दैवी शक्ति थी।

(3)

सन् 1919 की बात है। *अमृतसर में आल इण्डिया कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन था।* पं० मोतीलाल नेहरू उसके अध्यक्ष चुने गए थे। इस समय वे लाहौर में थे। उनके लिए लाहौर से अमृतसर तक जाने के लिए एक स्पेशल ट्रेन तैयार की गई थी। श्री जे० जे० सिंह प्रख्यात लेखक और विचारक, जो लाहौर में ही रहते थे, अमृतसर जाने के लिए तैयार हुए। वे भी उसी स्पेशल ट्रेन में जाने के लिए स्टेशन पहुंचे। पं० मोतीलाल जी को फर्स्ट क्लास डिब्बे में बैठाया गया, जे०जे० सिंह भी उसी में जा बैठे। जब गाड़ी अमृतसर स्टेशन पर पहुंची, तब वहां प्लेटफार्म पर हजारों लोगों की भीड़ उनका स्वागत करने के लिए एकत्रित थी। भीड़ को देखकर मोतीलाल जी घबड़ा गए, उन्होंने 6 फुट लम्बे जे० जे० सिंह को लम्बा-तगड़ा जवान पट्ठा देखकर उनसे कहा—मि० सिंह, आप मेरे

साथ ही रहिए।

जब कांग्रेस वालिंटियर मोतीलाल जी को घेरा बनाकर वेटिंग रूम में ले जाने लगे तब धक्का-मुक्की में घेरा टूट गया और व्यवस्था बिगड़ गई। शीघ्र ही जे० जे० सिंह मोतीलाल जी को अपने घेरे में करके भीड़ को हटाते-धकेलते उन्हें सुरक्षित वेटिंग रूम में ले गए।

वहां वहुत कांग्रेसी वैठे हुए थे, और जलूस निकालने की तैयारी थी। बहस यह होने लगी कि क्या मोतीलाल जी जलूस को छोड़कर स्वर्ण मन्दिर में जायें और माथा टेकें ?

यह सुनकर जे० जे० सिंह ने कहा—हां, पं० नेहरूजी को स्वर्ण मन्दिर जाकर माथा टेकना चाहिए जिससे पंजाव के सिख प्रसन्न हों और अपने प्रति आदर भावना समझें। यदि वे ऐसा न करेंगे तो सिख नाराज हो जायेंगे।

वेटिंग रूम में वैठे एक छोटे कद के आदमी ने इस बात का विरोध किया और कहा—'यह बिल्कुल असम्भव है। यदि जुलूस रोक दिया जायेगा तो भीड़ उत्तेजित हो जायेगी और झगड़ा होगा।'

कुछ सिखों ने भी कहा—स्वर्ण मन्दिर जाना चाहिए।

इस पर उसी छोटे आदमी ने कहा—'जुलूस अमृतसर के घंटाघर के पास से गुजरेगा, जो स्वर्ण मन्दिर के बिल्कुल पड़ौस में है। मोतीलाल की सवारी जव वहां पहुंचे तब वे गाड़ी में खड़े होकर स्वर्ण मन्दिर की ओर मुंह करके अपना शीश झुका देंगे। इस प्रकार स्वर्ण मन्दिर की अरदास हो जायेगी।'

यह सुन सब चुप हो गए। जे० जे० सिंह ने भी कहा—हां, यह ठीक है।

यह 'छोटा आदमी' गांधीजी थे।

(4)

जव गांधीजी इंग्लैंड किंग जार्ज से मिलने गए, तव वहां चर्चिल के एक मित्र ने उनसे पूछा—'क्या आपके पास उनके पास जाने योग्य वस्त्र हैं ?'

'किंग के पास मेरे और अपने दोनों के लिए पर्याप्त वस्त्र हैं।' गांधीजी ने हंसकर कहा।

फिर किसी ने पूछा—'आप बहुत ही कम वस्त्र पहनते हैं ?'

'इसमें क्या बुराई है। आप प्लस (अधिक) चार व्यक्तियों के पहनने योग्य वस्त्र पहने हुए हैं—मैं माइनस (कम) चार व्यक्तियों के योग्य पहनता हूं।'

(5)

एक अंग्रेज महिला ने कहा—'मैं गांधीजी की भांति सन्त बनना चाहूंगी—यदि मैं भी

दिन में कई बार गांधीजी जैसा भोजन करूं।'

'उसे अपना भोजन बदलने की आवश्यकता नहीं।' गांधीजी ने सुझाया।

(6)

गांधीजी 100 वर्ष जीने का संकल्प रखते थे। आगा खां पैलेस की कैद से जब वे छूटे तब मदनमोहन मालवीय जी ने उन्हें तार भेजा—'मातृभूमि की सेवा करने के लिए आपके सौ वर्ष जीवन की कामना करता हूं।'

'आपने मेरे जीवन के 25 वर्ष काट डाले। मैं 125 वर्ष जीने की कामना करता हूं।' गांधीजी ने उत्तर दिया।

(7)

जिन्ना अहंकारवश कहा करते थे—

मैं ही गांधी को सार्वजनिक जीवन में लाया। मैंने ही उन्हें होमरूल लीग का प्रेसीडेंट बनाया। मैं ही उन्हें अमृतसर ले गया। मेरे ही प्रस्ताव पर उन्हें अमृतसर कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया।

(8)

श्री गिरिजाशंकर बाजपेयी ने अमेरिका में एक पुस्तक 'गांधी क्या चाहते हैं?' छपाई जिसमें गांधीजी पर आक्षेप किए गए थे। स्वराज्य प्राप्ति के बाद एक दिन जब चमनलाल गांधीजी के साथ थे, तब सरदार पटेल आए और चमनलाल से बोले—'चमनलाल तुमने बाजपेयी को उजागर करते हुए एक पुस्तक लिखी थी—और अब वही बाजपेयी हमारे विदेश विभाग में सेक्रेटरी जनरल हैं।'

'जबकि आप भारत के डिप्टी प्राइम मिनिस्टर हैं।' चमनलाल ने कटाक्ष किया।

'नहीं, मैं उसका जिम्मेदार नहीं हूं, आपके नेता पं० नेहरू ने उन्हें नियुक्त किया है।'

इस पर गांधीजी बोले—'इसमें बुरा मानने की क्या बात है? जब अंग्रेज सरकार ने उन्हें पैसा दिया तो उन्होंने उनका राग अलाप दिया। अब जब तुम्हारी सरकार उन्हें पैसा देती है तो वे तुम्हारा गीत गा देंगे।'

जब बाजपेयी से पुस्तक लिखने के बारे में पूछा गया तो वे बोले—'मैंने केवल कुछ बिलों पर हस्ताक्षर किए थे। कुछ ही बिल थे वे।'

(9)

गांधीजी के आह्वान पर सरकारी स्कूलों का बहिष्कार कर राष्ट्रीय स्कूल खोले गए थे, इसी दिशा में प्रभावित होकर डा० जाकिर हुसैन, जो उन दिनों विद्यार्थी थे [illegible] के सुझाव पर अलीगढ़ के M. A. O. कालिज (जो अब अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी है) के समानान्तर उच्च शिक्षा संस्था ओखला (दिल्ली) के करीब खोली गई जिसका नाम जामिया मिलिया रखा गया। इसे कार्य रूप दिया मौलाना मोहम्मद हकीम अजमल खां और गांधीजी ने। इसकी स्थापना 29 अक्तूबर, 1920 को अलीगढ़ की एक मस्जिद में हुई, और तम्बुओं को बनाकर राष्ट्रीय शिक्षा कार्य आरम्भ हुआ।

17 मार्च 1925 को यह संस्था अलीगढ़ से हटाकर दिल्ली में करोलबाग किराए के लिए गए मकान में लाई गई। बाद में इसकी अपनी इमारतें जामियानगर में बन गईं और इसे स्थायी रूप से वहां 1936 में लाया गया।

इसमें पढ़ाई के साथ-साथ कुछ काम करना तथा रोजगार की बुनियादी शिक्षा दी जाती है। यहां मुसलमान युवकों में भारत के प्रति राष्ट्रभावना का बीज बोला जाता है। हिन्दू विद्यार्थी भी यहां शिक्षा पाते हैं, तथा परस्पर में भ्रातृ-भावना पनपती है। बहुत दिनों तक इसे सरकारी संरक्षण और मान्यता नहीं मिली, परन्तु 1963 में यूनि-वर्सिटी ग्रांट्स कमीशन से पूरी मान्यता मिली और साथ ही आर्थिक सहायता भी।

(10)

दिल्ली में लाला सुलतानसिंह बहुत अमीर आदमी थे। लगभग आधा दि-उनकी जायदाद में था। वे कांग्रेसी थे। अनेक राजा महाराजा और नेता दि-पर उनकी कोठी और अतिथि-गृहों में ठहरते थे। सुलतानसिंह की कोठी [illegible] हिन्दू कॉलिज वाली बिल्डिंग किसी अंग्रेजी फौजी अफसर स्किनर ने बनवाई थी। उसने सेन्ट जेम्स चर्च और एक मस्जिद का भी निर्माण कराया था। अंग्रेज पत्नी की स्मृति में, और मस्जिद अपनी दूसरी पत्नी की याद में।

सितम्बर 1924 में दिल्ली में साम्प्रदायिक दंगों से दुःखी होकर गांधी जी दिल्ली के एक गन्दे मौहल्ले कूचा चेलान में स्थित मौलाना [illegible] के मकान में 17 सितम्बर से 21 दिन का उपवास करने बैठ गए। उपवास में वे पत्रों का उत्तर भी लिखते थे, यंग इंडिया के लिए सम्पादकीय भी लिखते थे, भी कातते थे। डॉ० अंसारी और डॉ० रहमान उनकी परीक्षा करते थे। जी का उपवास बन्द कराने के लिए उपवास के 6 दिन बाद ही प्रमुख यूनिटी-कान्फ्रेन्स बुलाई गई, जिसमें ऐनीबिसेन्ट, स्वामी श्रद्धानन्द, मदनमोहन मालवीय, मोतीलाल नेहरू ने भाग लिया, परन्तु गांधी जी ने उपवास नहीं तोड़ा।

में यह मकान बहुत-अन्दर जाकर था और वहां शुद्ध वायु का अभाव था। निदान गांधी जी को वहां से हटाकर सुलतानसिंह जी के मल्कागंज स्थित विस्तृत 'दिलखुश' बंगले में ले जाया गया। गांधी जी ने 21 दिन बाद वही उपवास तोड़ा। उस समय देश के सभी शीर्ष नेता उनके बिस्तर के पास थे। उपवास की समाप्ति पर आराम करने वे सुलतानसिंह के अनुरोध पर उनके कश्मीरी गेट मकान में आ गये।

(11)

1931 में वे चांदनी चौक घंटा घर के पास कूचा नटवा में सेठ लक्ष्मीनारायण गाड़ोदिया की आलीशान कोठी मे रहे थे। गाड़ोदिया जी प्रमुख कपड़ा व्यापारी और बैंकर थे। गांधी जी से प्रभावित होकर उन्होने एक चैरिटी फण्ड स्कूल और कालिजों की शिक्षा के लिए पृथक खोल दिया था।

(12)

मार्च 1929 मे गांधी जी (चांदनी चौक) किनारी बाजार में व्रजकृष्ण चांदीवालों की विशाल कोठी में भी ठहरे थे। गांधी जी गुरुकुल कांगडी हरिद्वार के रजत जयन्ती समारोह उत्सव से लौटते हुए दिल्ली आए। ट्रेन प्रातःकाल दिल्ली मेन स्टेशन पर पहुंची। स्टेशन से बाहर आकर जब बृजकृष्ण चांदीवाले किसी वाहन की तलाश करने लगे तब गांधी जी ने कहा—'नहीं, मैं पैदल ही चलूंगा।'

वे पैदल चलकर स्टेशन से किनारी बाजार में उनके मकान तक गए, जो लगभग 1 मील था। स्टेशन के सामने कम्पनी बाग में जल्दी के रास्ते वे जाना चाहते थे, परन्तु उस समय अभी दिन पूरी तरह नही निकला था, सो गेट चौकीदार ने बाग का दरवाजा नहीं खोला। गांधीजी ने कुछ क्षण सोचा और फिर अपनी धोती घुटनों तक चढ़ाकर 3 फीट ऊंची बाउन्डरी दीवार कूदकर अन्दर पहुंच गये। फिर चांदी वाले भी दीवार फांदकर अन्दर पहुंच गए और चांदनी चौक की ओर चल दिए।

(13)

गांधी जी दिल्ली में महलों से लेकर कच्चे मकानों तक में रहे। हरिजनों और भंगियों के मकानों में भी रहे।

(9)

गांधीजी के आह्वान पर सरकारी स्कूलों का बहिष्कार कर राष्ट्रीय स्कूल खोले जा रहे थे, इसी प्रेरणा से प्रभावित होकर डा० जाकिर हुसैन, जो उन दिनों विद्यार्थी और लेक्चरर भी थे, के सुझाव पर अलीगढ़ के M. A. O. कालिज (जो अब अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी है) के समानान्तर उच्च शिक्षण संस्था ओखला (दिल्ली) के समीप खोली गई, जिसका नाम जामिया मिलिया रखा गया। इसे कार्य रूप दिया मौलाना मोहम्मद अली, हकीम अजमल खां और गांधीजी ने। इसकी स्थापना 29 अक्तूबर, 1920 को अलीगढ़ की एक मस्जिद में हुई, और तम्बुओं को बनाकर राष्ट्रीय शिक्षा कार्य आरम्भ हुआ।

17 मार्च, 1925 को यह संस्था अलीगढ़ से हटाकर दिल्ली में करौलबाग में एक किराए में लिए गए मकान में लाई गई। बाद में इसकी अपनी इमारत ओखला—जामियानगर में बन गई और इसे स्थायी रूप से वहां 1936 में लाया गया।

इसमें पढ़ाई के साथ-साथ कुछ काम करना तथा रोजगार की बुनियादी शिक्षा दी जाती है। यहां मुसलमान युवकों में भारत के प्रति राष्ट्रभावना का बीज बोया जाता है। हिन्दू विद्यार्थी भी यहां शिक्षा पाते हैं, तथा परस्पर में भ्रातृ-भावना पनपती है। बहुत दिनों तक इसे सरकारी संरक्षण और मान्यता नहीं मिली, परन्तु 1963 में इसे यूनीवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन से पूरी मान्यता मिली और साथ ही आर्थिक सहायता भी।

(10)

दिल्ली में लाला सुलतानसिंह बहुत अमीर आदमी थे। लगभग आधा कश्मीरी गेट उनकी जायदाद में था। वे कांग्रेसी थे। अनेक राजा महाराजा और नेता दिल्ली आने पर उनकी कोठी और अतिथि-गृहों में ठहरते थे। सुलतानसिंह की कोठी के पीछे पुराने हिन्दू कॉलेज वाली बिल्डिंग किसी अंग्रेजी फौजी अफसर सिकन्दर ने अपने लिए बनाई थी। उसी ने सेन्ट जेम्स चर्च और एक मस्जिद का भी निर्माण कराया था। चर्च अपनी अंग्रेज पत्नी की स्मृति में, और मस्जिद अपनी दूसरी पत्नी की कब्र पर।

सितम्बर 1924 में दिल्ली में. साम्प्रदायिक दंगों में हुई मारकाट के विरोध में गांधी जी दिल्ली के एक गन्दे मौहले कूचा चेलान में स्थित मौलाना मुहम्मद अली के मकान में 17 सितम्बर से 21 दिन का उपवास करने बैठ गए। उपवास के दिनों में वे पत्रों का उत्तर भी लिखते थे, यंग इंडिया के लिए सम्पादकीय भी लिखते थे, चरखा भी कातते थे। डॉ० अंसारी और डॉ० रहमान उनकी परीक्षा करते रहते थे। गांधी जी का उपवास बन्द कराने के लिए उपवास के 6 दिन बाद छः प्रमुख व्यक्तियों की एक यूनिटी-कान्फ्रेन्स बुलाई गई, जिसमें ऐनीबेसेन्ट, शौकतअली खां, हकीम अजमल खां, स्वामी श्रद्धानन्द, मदनमोहन मालवीय, मोतीलाल नेहरू आदि और भी अनेक नेताओं ने भाग लिया, परन्तु गांधी जी ने उपवास नहीं तोड़ा। कूचा चेलान की कम चौड़ी गली

में यह मकान बहुत अन्दर जाकर था और वहां शुद्ध वायु का अभाव था। निदान गांधी जी को वहां से हटाकर सुलतानसिंह जी के मल्कागंज स्थित विस्तृत 'दिलखुश' बंगले में ले जाया गया। गांधी जी ने 21 दिन बाद वहीं उपवास तोड़ा। उस समय देश के सभी शीर्ष नेता उनके विस्तर के पास थे। उपवास की समाप्ति पर आराम करने वे सुलतानसिंह के अनुरोध पर उनके कश्मीरी गेट मकान में आ गये।

(11)

1931 में वे चांदनी चौक घंटा घर के पास कूचा नटवा मे सेठ लक्ष्मीनारायण गाड़ोदिया की आलीशान कोठी में रहे थे। गाड़ोदिया जी प्रमुख कपड़ा व्यापारी और वैंकर थे। गांधी जी से प्रभावित होकर उन्होंने एक चैरिटी फण्ड स्कूल और कालिजों की शिक्षा के लिए पृथक खोल दिया था।

(12)

मार्च 1929 में गांधी जी (चांदनी चौक) किनारी बाजार मे ब्रजकृष्ण चांदीवालों की विशाल कोठी में भी ठहरे थे। गांधी जी गुरुकुल कांगडी हरिद्वार के रजत जयन्ती समारोह उत्सव से लौटते हुए दिल्ली आए। ट्रेन प्रातःकाल दिल्ली मेन स्टेशन पर पहुंची। स्टेशन से बाहर आकर जब बृजकृष्ण चांदीवाले किसी वाहन की तलाश करने लगे तब गांधी जी ने कहा—'नही, मैं पैदल ही चलूंगा।'

वे पैदल चलकर स्टेशन से किनारी बाजार में उनके मकान तक गए, जो लगभग 1 मील था। स्टेशन के सामने कम्पनी बाग में जल्दी के रास्ते वे जाना चाहते थे, परन्तु उस समय अभी दिन पूरी तरह नहीं निकला था, सो गेट चौकीदार ने बाग का दरवाजा नहीं खोला। गांधीजी ने कुछ क्षण सोचा और फिर अपनी धोती घुटनों तक चढ़ाकर 3 फीट ऊंची बाउन्डरी दीवार कूदकर अन्दर पहुंच गये। फिर चांदी वाले भी दीवार फांदकर अन्दर पहुंच गए और चांदनी चौक की ओर चल दिए।

(13)

गांधी जी दिल्ली में महलों से लेकर कच्चे मकानों तक में रहे। हरिजनों और भंगियों के मकानों में भी रहे।

(14)

गांधी जी और रवींद्रनाथ ठाकुर में कभी-2 मतभेद भी हो जाते थे, पर उसमें वैमनस्य नहीं होता था। एन्ड्रूज इसमें सहायक होते थे। एक बार रवीन्द्रनाथ का अपनी संस्था विश्व भारती के लिए आर्थिक दुर्वस्था के लिए चिन्तित होना पड़ा। रुपयों की बहुत आवश्यकता थी। इसके लिए उन्होंने 1930 में विदेश यात्रा भी की थी, पर यथेष्ठ धन प्राप्त न कर सके। फिर दुबारा 1935 में कुछ छात्राओं को लेकर वे भारत के दौरे पर निकल पड़े। उत्तर भारत और दिल्ली में वे अपनी छात्राओं के नृत्य, गायन, सांस्कृतिक प्रदर्शन करना चाहते थे। जब गांधी जी को यह पता चला, तब उन्होंने रवीन्द्रनाथ को ऐसा करने से मना किया। उन्होंने कहा—आपकी अब वृद्धावस्था ऐसी नहीं है जो दौरे का परिश्रम सह सके।

रवीन्द्रनाथ 1936 में 50 छात्र-छात्राओं के दल सहित दिल्ली पहुंचे और कश्मीरी गेट पर स्थित लाला सुलतान जी की हवेली में ठहरे। कनाट सर्कस में रीगल थिएटर बुक किया गया। गांधीजी कार से उतरे और तेजी से जीने में चढ़कर रवीन्द्रनाथ के कमरे की ओर बढ़े। जाकर उन्होंने उन्हें साठ हजार रुपयों का एक चेक और एक पत्र दिया। पत्र में लिखा था—अब आप जनता की चिन्ता को, जो आपके स्वस्थ को लेकर हो गई है, दूर कर देंगे और उन्हें बता देंगे कि अब विद्यार्थियों का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

उसी रात्रि को रवीन्द्रनाथ दिल्ली से अपने दलसहित कलकत्ता लौट गए।

सुलतानसिंह से किसी ने कहा कि गांधी आ रहे हैं—वे तुरन्त बरामदे में आकर लॉन की ओर देखने लगे। यहीं वह मकान था जहां रवीन्द्र नाथ ठहरे हुए थे।

(15)

सेवाग्राम में एक अमरीकी संवाददाता बापू से मिलने आया। बापू उसे बुलाने ही वाले थे कि एक आदमी भागता हुआ आया। बोला, "आर्यनायकमजी का लड़का मृत्यु-शय्या पर है।" सब ठगे-से देखते रहे! आधा घण्टा पहले बच्चा खेल रहा था। बापू दौड़ते हुए वहां पहुंचे। बच्चा संज्ञाहीन पड़ा था। शीशी भर दवा की गोलियां खेल-खेल में खा गया था और अब उनका जहर चढ़ रहा था। बापू समझ गये कि खेल खत्म हो चुका है। वे वापस लौटे और संवाददाता को बुलाकर सहज भाव से बातें करने लगे। इतना ही नहीं, उस शोकाकुल वातावरण में भी हंसना न भूले। अन्त में संवाददाता ने पूछा, "आपका स्वास्थ्य कैसा है?"

बापू के हाथ में पेंसिल थी, जिस पर अंग्रेजी में 'मिडलिंग' शब्द लिखा था। उसी की ओर इंगित कर बोले, इस पेंसिल-जैसा—बीच का!"

(16)

गांधीजी ने एक बार कहा—

"मैं यह दिखाने के प्रयत्न में लगा हुआ हूं कि मैं उतना ही कमजोर इन्सान हूं, जितना कि हममें से कोई हो सकता है और मुझमें कोई विलक्षणता न कभी थी, न अब है। मेरा दावा है कि मैं एक सीधा-सादा आदमी हूं, जो दूसरे किसी भी साथी मर्त्य मानव की भांति गलतियां कर सकता है। तो भी मैं स्वीकार करता हूं कि मुझमें इतनी नम्रता है कि अपनी गलतियां कबूल करूं और अपने गलत कदम वापस लू। मैं स्वीकार करता हूं कि ईश्वर में और उसके भलेपन में मेरी अटल श्रद्धा है और सत्य और प्रेम के लिए मुझमें कभी न बुझने वाली आसक्ति है। लेकिन क्या प्रत्येक मनुष्य मे भी वह छिपी हुई नही है? यदि हमें उन्नति करनी है, तो इतिहास को नही दोहराना होगा, बल्कि नया इतिहास बनाना होगा। जब भौतिक जगत् में हम अन्वेषण और आविष्कार कर सकते हैं, तो क्या आत्मिक जगत् में दिवालियापन का ऐलान करना हमारे लिए लाजमी है? क्या यह असम्भव है कि अपवादों की संख्या हम इतनी बढ़ा लें कि वही नियम बन जाये? क्या लाजमी है कि मनुष्य पहले पशु हो और बाद में मनुष्य?"

(17)

डॉ० जाकिर हुसैन अपनी मृत्यु से कुछ ही पहले एक पुस्तक पढ़ रहे थे। उन्होंने पुस्तक के एक पृष्ठ को 2-3 बार पढ़ना चाहा, पर पढ़ नही पाते थे। पुस्तक की कुछ पंक्तियों के नीचे उन्होंने पेन्सिल से एक लकीर खीच दी। यह पंक्ति मिर्जा गालिब की थी—

'हूं गामे निशाते, तसव्वर से नगामा सांज।
मैं अंदालिबे गुलशने ना—अफारिदा हूं।
(मेरी कल्पना की ऊष्मा और प्रसन्नता मुझसे गवाती है। मैं उस चमन की, जो अभी बनने वाला है, बुलबुल हूं।)

इस शेर से जाकिर हुसेन की भावना यह थी कि उनके स्वप्नों के सुन्दर भारत का अभी प्रादुर्भाव होना है।

(18)

जवाहरलाल नेहरू को लिखा गया गांधीजी का पहला पत्र

मैं कई दिनों से तुम्हें पत्र लिखने की सोच रहा था। यह भी निर्णय करना चाहता

था कि तुम्हें पत्र हिन्दी में लिखूं या अंग्रेजी में। अन्त में हिन्दी में लिखने का मन हुआ सो लिख रहा हूं।

पहले तो मैं बता दूं कि हिन्द स्वराज्य की व्याख्या क्या है। हिन्द स्वराज्य का अर्थ हिन्दवासियों का अपना शासन है। लोग सत्य और अहिंसा पर चलें। घर-घर चर्खों पर सूत काता जाये, और सब खादी पहनें। वे सब प्रकार के व्यर्थ सुख-साधनों का त्याग करें।

कोई यह न कहे कि मैं गांधी का अनुयायी हूं। मैं गांधी ही आप सबका अनुयायी हूं। सेवक हूं।

(19)

गांधीजी क्रोध कम ही करते थे, परन्तु एक बार वे क्रोधावेशित हो उठे। भंगी कॉलोनी में कांग्रेस वर्किंग कमेटी की मीटिंग हो रही थी। किसी को अन्दर आने की आज्ञा नहीं थी। द्वार-खिड़की बन्द थे। परन्तु एक फोटोग्राफर बाबूराम एक खिड़की को थोड़ा खोलकर फोटो लेने लगा। गांधीजी ने इसे देखा, वे तुरन्त क्रोधावेशित होकर उसे डांटने लगे। गांधीजी ने उसे 'निकम्मा आदमी' कहा।

बाबूराम ने कहा—'यह फोटो मैं देवदास जी के पत्र के लिए खींच रहा हूं।'

'परन्तु यह मीटिंग नितांत गुप्त है। तुमने अपराध किया है।'

(20)

गांधीजी नित्य ही अपने शरीर पर मिट्टी का लेप कराते थे। उनका विश्वास था कि मिट्टी शरीर के रोग कीटाणुओं को नष्ट करके स्वस्थ रखती है।

(21)

गांधीजी के पास एक लड़की उनका ओटोग्राफ लेने आई। गांधीजी ने पूछा—'तुम्हारे पिता क्या करते हैं?'

'वे तम्बाखू बेचते हैं।'

'तम्बाखू बुरी चीज है।' गांधीजी ने लिखकर हस्ताक्षर कर दिए।

(22)

नौआखाली में एक दिन एक किसान ने उनसे सन्देश मांगा—

'मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है।' गांधीजी बोले।

(23)

एक चित्रकार ने गांधीजी से आग्रह किया कि आप कुछ देर के लिए बैठ जायें—'मैं आपका एक चित्र बनाना चाहता हूं। चित्र 30 मिनट में पूरा हो जायेगा।'

'एक आत्मा का आधे घण्टे में चित्र कैसे बन सकता है?'

चित्रकार निराश होकर दुखी हो गया। यह देख गांधीजी ने उससे कहा—'अच्छा, तुम सोमवार मेरे मौन दिवस पर आना।'

चित्रकार दोपहर ढाई बजे गया और चित्र बनाने बैठ गया।

उन दिनों गांधीजी एक राजमहल में ठहरे हुए थे, वे बाहर एक बरामदे में बैठ गए। उन्होंने चादर ओढ़ी हुई थी। चित्र बनाते समय में वे पत्रों का उत्तर लिखते रहे।

चित्रकार चित्र बनाने में लीन था, सहसा गांधीजी ने उसे एक स्लिप पर लिखकर भेजा—आधा घण्टा हो चुका।

चित्रकार ने केवल 10 मिनट का समय और मांगा।

उन्होंने मुस्कराकर उसे देखा और 10 मिनट दिए।

चित्र बनने पर गांधीजी ने उसे देखा और देखकर सही होने के अर्थ में सिर हिलाया।

(24)

मि० जिन्ना के साथ भेंट करने के बाद दिल्ली लौटते समय गांधीजी ने शंकर पिल्लै प्रसिद्ध कार्टूनिस्ट को लिखा—'शंकर, क्या तुम मेरे दिल्ली पहुंचने पर मुझसे मिल सकते हो? मैं तुम्हें कार्टून बनाना सिखाऊंगा।'

शंकर जब पहुंचे तो वे समझ गए कि गांधीजी ने उन्हें क्यों बुलाया है। शंकर ने हाल में ही हिन्दुस्तान टाइम्स में एक कार्टून बनाया था—जिसमे गांधी-लार्ड लिनलिथगो एक कमरे में विचार-विमर्श करते हुए दिखाए गए हैं और एक चपरासी (एन० आर० सरकार) बाहर स्टूल पर बैठा हुआ है और जिन्ना को अन्दर घुसने से रोककर कहता है—सर, अन्दर जाने की आज्ञा नहीं है।

गांधीजी ने कहा—'शंकर, तुम्हारा कार्टून ठीक है, परन्तु तुमने जिन्ना को क्यों रोका। जिन्ना भावुक व्यक्ति है, उसे दुख होगा।'

(25)

एक बार शंकर ने एक कार्टून बनाया—जिसे देखकर राजकुमारी अमृतकौर नाराज हो उठी। यह कार्टून लेडी इरविन कालिज में डिप्लोमा-प्रदान समारोह के अवसर का बनाया गया था। अमृतकौर उस समय आल इन्डिया वीमेन्स कांफ्रेंस की चेयरमैन थीं। उन्होंने उस कार्टून का बहुत बुरा माना। देवदास गांधी को हिन्दुस्तान टाइम्स में उसे छापने पर विरोध-पत्र लिखा। फिर उन्होंने सरोजिनी नायडू को पत्र लिखा। सरोजिनी ने यह कार्टून देखकर कहा—'मैं इस शंकर के बच्चे को खत्म कर दूंगी।'

परन्तु जब वे शंकर से मिली तो बोलीं—'तुमने ठीक किया है।'

अन्त में राजकुमारी ने गांधीजी से शिकायत की। गांधीजी ने शंकर को बुलाया। शंकर पहुंचे—राजकुमारी जी भी उपस्थित थीं। गांधीजी बोले—'शंकर, यह क्या है?'

शंकर के उत्तर देने से पहले ही राजकुमारी चिल्ला उठी—'इसने हमारे कॉलिज की ख्याति नष्ट कर दी है। हम पर कीचड़ उछाली है। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ।'

'तुम्हारा क्या उत्तर है शंकर?' गांधीजी ने पूछा।

शंकर ने बताया—'मैं कॉलिज में डिप्लोमा अवार्ड प्रदान करने का समारोह देखने वहां गया था। कुल 90 छात्राएं थी, उन सभी ने गहरी लिपस्टिक लगा रखी थी। मैंने सभी को ध्यान से देखा, मुझे लगा उनका सौंदर्य नष्ट हो गया है, लिपस्टिक पोत लेने से वे भद्दी लग रही हैं। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं बुराइयों की ओर कार्टून के माध्यम से ध्यान खींचूं—सो मैंने 'मार्च आफ टाइम्स' शीर्षक में इन लड़कियों का कार्टून बनाया और नीचे लिखा—लेडी इरविन कालिज ने 90 छात्राओं को डिप्लोमा दिया है, क्योंकि छात्राओं ने कनाट सर्कस पर एक लिपस्टिक सर्विस स्टेशन खोलने का निश्चय किया है।

यह सुनकर गांधीजी बच्चों की भांति खिलखिलाकर हंस पड़े और देर तक हंसते रहे। उन्होंने कहा—'तुमने ठीक किया शंकर।'

(26)

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जनरल ए० ए० रुद्र को भारतीय सेना में अफसर बनने के लिए कहा गया। उन्होंने गांधीजी से पूछा। उन्होंने कहा—यदि मैं फौज में भरती हो गया, तो मुझे अपने ही देशवासियों पर गोली चलाने का आदेश मिल सकता है। ऐसी अवस्था में क्या मैं सेना में पद ग्रहण करूं?

गांधीजी ने उत्तर दिया—यह निर्णय तुम अपनी अन्तर्आत्मा से पूछो।

ए० ए० रुद्र एकांत स्थान पर जाकर ध्यानमग्न बैठ गए। कुछ देर बाद गांधीजी ने बुलाकर पूछा—'क्या निर्णय किया?'

रुद्र ने उत्तर दिया—'मैंने कमीशन्ड होने का निर्णय लिया है। और तब यदि मुझे कभी आपको गोली मारने का आदेश मिले तो मैं आपको भी तुरन्त गोली मार दूंगा।'

गांधीजी कुछ देर चुप रहे, फिर बोले—'मैं तुम्हें ऐसा अवसर कभी देने की इच्छा नहीं रखता। और स्मरण रखो जब भी भारत स्वतन्त्र होगा, तब वह तुम्हें अपनी सेना में उच्च पद देगा।'

(27)

एक बार गांधीजी कार से जामिया मिलिया जा रहे थे। जब गांधीजी कार से उतर रहे थे, किसी ने अज्ञानता में कार का द्वार बन्द किया, गांधीजी का हाथ द्वार पर था, वह उसमें भिच गया, और उंगलियों से रक्त बहने लगा। तुरन्त लोग दौड़े और फर्स्ट एड का सामान लाए। परन्तु गांधीजी ने उनसे शांत रहने को कहा। उन्होंने कहा—मैं गरीबों का प्रतिनिधि हूं, मेरे पास ऐसी कीमती दवाइयों का मूल्य देने के लिए पैसे नहीं हैं। मैं स्वाभाविक चिकित्सा में विश्वास करता हूं। सो उन्होंने थोड़ा ठण्डा पानी और एक कपड़े की पट्टी लाने की आज्ञा दी।

उन्होंने खून को पोंछा और एक पट्टी अपने जख्म पर बांध ली। उन्होंने हंसकर पूछा—'क्या मैं अच्छा डॉक्टर नहीं हूं?'

एक पत्रकार यह सब देख रहा था, उसने गांधीजी से कहा—'यह सब घटना मैं अपने पत्र में छपने भेज रहा हूं।'

गांधीजी बोले—नहीं, ऐसा करोगे तो लोगों को मेरे बारे में चिन्ता हो जायेगी—वे पत्र-तार भेजकर मेरे स्वास्थ्य के बारे में पूछेंगे—और तब मेरे सहायकों को उनके उत्तर देने में व्यर्थ समय और पैसा लगाना होगा।'

(28)

अप्रैल 1937 में एक पत्रकार ने राजगोपालाचार्य जी के कहने से 'हिन्दू और गार्डियन' शीर्षक लेख लिखा। उसमें उसने लिखा था कि किन-किन शर्तों पर कांग्रेस (विजित सीटों पर) विधान सभाओं में पद संभाल सकती है। उस समय के वायसराय लार्ड लिनलियगो ने उसे पढ़ा और पत्रकार को बुलाकर पूछा—'क्या यह तुम्हारी सम्मति है?'

'यह राजगोपालाचार्य की सम्मति है।' मैंने कहा।

लिनलिथगो बोले—'तब तो बात दूसरी है।'

उन्होंने तब उससे चार प्रश्न स्पष्टीकरण के लिए पूछे, और यह बात गोपनीय रखने के लिए कहा।

उन दिनों गांधीजी बेलगाम से 15 मील दूर थे। पत्रकार उनसे जाकर मिला—उस दिन गांधीजी का मौन दिवस था। पत्रकार ने कागज पर लिखा—मुझे वायसराय और सेक्रेटरी आफ स्टेट ने चार प्रश्न पूछे हैं, यदि आपके उत्तर सन्तोषजनक हुए, तब

(25)

एक बार शंकर ने एक कार्टून बनाया—जिसे देखकर राजकुमारी अमृतकौर नाराज हो उठीं। यह कार्टून लेडी इरविन कालिज में डिप्लोमा-प्रदान समारोह के अवसर का बनाया गया था। अमृतकौर उस समय आल इन्डिया वीमेन्स कांफ्रेंस की चेयरमैन थी। उन्होंने उस कार्टून का बहुत बुरा माना। देवदास गांधी को हिन्दुस्तान टाइम्स में उसे छापने पर विरोध-पत्र लिखा। फिर उन्होंने सरोजिनी नायडू को पत्र लिखा। सरोजिनी ने यह कार्टून देखकर कहा—'मैं इस शंकर के बच्चे को खत्म कर दूंगी।'

परन्तु जब वे शंकर से मिलीं तो बोलीं—'तुमने ठीक किया है।'

अन्त में राजकुमारी ने गांधीजी से शिकायत की। गांधीजी ने शंकर को बुलाया। शंकर पहुंचे—राजकुमारी जी भी उपस्थित थी। गांधीजी बोले—'शंकर, यह क्या है?'

शंकर के उत्तर देने से पहले ही राजकुमारी चिल्ला उठी—'इसने हमारे कॉलेज की ख्याति नष्ट कर दी है। हम पर कीचड़ उछाली है। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ।'

'तुम्हारा क्या उत्तर है शंकर?' गांधीजी ने पूछा।

शंकर ने बताया—'मैं कॉलेज में डिप्लोमा अवार्ड प्रदान करने का समारोह देखने वहां गया था। कुल 90 छात्राएं थीं, उन सभी ने गहरी लिपस्टिक लगा रखी थी। मैंने सभी को ध्यान से देखा, मुझे लगा उनका सौंदर्य नष्ट हो गया है, लिपस्टिक पोत लेने से वे भद्दी लग रही हैं। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं बुराइयों की ओर कार्टून के माध्यम से ध्यान खींचूं—सो मैंने 'मार्च आफ टाइम्स' शीर्षक में इन लड़कियों का कार्टून बनाया और नीचे लिखा—लेडी इरविन कालिज ने 90 छात्राओं को डिप्लोमा दिया है, क्योंकि छात्राओं ने कनाट सर्कस पर एक लिपस्टिक सर्विस स्टेशन खोलने का निश्चय किया है।

यह सुनकर गांधीजी बच्चों की भांति खिलखिलाकर हंस पड़े और देर तक हंसते रहे। उन्होंने कहा—'तुमने ठीक किया शंकर।'

(26)

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जनरल ए० ए० रुद्र को भारतीय सेना में अफसर बनने के लिए कहा गया। उन्होंने गांधीजी से पूछा। उन्होंने कहा—यदि मैं फौज में भरती हो गया, तो मुझे अपने ही देशवासियों पर गोली चलाने का आदेश मिल सकता है। ऐसी अवस्था में क्या मैं सेना में पद ग्रहण करूं?

गांधीजी ने उत्तर दिया—यह निर्णय तुम अपनी अन्तर्आत्मा से पूछो।

ए० ए० रुद्र एकांत स्थान पर जाकर ध्यानमग्न बैठ गए। कुछ देर बाद गांधीजी ने बुलाकर पूछा—'क्या निर्णय किया?'

रुद्र ने उत्तर दिया—'मैंने कमीशन्ड होने का निर्णय लिया है। और तब यदि मुझे कभी आपको गोली मारने का आदेश मिले तो मैं आपको भी तुरन्त गोली मार दूंगा।'

गांधीजी कुछ देर चुप रहे, फिर बोले—'मैं तुम्हें ऐसा अवसर कभी देने की इच्छा नही रखता। और स्मरण रखो जब भी भारत स्वतन्त्र होगा, तब वह तुम्हें अपनी सेना में उच्च पद देगा।'

(27)

एक बार गांधीजी कार से जामिया मिलिया जा रहे थे। जब गांधीजी कार से उतर रहे थे, किसी ने अज्ञानता में कार का द्वार बन्द किया, गांधीजी का हाथ द्वार पर था, वह उसमें भिच गया, और उंगलियों से रक्त बहने लगा। तुरन्त लोग दौड़े और फर्स्ट एड का सामान लाए। परन्तु गांधीजी ने उनसे शांत रहने को कहा। उन्होंने कहा—मैं गरीबों का प्रतिनिधि हूं, मेरे पास ऐसी कीमती दवाइयों का मूल्य देने के लिए पैसे नहीं है। मैं स्वाभाविक चिकित्सा में विश्वास करता हूं। सो उन्होंने थोड़ा ठण्डा पानी और एक कपड़े की पट्टी लाने की आज्ञा दी।

उन्होंने खून को पोंछा और एक पट्टी अपने जख्म पर बांध ली। उन्होंने हंसकर पूछा—'क्या मैं अच्छा डॉक्टर नहीं हूं?'

एक पत्रकार यह सब देख रहा था, उसने गांधीजी से कहा—'यह सब घटना मैं अपने पत्र में छपने भेज रहा हूं।'

गांधीजी बोले—नहीं, ऐसा करोगे तो लोगों को मेरे बारे में चिन्ता हो जायेगी—वे पत्र-तार भेजकर मेरे स्वास्थ्य के बारे में पूछेंगे—और तब मेरे सहायकों को उनके उत्तर देने में व्यर्थ समय और पैसा लगाना होगा।'

(28)

अप्रैल 1937 में एक पत्रकार ने राजगोपालाचार्य जी के कहने से 'हिन्दू और गार्डियन' शीर्षक लेख लिखा। उसमें उसने लिखा था कि किन-किन शर्तों पर कांग्रेस (विजित सीटों पर) विधान सभाओं में पद संभाल सकती है। उस समय के वायसराय लार्ड लिनलिथगो ने उसे पढ़ा और पत्रकार को बुलाकर पूछा—'क्या यह तुम्हारी सम्मति है?'

'यह राजगोपालाचार्य की सम्मति है।' मैंने कहा।

लिनलिथगो बोले—'तब तो बात दूसरी है।'

उन्होंने तब उससे चार प्रश्न स्पष्टीकरण के लिए पूछे, और यह बात गोपनीय रखने के लिए कहा।

उन दिनों गांधीजी बेलगाम से 15 मील दूर थे। पत्रकार उनसे जाकर मिला—उस दिन गांधीजी का मौन दिवस था। पत्रकार ने कागज पर लिखा—मुझे वायसराय और सेक्रेटरी आफ स्टेट ने चार प्रश्न पूछे हैं, यदि आपके उत्तर सन्तोपजनक हुए, तब

कांग्रेस से सरकार समझौते की बात कर सकती है।

गांधीजी ने उत्तर में लिखा—कल आओ, और मेरे साथ पूरा दिन व्यतीत करो।'

पत्रकार ने कागज पर लिखा—'ठीक है, मैं आऊंगा। इन प्रश्नों के उत्तर मैं प्रेस में देना चाहूंगा।'

अगले दिन पत्रकार गया। गांधीजी और पत्रकार दोनों ने मिलकर एक बयान का मसविदा तैयार किया। पूरा मंगल और बुध दो दिन उसमें लगे।

गांधीजी ने कहा—'मेरा यह बयान भारत में ही नहीं, विदेशों के पत्रों में भी छपने दो।'

बयान देने के बाद उन्होंने कहा—'अंग्रेज अच्छे लोग हैं, मैं उनके साथ सरलता से निबट सकता हूं।'

बयान छपने के बाद सात प्रांतों में कांग्रेस मिनिस्ट्री बनी।

(29)

गांधीजी के पौत्र कनु गांधी और पत्नी आभा गांधी ने कस्तूरबा गांधी की स्मृति में चम्बा नामक गांव में कस्तूरबा आश्रम की स्थापना की। बाद में ग्रामवासियों ने उसका नाम कस्तूरबाधाम रख दिया। यह स्थान राजकोट से 17 किलोमीटर दूर है।

कस्तूरबाधाम वह स्थान है जहां राजकोट के शासक ने 1939 में अपने राज्य में सत्याग्रह करने के कारण 72 वर्ष की आयु की बा को बन्दी बनाकर रखा था।

इस आश्रम में जनहित के अनेक कार्य होते हैं। वहां एक अस्पताल है जिसमें प्रसूती विभाग भी है। यह अस्पताल निकटवर्ती 40 गांवों की सेवा करता है। कारखाने हैं जहां हाथ से कागज बनाया जाता है, साबुन बनाया जाता है, खाद्य तेल बनाये जाते हैं। विद्यार्थी अपने पार्ट-टाइम में इनमें काम करके अर्जन भी करते हैं। एग्रीकल्चर फार्म तथा डेरी भी है। बच्चों के लिए स्कूल भी है। सवर्ण तथा अवर्ण सभी जाति के बच्चे बिना भेदभाव यहां शिक्षा पाते हैं। 70 विद्यार्थियों के आवास योग्य होस्टल भी है। प्रति छात्र मासिक व्यय 30 रु० होता है। भोजनालय में सब प्रकार की चीजें बनानी सिखाई जाती हैं—गुजराती भोजन, ढोलका, श्रीखण्ड, पूरन पूरी आदि। भोजन से पहले ईश्वर प्रार्थना की जाती है। खाने के बाद बर्तन अपने हाथ से साफ करने पड़ते हैं। मिट्टी की झोंपड़ियां अपने श्रमदान से बनाई जाती हैं। सबमें गांधीवाद की छाप है।

(30)

1931 में राउन्डटेबिल कांफ्रेन्स में भाग लेने गांधीजी गए। वहां उनसे मिलने बर्नार्डशॉ

गये। मुलाकात के बाद जब वे लौटने लगे तब गांधीजी ने पूछा—'आप कैसे जायेंगे ?

'टैक्सी लेनी होगी।'

'नहीं यह ठीक न होगा।' फिर उन्होंने बर्नाडशॉ को एक खड़ी हुई कार दिखाकर कहा—'आप इसमें जाइए।'

बहुत बढ़िया कार थी, ड्राइवर भी कीमती पोशाक पहने था। यह ड्राइवर एक हिज हाइनेंस थे, जो किसी प्रतीक्षा में वहां थे।

(31)

नेटाल में 'जुलू विद्रोह' के समय गांधीजी मिलिट्री में सारजेन्ट मेजर थे, उनके अधिकार में 24 आदमियों की इण्डियन एम्बूलैंस कार्प्स थी। यह कार्प्स सबसे अधिक क्रियाशील कार्प्स थी। इसमें तीन सारजेन्ट, एक कारपोरल, और 19 आदमी थे। ये लोग अपने कंधे पर स्ट्रेजर लादकर युद्धभूमि के पास तत्पर रहते थे। कभी-कभी तो इन्हें 40 मील एक दिन मे पैदल चलना पड़ता था।

गांधीजी ने, जो बैरिस्ट्री पास करने के बाद साउथ अफ्रीका में रह रहे थे, एक इंडियन एम्बूलेन्स कार्प्स बनाई थी। इसका काम घायल जुलूओं का मरहम पट्टी करना तथा फर्स्टएड करना था।

गांधीजी ने बोयर युद्ध में भी सेना में सेवा कार्य का भार लिया था। तब उन्होंने 1100 व्यक्तियों और 40 नायकों का दल बनाया था। प्रायः इन्हें प्रथम पंक्ति के घायलों की सेवा के लिए तत्पर रहना पड़ता था। गांधी अपने सहयोगियों के साथ घायलों को स्ट्रेचर पर लादकर अस्पतालों में पहुंचाते थे।

बोयर युद्ध के कुछ वर्ष बाद प्रथम महायुद्ध हुआ। गांधीजी 6 अगस्त 1914 को अफ्रीका से लन्दन पहुंचे। इसके 2 दिन बाद ही ब्रिटेन ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी थी। गांधीजी चाहते थे कि ब्रिटेन में रह रहे भारतीय भी युद्ध के घायलों की मदद करें। यहां भी गांधीजी ने भारतीयों को लेकर एक कार्प्स बनाई और उनको ट्रेनिंग दी। गांधीजी जब भारत में 1915 में जनवरी में आए, तब वायसराय चेम्सफोर्ड ने गांधीजी को आमंत्रित कर फौज में भारतीयों के भरती होने का समर्थन करने को कहा। गांधीजी ने खेड़ा में सेना भरती केन्द्र खोला। इसके बाद अमृतसर का जलियांवाला हत्याकांड जनरल डायर ने किया, जिससे गांधीजी अंग्रेजों के बिल्कुल विपरीत हो गए और उन्होंने अपना स्वतंत्रता संग्राम तेजी से आरम्भ कर दिया।

(32)

'जलियां वाला बाग' को देश का स्मारक बनाने के लिए श्रद्धानन्दजी ने उसे खरी-

दने का विचार किया और कहा—इसका नाम 'अमर वाटिका' रखा जाएगा। श्रद्धानन्द जी ने अमर वाटिका भूमि खरीदने के लिए चंदा एकत्र करना चाहा—तब गांधीजी ने कहा—मैं अपना आश्रम बेचकर यह पैसा देना चाहता हूं।'

(33)

गांधीजी राउन्डटेबिल कांफ्रेंस में सम्मिलित होने के लिए लन्दन गए और वहां गरीबों के मुहल्ले में ठहरे। वे जहां ठहरे थे, उस मकान के पास ही एक परिवार में एक लड़की मैरी रहती थी। वह अभी बालिका ही थी। मुहल्ले के लोगों से उसे ज्ञात हुआ कि भारत से गांधीजी आकर यहीं ठहरेंगे। गांधीजी का नाम छोटे बड़े सभी की जुबान पर था।

गांधीजी वहां पहुंचे। लोगों की भीड़ उन्हें देखने के लिए उमड़ पड़ी। मैरी भी अपनी बालकोनी में आ खड़ी हुई। उसने देखा—चार-पांच कारें आगे पीछे चलकर वहां आकर रुकीं। उनमें से एक ताम्रवर्णी व्यक्ति अपने नग्न शरीर पर मोटी-सी चादर ओढ़े बाहर निकला। भीड़ में भारतीय दर्शकों ने जोर से कहा—'महात्मा गांधी की जय।'

वह व्यक्ति तेजी से ऊपर जीने में चढ़ गया। चढ़कर उसने पलटकर नीचे खड़ी भीड़ का हाथ जोड़कर अभिनन्दन किया और कमरे में चला गया।

उसकी मां ने अपनी बेटी से कहा—'वह तो साधारण व्यक्ति हैं।'

'हां, देखो न, उसके शरीर पर पूरे कपड़े भी नहीं है।'

'यहां वह अपने देश के लिए स्वतन्त्रता लेने आया है। क्या हमारी सरकार उसे दे देगी ?'

'कभी नही। भारतवासी इस योग्य नहीं हैं।'

गली की भीड़ तितर-बितर हो गई।

बालिका मेरी अपनी बालकोनी से उतरकर नीचे खड़ी हो गई और उस स्थान की ओर देखने लगी जहां गांधी ठहरे हुए थे।

कुछ समय बाद गांधीजी 4-5 व्यक्तियों के साथ अपने कमरे से उतरकर नीचे आए और खड़ी हुई उस बालिका की ओर मुस्कराकर देखा और हाथ हिलाया। बालिका उन्हें देखती रही और वे दुबारा हाथ हिलाकर कार में जा बैठे।

बालिका दौड़कर अपने माता-पिता के पास आई और बोली—भारत का वह आदमी मुझे देखकर मुस्कराया है और मेरी की ओर हाथ हिलाया है। उसकी मुस्कराहट बहुत प्रिय थी।

'हां, वह बच्चों को बहुत प्यार करता है। वह अच्छा आदमी है।' माता ने कहा

'अरे यह सब दिखावा नाटक है।' उसके पिता ने कहा।

पर बालिका को यह सब पसन्द नहीं आया। कुछ समय बाद वह फिर नीचे उतरी और टहलने लगी। वही कार फिर आयी और गांधीजी उसमें से उतरे। गांधीजी ने बालिका को देखा तो मुस्करा दिये और हाथ हिलाया।

यह देख बालिका गांधीजी के पास आयी और बोली—'सर, धन्यवाद।'

'किस लिए ?' गांधीजी ने पूछा।

'मुझे देखकर मुस्कराने पर, सर।'

'तुम बहुत अच्छी हो, जो मुझे धन्यवाद दे रही हो, परन्तु यह 'सर' क्यों कहती हो ?'

'तब मैं आपको क्या कहूं सर ?'

'मुझे अंकल कहो, इतना ही काफी है।'

'धन्यवाद अंकिल।'

'बहुत अच्छे। आओ, मेरे साथ ऊपर चलो, वहां बातें करेंगे।'

बालिका ने खुश होकर गांधीजी का हाथ पकड़ लिया और उनके साथ जीने में चढ़ने लगी। ऊपर एक बड़ा कमरा था, उसमें जमीन पर सफेद चादर बिछी थी। जिस पर कुछ कुशन रखे थे। गांधीजी ने बालिका को एक कुशन पर बैठने का संकेत किया, और दूसरे पर स्वयं पालथी मारकर बैठ गए। बालिका ने भी उनकी देखादेखी पालथी मार ली।

'बहुत अच्छे। तुम प्रशंसनीय हो। क्या नाम है तुम्हारा !'

'मैरी, एक मामूली नाम है अंकिल।

'यह मामूली नहीं है। तुम्हारी रानी का नाम भी मैरी है। जेसस की माता का नाम भी मैरी था।'

बालिका यह सुनकर रोमांचित और गर्वित हो उठी ?

'तुम अच्छी लड़की हो, क्या तुम प्रार्थना करती हो ?'

हां, अंकिल, भोजन से पहले और सोने से पहिले।

'बहुत अच्छे। क्या तुम मुझे कोई प्रार्थना सुनाओगी ?' बालिका ने झुककर आंखें मूंदकर 'लार्ड्स प्रेयर' सुनानी आरम्भ की। गांधीजी भी उसके साथ प्रार्थना करते रहे। समाप्त होने पर बोले—'आमीन'। बालिका ने आंखें खोलीं और आश्चर्य से पूछा—'आप हमारी प्रार्थना कैसे जानते हैं ? क्या आप क्रिश्चियन हैं ?'

'नहीं मैरी, मैं हिन्दू हूं।'

'आपकी प्रार्थना कैसी है ?'

'मैं हमेशा राम ! राम ! स्मरण करता हूं—यही यथेष्ठ है।'

बालिका ने भी राम ! राम ! कहकर प्रार्थना की।

इस घटना से बालिका के मन पर राम और गांधी की छाप अंकित हो गई।

गांधीजी ने कहा—तुम्हारा नाम जानकर मुझे यह गीत स्मरण आया—'मैरी हैड ए लिटिल लैम्ब।' क्या तुम्हारे पास लिटिल लैम्ब' है ?'

'मुझे उसकी इच्छा है, परन्तु यह सम्भव नहीं। मेरे पास बिल्ली है, मैं उसे टॉम कहती हूं।

'बिल्ली रखना ही काफी है। अच्छा अब बहुत देर हो गई, तुम्हारे माता-पिता तुम्हारी राह देख रहे होंगे। अब जाओ और कल इसी समय फिर आना, साथ में टॉम को

भी लाना, देखूंगा ।'

गांधीजी उठकर उसे दरवाजे तक छोड़ने आए। अपने आदमियों से उन्होंने कहा—'इसे कुछ फल दो और इसके घर तक सुरक्षित छोड़ आओ।'

बहुत सारे फलों की टोकरी लेकर जब वह घर आई तो उसने माता-पिता से कहा—'अंकिल गांधी ने मुझे यह सब दिया है।' उसने विस्तार से सब बातें बता दीं।

माता ने कहा—'तब तो तुम गांधीजी की प्रिय बेटी बन गई हो।'

अगले दिन बालिका नियत समय पर गांधीजी के पास आई। टॉम को भी लाई थी।

गांधीजी ने उसे देखा और प्यार किया। वे टॉम से खेलने लगे। उन्होंने उसे मिठाई खाने को दी—टॉम ने भी खाई।

आधा घंटा वहां रुकने के बाद बालिका ने उनसे बिदा ली—'अंकिल, आपसे मिलने बहुत लोग बैठे हैं—अब मैं चलूं।'

बिल्ली को गोद में लेकर वह चल दी। 'अच्छा, बाई, बाई मैरी। कल भी आना।'

मैरी गांधीजी से बहुत देर तक मिलना चाहती थी, पर भीड़ उन्हें घेरे रहती थी। वे कभी अकेले नहीं होते थे।

एक दिन प्रातः जब मैरी सो रही थी, उसने अपने पिता को क्रोध से बोलते सुना। उसने समझा शायद वे उसकी मां से लड़ रहे हैं। परन्तु बाद में उसने समझा कि यह बात नहीं है। वे माता से क्रोध में कह रहे थे—'देखा, इस नंगे और काले भारतीय को। इसने अपनी धोती और चादर में ही नंगे बदन राजमहल में जाकर हमारे राजा किंग जार्ज के साथ मेज पर आमने-सामने बातें की हैं। हमारे राजा ने पहले अपना हाथ उससे हाथ मिलाने को बढ़ाया। यह सब राजा ने क्यों किया? हमारे प्राइममिनिस्टर ने यह सब क्यों होने दिया?'

मैरी यह सुनकर डर के मारे अपने बिस्तर में दुबक गई। पर उसके पिता ने पुकारा—'मैरी, यहां आओ।'

मैरी के आने पर बोले—'तुम्हें मालूम है, तुम्हारे उस भारतीय अंकिल ने क्या किया है? उसने हमारे राजा और रानी का घोर अपमान किया है। उसने उनके साथ शाही डाइनिंग मेजपर बैठकर खाना खाया है। खबरदार, अब उससे न मिलना, न बात करना समझी।'

मैरी ने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

मुंह से कहो—'नहीं बोलोगी।'

'नहीं बोलूंगी।' कहते ही वह मां की गोद में छिप गई।

भाग्य से गांधीजी के वहां से प्रस्थान के समय मैरी के पिता घर पर नहीं थे। मैरी बालकोनी में खड़ी भीड़ को देख रही थी। जब गांधीजी का चरखा कार में रखा गया तो मैरी दौड़कर अपनी मां के पास गई और बोली—'वे अब जा रहे हैं, क्या मैं उन्हें बालकोनी में खड़ी होकर देख लूं?'

माता ने मुस्कराकर कहा—'हां, देखो। चलो मैं भी देख लूं।'

दोनों बालकोनी में आ खड़े हुए।

गांधीजी बाहर आए, पर एक सीढ़ी खड़े होकर उन्होंने हाथ जोड़कर भीड़ को नमस्कार किया। सीढ़ी से उतरकर उन्होंने अपने पास खड़े व्यक्ति से धीरे से कुछ कहा। व्यक्ति ने बालकोनी की ओर देखा और बालिका को माता के साथ खड़ा पाया। गांधीजी ने भी बालिका की ओर देखा और उसे नीचे आने का संकेत किया।

मैरी जड़वत खड़ी रही।

गांधीजी ने उसे फिर नीचे आने का संकेत किया।

मैरी सुबक पड़ी।

गांधीजी असमंजस में पड़ गए, और हाथ के संकेत से पूछा—'क्यों क्या हुआ ?'

मैरी ने रोकर अपना मुंह दोनों हाथों से ढक लिया।

'रो मत बेटी।' उसकी माता ने कहा।

गांधीजी कार में जा बैठे। कार चल दी। चलने का शब्द सुनकर मैरी ने अपना मुंह उठा कर देखा—कार जा रही थी। गांधीजी हाथ मिलाकर उसे आशीर्वाद और सान्त्वना दे रहे थे। यह देख मैरी रोना भूल गई और हंसकर गांधीजी की ओर हाथ हिलाया। हिलाती रही, जब तक कार दृष्टि से ओझल न हो गई।

समय बीत गया। बालिका यौवनावस्था से प्रौढ़ हो गई। द्वितीय महायुद्ध में उसके माता-पिता इंग्लैंड पर बम प्रहार में मारे गये। उसने विवाह नहीं किया। उसने भारत आकर गांधीजी से मिलने की बहुत चेष्टा की, परन्तु कुछ साम्पत्तिक झगड़ों में व्यस्त रही। जब उनसे निबटी और भारत के लिए सामान बांध लिया, तभी उस पर वज्रपात हुआ। उसने सुना कि गांधीजी को गोली मारकर हत्या कर दी गई है। वह प्राणविहीन की भांति पड़ रही। खाना पीना सोना सब छोड़ दिया। उसने जीवन का अन्त करने की इच्छा की, परन्तु तभी उसे राम ! राम ! राम ! की ध्वनि सुनाई दी। अंधकार में प्रकाश चमकता था और उसमें से ध्वनि आती थी—राम ! राम ! राम !

मैरी संभल गई। प्राणत्याग का विचार छोड़ दिया। उसने गांधीजी की पुस्तकें खरीदकर पढ़ना आरम्भ की। जहां भी गांधी साहित्य मिलता—मंगाकर पढ़ती और संजोकर रखती। बहुत पुस्तकें हो गईं।

उसने लन्दन में पुस्तकों की एक दुकान खोल कर गांधीजी का साहित्य बेचना शुरू कर दिया है। वह प्रत्येक वर्ष एक पौंड का नोट नई दिल्ली में एक भक्तजन को भेजती है और 30 जनवरी को उनकी समाधि पर उसकी ओर से फूल-माला चढ़ाई जाती है।

(34)

एक अंग्रेज गांधी जी से मिलने कोचरब आश्रम की ओर जा रहा था। मार्ग में एक नंगे बदन आदमी कुए से पानी खींच रहा था। उसने गुजराती में उससे पूछा—"मैं बैरिस्टर गांधी से मिलना चाहता हूं। वे यहीं कहीं रहते है। क्या आप मुझे उनका पता बता सकते है।"

'कृपया रुकिये, मैं आपको गांधी के पास ले चलूंगा' आदमी ने उत्तर दिया।

उसने मिट्टी का घड़ा भरकर अपने कंधे पर रखा और आगन्तुक से कहा—'मेरे साथ आइए।'

वह उनके साथ एक दो-मंजिला इमारत में पहुंचा और घड़े को रसोई में रखकर सीढ़ी चढ़ गया और अन्दर कमरे में अपने आसन पर बैठकर कहा –'कृपया अपने जूते बाहर उतार दीजिए और बैठिए।'

बैठने के बाद आगुन्तक ने खीजकर कहा—'गांधी को शीघ्र बुला दीजिए मुझे जल्दी है।'

गांधी जी ने कहा—'मैं ही गांधी हूं। कहिए आपकी क्या सेवा करूं।'

यह सुनकर आगन्तुक चकित रह गए। क्या यही आदमी ब्रिटिश सरकार को भारत से बाहर खदेड़ना चाहता है।

आगन्तुक ने हंस कर कहा—'मैं नार्थदर्न डिवीजन का प्रैट कमिश्नर हूं।'

प्रैट कमिश्नर वायसराय का एक आवश्यक सन्देश लाए थे। प्रैट कमिश्नर के आधीन सारा नार्दर्न डिविजन था, जिसमें ओल्ड बम्बई प्रेसीडेन्सी, सिंध और कोचरव तक का प्रदेश सम्मिलित था। उनके जिम्में गांधी जी के कार्यों पर नजर रखना था।

(35)

गांधी जी ने ईसा, थोरियो और टालसटाय की शिक्षाऐं अपनाईं। वे कहा करते थे कि मुझे कोई गुरु नहीं मिल सका।

नेहरू जी के कुछ प्रेरक प्रसंग

(1)

नेहरू जी जब शिक्षा पा रहे थे 13 वर्ष के थे, तभी से उनका दिल राष्ट्रीय भावों से भरा रहता था। वे योरोप के पंजे से एशिया और हिन्दुस्तान को आजाद कराने के विचारों में डूबे रहते थे। बहादुरी के बड़े 2 मनसूबे बांधते और तलवार लेकर हिन्दुस्तान को आजाद कराने के लिए लड़ना चाहते थे।

(2)

15 वर्ष की आयु में वे इंग्लैंड पढ़ने के लिए भेजे गए। वहां हैरो और कैम्ब्रिज में उन्होंने शिक्षा पाई। कैम्ब्रिज के ट्रिनिटी कॉलेज में उन्होंने रसायन शास्त्र, भूगर्भशास्त्र और वनस्पति शास्त्र, विषय चुने थे।

(3)

कैम्ब्रिज में जो हिन्दुस्तानी रहते थे, उनकी एक 'मजलिस' थी, जिसमें प्रायः राजनैतिक मामलों पर बहस होती थी। मजलिस में विपिनचन्द्रपाल, लाजपतराय, गोखले आदि भारतीय नेता भी आते थे। विपिन चन्द्रपाल की आवाज बहुत दूर तक सुनाई देती थी और वे अपने भाषणों मे आग बरसाते थे। उसमें लाला हरदयाल भी थे। 1912 में उन्होंने बैरिस्टरी की परीक्षा पास की, और भारत लौट आए।

(4)

एक बार नेहरू जी को साची में आयोजित एक बौद्ध समारोह में ट्रेन से जाना था। नई दिल्ली स्टेशन पर उनका V. V. I. P. SALOON RA-89 एक फास्ट पैसेंजर ट्रेन से जोड़ दिया गया। नेहरू जी नई दिल्ली स्टेशन पर दो अधिकारियों के साथ पहुंचे। स्टेशन मास्टर ने उनका स्वागत किया। वे उस समय सफेद शेरवानी, चूड़ीदार पाजामा और पम्पशू पहने हुए थे। उनके सामान में एक टाइप राइटर, दो डॉक-बक्से, और एक लेदर सूटकेस था। अपने सैलून में घुसते ही उन्होंने पंखे चला दिए, और सब खिड़कियां खोल दीं। सैलून के अन्दर दो दरवाजे थे। एक दरवाजा किचन, लाऊंज, कॉरीडोर, सेक्रेटरी कक्ष, स्टाफकक्ष, और बाथरूम तथा लेट्रिन की ओर जाता था। दूसरा दरवाजा सीधा V. I. P. Loung में था। किचन की ओर कॉल बेल लगी हुई थी। उन दिनों तक वातानुकूलित सैलून नहीं बने थे। अतः यह साधारण ही सैलून था। नेहरूजी के साथ तीन आदमी थे—एक प्रौढ़ दक्षिण-भारतीय P. A., एक सुरक्षागार्ड जिसके पास मामूली रिवाल्वर मात्र था, और एक निजू सेवक जो अफीमची था और अफीम खाकर जब सोता तो उसके खुर्राटे जोर-जोर से सुनाई देते थे। रेलवे की ओर से भी तीन व्यक्ति थे। कार-एटेन्डेन्ट लाहौरीलाल, एलेक्ट्रिक एक्जामिनर, और सीनियर मिस्त्री लाला अमरनाथ। रात्रि 9.50 पर ट्रेन 198 अप नई दिल्ली स्टेशन से रवाना हुई। नेहरू जी अपने कार्य मे लग गए। ट्रेन का पहिला पड़ाव कोसीकलां हुआ, उनके सेवक उतर कर नेहरू जी के पास सेवाकार्य पूछने आए, पर उन्होंने कहा—नही।

आधी रात तक नेहरू जी काम करते रहे, और फिर सो गए। उन्हें सोता देख

सेवक लोग भी सो गए। प्रात: 4.30 पर जब ट्रेन झांसी पहुंची, नेहरू जी जाग गए थे। उन्होंने कॉलबेल बजाई, परन्तु उसका कोई परिणाम नहीं हुआ, तब वे स्वयं किचन की ओर गए और देखा कि सब सोये हुए है। अत: वे चुपचाप वहां से लौट पड़े। दो घंटे बाद 6.30 बजे कॉलबेल फिर बजाई। तब उनका नौकर उनके पास आया। उसे देखकर नेहरूजी बोले—*'हजरत अब तशरीफ लाए हैं ? हम तो आपको सोता देखकर लौट आए* थे। कोई चाय-वाय का बन्दोबस्त किया है ?'

नौकर ने उत्तर दिया—'हमारे साथ सामान नहीं है। हम क्या करें ?'

नेहरू जी ने प्लेटफार्म पर कुल्लड़ों में बिकती हुई चाय की ओर इंगित करते हुए कहा—'यह जो कुल्लड़ में चाय मिल रही है, यही ला दो। हां, उसके साथ आज का अखबार भी लेते आना।'

पर इसी बीच में ट्रेन चल दी। पैसेंजर ट्रेन 2-3 मिनट ही ठहरती है, नेहरूजी न चाय पी सके, न पेपर पढ़ सके। दूसरे स्टेशन पर भी उन्हें चाय न मिल सकी।

साथ चल रहे एक रेल अधिकारी को नेहरू जी की चाय की बात ज्ञात हो गई, उसने *स्टेशन मास्टर से कहा कि अगले स्टेशन पर आप संवाद भेज दीजिए। जहां नेहरू जी के* लिए चाय, दूध, चीनी, तथा पूरा नाश्ता मिल जाय। संवाद भेजा गया तो ज्ञात हुआ कि दूध है, पर चीनी नहीं है, चाय है, पर दूध नहीं हैं। यदि कहीं सब चीज थीं भी तो कटलरी नहीं थीं। प्याले नहीं थे। क्योंकि अगले सभी स्टेशन छोटे-छोटे थे, बस्ती तथा शहर वहां से दूर थे। स्टेशन पर स्टेशन गुजर रहे थे, पर नेहरू जी को चाय न मिली। अब वे बेचैन होने लगे। आंखें सुर्ख हो गईं, परन्तु उन्होंने अपना संतुलन बनाए रखा। आखिर एक बड़ा स्टेशन बीना जंक्शन 11 बजे दोपहर में आया। यहां के स्टेशन मास्टर ने अपनी पत्नी से कह कर स्पेशल चाय बनवाकर तैयार रखी थी। बढ़िया क्रोकरी भी थी। इस प्रकार पूरे साढ़े छह घंटे बाद नेहरू जी को चाय मिली।

नेहरू ने लपक कर एक कप चाय पी, फिर पेपर हाथ में लिया। उन्हें दो अंग्रेजी के और एक उर्दू अखबार दिए गए थे। नेहरू जी ने बिस्कुट अथवा नाश्ते की मांग नहीं की, चाय पीते रहे। *उन्होंने अखबार पढ़ते-पढ़ते चार प्याला चाय पी।* वे चाय में दूध कम मिलाते थे।

आधा घंटा बाद ट्रेन अपने गंतव्य स्टेशन पर पहुंची। नेहरू जी ने मुस्कराकर खिड़की से झांका। लोगों की भारी भीड़ उनके स्वागत के लिए तिरंगे झंडे लिए खड़ी थी। उन्हें देखते ही उन्होंने नारा लगाया—'पंडित नेहरू जिन्दाबाद।'

नेहरूजी ट्रेन से उतरे और 9 कारों का काफिला सांची की ओर चल दिया।

समारोह की समाप्ति पर दिल्ली लौटती बार रात्रि को 8 बजे RA-89 स्पेशल सैलून ग्रांड ट्रंक एक्सप्रेस में जोड़ा गया। इस बार यह सावधानी उनकी असुविधा का आभास पाकर की गई थी। झांसी स्टेशन पर पूरा कैटरिंग स्टाफ दूध, चीनी, चाय, नाश्ते आदि सहित उसमें आ गया।

नेहरूजी आधी रात तक काम करते रहें। फिर उन्होंने कॅरीडोर का दरवाजा खोलकर लोगों से कहा—'अब आप लोग बहुत ज्यादा थक गए हैं, मैं बैडरूम में जा रहा हूं।

आप यहां आकर लाऊंज मे सो जाइए ।'

परन्तु कोई नही सोया । सब सतर्क जागते रहे । अंगीठी मे आग बराबर बनी रही—कोयले डाले जाते रहे । पानी और दूध गर्म रखा गया । वे कॉलबेल की प्रतीक्षा मे थे । प्रातः 4 बजे मथुरा से आगे ाकर नेहरू जी की नीद खुली । उन्होंने कॉलबेल बजाई, दो ही मिनट बाद उन्हें गर्मागर्म चाय पेश की गई । उन्होंने 4-5 प्याले चाय पी ।

दिल्ली पहुंचने से पहले उन्होंने चाय वालों को बुलाया और अपने P. A. से उनका पेमेन्ट नकद देने की आज्ञा दी । फिर उन्होंने सबको अपने पास बुलाया और अपनी जेब में से अठन्नियां निकालकर प्रत्येक को एक-एक देकर कहा—चाय पीजिए, चाय पीजिए ।

(5)

एक बार अमृतसर में स्वर्णमंदिर के एक समारोह से निबट कर नेहरू जी दिल्ली के लिए ट्रेन में सवार हुए । उस समय रात के 10 बजे थे । ट्रेन प्रातः 6.30 पर सहारनपुर पहुंची । बीच में एक स्टेशन पर लेट हो गई थी । नेहरूजी ने इंजिन-ड्राइवर को बुला कर कहा—'सुनिए, मुझे दिल्ली पहुंच कर पार्लियामेन्ट की कार्यवाही में शरीक होना है, कितनी देर और लगेगी ?'

'कम-से-कम साढ़े चार घंटे और लगेंगे । और करीब दोपहर 11 बजे दिल्ली पहुंचेंगे ।' ड्राइवर ने उत्तर दिया ।

'क्या तुम इंजन को जरा तेज नही चला सकते ? मैं पार्लियामेंट में देर से पहुंचना नहीं चाहता ।'

'मैं कोशिश करूंगा, पर मैं अपने इंजन को सजा नही दे सकता ।'

नेहरू जी हंस दिए । उन्होने कहा—'ठीक है, कोशिश कीजिए ।'

ड्राइवर ने कुछ तेजी दिखाई और ट्रेन प्रातः 9.45 पर नई दिल्ली के प्लेटफार्म पर पहुंच गई ।

नेहरू जी ने ट्रेन से उतरकर ड्राइवर को बुलवाया और उससे हाथ मिला कर कहा—'धन्यवाद ।'

ड्राइवर आस्ट्रेलिया निवासी मिस्टर करें था । नेहरू जी से हाथ मिलाने के बाद वह खुशी और उत्तेजना से भर गया । अगले दिन उसने रेलवे अधिकारियों को अपनी नौकरी से सेवा निवृत्त होने का पत्र भेज दिया । अधिकारियों ने उसे समझाया कि उसके रिटायर होने में अब कुछ ही महीने शेष हैं, उन्हें तो पूरा कर लो । परन्तु उसने स्वीकार नहीं किया ।

उसने कहा—'मैं अपने जीवन का सर्वोच्च सम्मान और पुरस्कार पा चुका हूं । अब मुझे कुछ इच्छा नही है ।'

इसके बाद वह अपने देश आस्ट्रेलिया चला गया ।

इन्दिरा गांधी के कुछ प्रेरक प्रसंग

(1)

इंदिरा जी बचपन में delighted in Pranks. बहस करने को आतुर रहती थी। अपने पिता और पितामह से भी बहस करने पर पराजित होना स्वीकार नहीं करती थी। कभी-2 वे आनन्द भवन में शोर मचातीं, ऊधम करती दौड़ा करती थी। कभी-2 अवध की बेगमें बुर्के में मोतीलाल जी से अपने मुकद्दमों के सम्बन्ध में सलाह करने आया करती थी। तब बच्ची इंदिरा उन्हें गौर से देखा करती। दादी स्वरुपरानी रुग्णा थीं और शैय्या पर शान्ति से लेटा रहना पसन्द करती थी—इंदिरा को ऊधम और शोर करने से मना करतीं और कहतीं—नन्हीं, इतने गुल न मचा, मैं बेहोश हो जाऊंगी।

आनन्द भवन में जब वह सबके साथ डिनर ले चुकती तब उसे सोने के लिए भेज दिया जाता था। सोने का कमरा ऊपर की मंजिल में था, बरामदे में होकर सीढी चढ़ना होता था। बरामदे में धीमी लाइट जलती थी—कहीं अंधेरा भी होता था—अंधेरे से डर लगता था, पर अपना यह भय वह किसी पर प्रकट नही होने देती थी। आनन्द भवन में लोग बराबर आते-जाते रहते थे। समीपस्थ भारद्वाज आश्रम में जाने आने वाले यात्री आनन्दभवन के बरामदों और लॉन में सुस्ता कर विश्राम किया करते थे। इंदिरा उन्हें चाव से देखा करती थीं। परन्तु सैंकड़ों आदमियों की भीड़ नित्य ही देखना और उनकी चिल्ल-पुकार सुनना उसे अच्छा नहीं लगता था। एकान्त पाने की इच्छा से वह अपनी पुस्तक लेकर बरगद या केले के वृक्षों के नीचे जा बैठती थी। परिवार के लोग और नौकर चाकर उन्हें पुकारा और ढूंढा करते, पर वह उनके बुलाने से वहां से नहीं उठती थीं, अपनी इच्छा से उठकर जाती थी। ग्रीष्म ऋतु में वह परिजनों के साथ मंसूरी, नैनीताल, चम्बा, काश्मीर, आदि पर्वतीय स्थानों पर जाया करती थी—वहां वह वर्फ का गिरना बड़े चाव से देखा करती थीं।

इटली की यात्रा के अवसर पर वहां के प्रधान मंत्री क्सिके के द्वारा इंदिरा जी के सम्मान में आयोजित डिनर के अवसर पर वहां उपस्थित लोगों ने उनकी सुन्दरता और गरिमा के कारण उन्हें इजिप्टियन या इथिओपियन समझकर उन्हें महारानी शेबा कहा।

महारानी शेबा वीना में पांच हजार वर्ष पूर्व हुई थीं और अपनी सुन्दरता तथा गरिमा के लिए प्रसिद्ध थीं।

(2)

एक बार रोम में जब वे जा रही थी, एक व्यक्ति ने इंदिरा की ओर इंगित करके कुछ कहा। उन्होंने पुलिस से इसकी शिकायत की और पूछा यह क्या कह रहा है?

पुलिस वाले ने बताया कि वह कह रहा है—'मैं तुम्हें प्यार करता हूं।'
पुलिस वाले ने फिर कहा—'मैं भी तुम्हें प्यार करता हूं।'

(3)

कमला जी प्रसव पीड़ा में थीं। अस्पताल के बिस्तर तक पहुंचाने के लिए वे लिफ्ट से जा रही थी कि लिफ्ट में ही इंदिरा का लगभग जन्म हो गया।

(4)

मार्च 1977 में लोक सभा के चुनाव हुए। इंदिरा जी के मुकाबले राजनारायण चुनाव लड़ रहे थे। 29 मार्च को परिणाम आने शुरू हुए। गणना के दौरान उन्होंने सुना कि राजनाराण उनसे 25000 वोटों से आगे चल रहे हैं। उन्हें अपनी हार निश्चित दीख गई। क्षण भर वे क्षुब्ध रही फिर सामान्य हो गईं। साढ़े दस बजे उन्होंने नौकरों से कहा—खाना लगाओ।

राजीव और सोनियां गांधी का खाने का मन न था। वे उदास थे। इंदिरा जी के जोर देने पर उन्होंने खाना तो नहीं खाया पर थोड़े फल ले लिए। इंदिरा जी ने बिना किसी उत्तेजना के भरपेट भोजन किया।

चिरौल और तिलक

सर वैलेन्टाइन चिरौल 'टाइम्स' के वैदेशिक सम्पादक और [illegible] विशेष संवाददाता थे। उन्हें 1910 में भारत इसलिए भेजा गया कि भारतवासियों का अध्ययन कर यह जानें कि राजनैतिक तूफान तो उठने वाला नहीं है। उन्होंने देश का दौरा कर यह रिपोर्ट भेजी थी कि महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, बंगाल और पंजाब के शहरी क्षेत्रों में रहने वाले हिन्दुओं तक ही कुछ राजनैतिक सरगर्मी है।

इससे पहले 1903 में भी वे भारत आए थे। उस समय भारत के तत्कालीन वाइसराय लार्ड कर्जन ने उन्हें दिल्ली दरबार का समारोह-विवरण लिखने को नियुक्त किया था। यहां आकर पहले उन्होंने कुछ शहरों का दौरा किया। एक बार वे ट्रेन से कहीं जा रहे थे—ट्रेन सहारनपुर स्टेशन पर रुकी। उन दिनों सहारनपुर में प्लेग फैलने की आशंका थी, इसलिए सभी यात्रियों की डॉक्टरी जांच की जाती थी। एक डॉक्टर

डिब्बे में भी आया। उसने चिरौल से पूछा कि आप कहां से आ रहे है, और उनकी नब्ज देखने के लिए उनका हाथ अपने हाथ में ले लिया। चिरौल को काले आदमी का स्पर्श सहन नहीं हुआ, उन्होंने क्रोधित होकर उन पर मुक्कों की बौछार कर दी। पास खड़े एक पुलिस अधिकारी ने उन्हें छुड़ाया और चिरौल से कहा—'यह मेडिकल अधिकारी हैं।'

चिरौल ने अपना विजिटिंग कार्ड निकालकर डॉक्टर को दिखाते हुए उसकी शिकायत करने की धमकी दी।

डॉक्टर के सरकारी काम में दखल डालने के अपराध में चिरौल पर केस चला। चिरौल ने लार्ड कर्जन से दुहाई की, पर कुछ नही हुआ और उसे डॉक्टर से लिखित क्षमा मांगनी पड़ी।

1910 में जब दूसरी बार टाइम्स के लिए रिपोर्टिंग करने भारत आए, उनका मन दुर्भावना से तो भरा हुआ ही था, अतः असत्य रिपोर्टिंग छपने ने लिए भेजते रहे। बाद में उनकी भेजी रिपोर्टों की कुछ सामग्री पुस्तक रूप में 'दी इंडियन अनरेस्ट' नाम से मैकमिलन एण्ड कम्पनी ने छापी। पुस्तक में तिलक के सम्बन्ध में अनेक भ्रमपूर्ण और भद्दी बातें लिखी गई थीं। पुस्तक की प्रशंसात्मक भूमिका सर अल्फ्रेड लायल ने लिखी थी। अन्य लोगों ने भी चिरौल की प्रशंसा की। सार्वजनिक सेवाओं के लिए भारत सरकार की सिफारिश पर उसे 'सर' की उपाधि प्रदान की गई।

अतः तिलक ने लेखक और प्रकाशक के खिलाफ 14 नवम्बर 1915 को लन्दन की अदालत में मानहानि का केस दायर किया।

चिरौल को जैसे ही केस का नोटिस मिला, वह भारत के लिए रवाना हो गया। भारत पहुंचने पर वह सेक्रेटिएट गया और केस से सम्बन्धित कागजात मांगे। न्याय-विभाग के सचिव ने अपनी जिम्मेदारी पर सभी सम्बन्धित सरकारी और गोपनीय कागजात दे दिए। केस चला। सरकार ने मि०ए० मांटगोमरी आई०सी०एस० सहायक जज को केस से सम्बन्धित तथ्यों और प्रमाणों की जांच पड़ताल करने को नियुक्त किया। मांटगोमरी ने परिश्रम करके सब कागजातों का अध्ययन किया और अपने मत निर्धारित कर सरकार को दे दिए। पर, अकस्मात् उन्हें इंग्लैंड भेज दिया गया, क्योंकि उन्होंने तिलक का पक्ष सही बताया था।

केस की सुनवाई 29 जनवरी 1919 को मि० जस्टिस डारलिंग और विशेष जूरी के सामने आरम्भ हुई। सरजॉन साइमन वादी के वकील थे और सर एडवर्ड कारसन प्रतिवादी के। निम्न आक्षेपों को मुख्य मुद्दा बनाया गया—

1. गोरिक्षा सोसायटी का आक्षेप।
2. जिमनास्टिक सोसायटी का आक्षेप।
3. रैंड और आर्यन्स आक्षेप।
4. ताई महाराज के मुकद्दमे का आक्षेप।
5. भय दिखाकर धन ऐंठने का आक्षेप।
6. जैक्सन की हत्या का आक्षेप।

इस प्रसिद्ध केस के दौरान एडवर्ड कारसन ने जो तीखे प्रश्न तिलक से किये, उन्हें हम यहां उद्धत करते हैं—

कारसन—'आप पिछली वार जेल से कब बाहर आए ?'

तिलक —'1914 में।'

'किस महीने में ?'

'जून।'

'आपने 1915 के अन्त तक यह केस नही किया।'

'मैंने अपने वकील को 1915 में यह केस चलाने के निर्देश दिए थे।'

'अक्तूबर के अन्त में ? क्या आपने भारत में कभी अपने चरित्र को वहां प्रस्थापित करने के लिए कोई केस चलाया ?'

'नहीं।'

'क्या आपके लिए इतनी दूर आकर अपना चरित्र स्थापित करने की अपेक्षा भारत में ही उसे प्रस्थापित करना अधिक आवश्यक नहीं था ?'

'मैंने इस स्थान को केस चलाने के लिए अच्छा समझा।'

'क्या इसलिए कि हम भारतीयों को नही समझेंगे ?'

'नही, एक अन्य कारण से।'

'या आपके बारे में अधिक नहीं जानेंगे ?'

'नहीं, यह धारणा नही है।'

'क्या कारण है ?'

'वास्तविक कारण यह है कि यह पुस्तक सारे साम्राज्य में पढ़ी गई है और इंग्लैंड की एक अदालत का फैसला मेरे लिए अधिक लाभदायक हो सकेगा। वह इस बदनामी को पूरे साम्राज्य में फैलने से रोक देगा।'

'फिर क्या आपका केस यह है कि आपकी योरोपियन या अखिल साम्राज्यीय प्रतिष्ठा है। क्या आपका मतलब यही है ?

'नही।'

'और आप इसे साम्राज्य के सामने धोना चाहते हैं।'

'पुस्तक ने अंग्रेजी पढ़ने वाले लोगों को प्रभावित किया है और मैं इसे भारत में उठाता और वहीं का जज होता और एक भारतीय जज मेरे पक्ष में फैसला देता तो उसे मेरे लिए बहुत ठीक न समझा जाता।'

'क्या इतनी दूर आपने आपके आने का यही कारण है ?'

'यही सबसे मुख्य कारण है।'

'तब मैं क्या यह समझूं कि भारत में जहां आप रहते है, वहां आपने स्वयं को प्रस्थापित करने के लिए कुछ नहीं किया ?'

'भारत मे यह तथ्य विदित है।'

'यही तो मैं बताने जा रहा हूं। पिछले केस में आपको 6 वर्ष की कैद की सजा

दी गई थी। जज ने आपको सजा देते हुए जो कुछ कहा, उसकी ओर मैं आपका ध्यान खींचना चाहता हूं। जज की सजा देना आपको याद है ?'

'हां है।'

'मैं सोचता हूं आप भी 25 घंटे बोले थे।'

'मैं उसके बारे में ठीक नही जानता। 20 या 25।'

'क्या जज भारतीय था ?'

'हां।'

'जज ने यह कहा था—'यदि ये गुण और प्रभाव आपके देश की भलाई के लिए प्रयोग होते तो वे इन्हीं लोगों के लिए अधिक सुख के कारण होते, जिनके हितों का आप समर्थन करते हैं।'

'दस वर्ष पूर्व आपको दण्डित किया गया था। अदालत ने आपके साथ नर्मी का वर्त्ताव किया था। जब आप एक साल की सजा काट चुके तब उसके 6 महीने कुछ शर्तों पर माफ कर दिए गए, जिन्हें आपने मान ली थी।'

'हां।'

'अब इसे सुनिए—मुझे लगता है कि वह रुग्ण मस्तिष्क और विपरीत बुद्धि ही होगी जो यह ठहराए कि उन लेखों को लिखना, जो आपके लिखे हैं, राजनैतिक आन्दोलन में उचित हैं। वे राजद्रोह से परिपूर्ण है, वे हिंसा सिखाते है, वे हत्या का समर्थन करते हैं ? क्या जज ने यह कहा था ?'

'हां, जज ने यह दृष्टिकोण अपनाया था।'

'आप बम से हत्या करने, बम बनाने का समर्थन करते है। आपने अपने पत्र में यह बात लिखी थी।'

'यह सारे भारत में प्रकाशित हुआ था।'

'क्या यही कारण है कि आपने अपने चरित्र की स्थापना के लिए भारत में कोई कार्यवाही नहीं की ?'

'नहीं, इससे यह पता नही चलता।'

'क्या सर वैलेन्टाइन चिरौल की पुस्तक में कोई भी ऐसा कथन है जो भारत में अपने ही देशवासियों में से एक जस्टिस दावर के कथन से आपके लिए अधिक कठोर है ?'

'आपका प्रश्न क्या है ?'

'यह कि क्या आप सर चिरौल की पुस्तक में कोई ऐसी बात बता सकते हैं, जो कि आलोचना के रूप में आपको विद्वान जज के उस कथन से अपने लिए अधिक क्रूर लगे, जो मैंने अभी उद्धृत किया है।'

'हां, मैं बता सकता हूं।'

'वह क्या है ?'

'वह है तथ्य से वास्तविक सम्बन्ध। पुस्तक में तथ्यों के विशेषक्रम द्वारा मुझे इन हत्याओं से सम्बन्धित किया गया है।'

'क्या वह व्यक्ति जो हिंसा सिखाता है और हत्याओं का समर्थन करता है, उस

व्यक्ति से कम अपराधी है जो उन्हें कराता है !'

'अगर ऐसा है भी तो मैं उसे स्वीकार नहीं करता।'

'क्या वह उस व्यक्ति से कम अपराधी है जो उसे कहता है ?'

'यदि प्रश्न का प्रथम भाग ठीक है तो आप किसी व्यक्ति द्वारा हत्या का समर्थन करने वाले और अन्य सब भाग को सही मान कर मुझसे यह पूछ रहे हैं कि उससे जो निष्कर्ष निकाला गया है वह ठीक है अथवा नहीं। मैं कहता हूं कि अगर यह ठीक है तो दूसरा भाग भी कुछ ठीक हो सकता है।'

'मैं आपसे फिर पूछता हूं कि क्या आप उस व्यक्ति में, जो हत्या करता है और जो उसकी प्रेरणा देता है, कोई भेद करते हैं ?'

'तब भी एक भेद है।'

'वह क्या है ? उन दोनों में से आप किसे साहसी समझते हैं ?'

'मैं नहीं कह सकता। यह केवल काल्पनिक स्थिति है।'

इस प्रकार जिरह के पहले दौर में कारसन तिलक से यह स्वीकार नहीं करा सके कि उनका हत्या से अथवा हिंसक कार्यवाहियों से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध था।

यह जिरह चार दिन तक चली।

जब कारसन हिंसात्मक कार्यवाहियों से उनका कोई सम्बन्ध स्थापित न कर सके तो वे उनसे पूछ बैठे—'स्वराज्य से आपका क्या तात्पर्य है ?'

'साम्राज्य के भीतर ही स्वशासन है। इसके अर्थ यह नहीं है कि अंग्रेजों को बाहर किया जाय, लेकिन उनके हाथों में पूर्ण प्रशासकीय नियन्त्रण अवश्य नहीं रहेगा।

'क्या आप बता सकते हैं कि परांजपे के लेख (परांजपे अपने पत्र 'कल' में छापते थे, और जिसे तिलक पढ़ते भी नहीं थे) बम चलाने के लिए उकसाते थे अथवा नहीं ?'

'हर व्यक्ति को अपने बचाव की तैयारियों का अधिकार है और उनके प्रत्येक मित्र को उनकी सहायता करने का अधिकार है।'

'क्या आपके सहयोगी आमतौर से ऐसे ही है ?'

'मैं इस अपराध (राजद्रोह) के प्रति वैसा गम्भीर रुख नहीं लेता, जैसा कि आप लेते हैं।'

कारसन इतने अधिक प्रश्न पूछते गए, कि जस्टिस डार्लिंग को उन्हें प्रश्न कम करने के लिए कहना पड़ा। प्रतिपक्ष की परेशानी कम करने के लिए तिलक ने स्वतः विशद रूप में अपनी बात कह दी। उन्होंने कहा—"सन 1906 में 'मित्र मेल क्लब' में, जिसका मैं भी सदस्य था, मैंने स्वयं उन्हें वैधानिक तरीकों पर चलने की चेतावनी दी थी और गणेश सावरकर से भी मैंने यही कहा था। वे लोग केवल 'गर्म दिमाग' व्यक्ति थे। बंगाल के स्वदेशी और बायकाट आन्दोलन की प्रशंसा इसलिए की थी कि उन्होंने अपनी शिकायतें दूर करने के लिए इस आन्दोलन का राजनैतिक अस्त्र के रूप में प्रयोग किया था।'

इस पर कारसन ने प्रश्न किया—'क्या आप बंगालियों की कानून भंग करने के लिए

प्रशंसा कर रहे थे ?'

'कानून भंग करने के लिए नहीं, दमन का सामना करने के लिए।'

'मैं समझता हूं—हर आदमी को स्वयं अपने लिए सोचना चाहिए।'

'हर व्यक्ति को तर्क संगत रूप में सोचना चाहिए।'

'यदि वह यह समझता है कि कानून ठीक नहीं है, तो उसको तोड़ना ही चाहिए ?'

'यदि कानून भंग होगा तो आपको दंड भी सहना पड़ेगा। हम इसी को सत्याग्रह कहते हैं।'

'इससे यह बात स्थापित होती है कि ईश्वर की कृपा से जब समय आता है, तब निर्बल लोग भी कठोर और अत्याचारी शासकों के विरुद्ध उठ खड़े हो जाने को तैयार हो जाते हैं। क्या ये अंग्रेज थे ?'

अधिकारी गण।'

'क्या यह ब्रिटिश सरकार थी ?'

'नही, मैं सरकार और उसके अधिकारियों के बीच भेद करता हूं।'

'लेकिन सरकार में अधिकारी होना ही चाहिए। यह अस्पष्ट इकाई नही है।'

'एक घर में कमरे होते हैं, लेकिन एक कमरे के अर्थ घर नही होते।'

'क्या आप वलवा फैला रहे थे ?'

'निश्चय ही नहीं।'

'यह आप करना नहीं चाहेंगे ?'

'नहीं, मैंने यह कभी नहीं किया है और न करना चाहता हूं।'

'आप दो बार इसके लिए सजा पा चुके हैं।'

'हां, एक व्यक्ति को सजा दी जा सकती है, लेकिन मतलब यह नहीं कि वह अपराधी ही हो।'

'राजनैतिक बलिदान केस (युगान्तर केस) जो अभी चल रहा है, क्या उससे प्रेरित लोग अपने प्राणों की परवाह न कर स्वराज्य प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करेंगे।'

'हां, अवश्य, लेकिन सत्याग्रह के द्वारा।'

'लेकिन आप कैसे जानते हैं, यह सत्याग्रह के द्वारा है।'

'इसका तात्पर्य है कि यदि कानून बुरे हों, तो उन्हें परिणाम भुगतना ही चाहिए। यदि आप यह नहीं करें तो आप बुरे कानून को नही हटवा सकते।'

'बम के खतरे के बारे में आप से अधिक कोई नही जानता था।'

'हर कोई जानता था।'

'मैं आपसे ही पूछ रहा हूं। आप बहुत ही कुशाग्र बुद्धि व्यक्ति हैं।'

'मुझे जैसे भारत में सैकड़ों हैं।'

'मैं नही सोचता कोई आपके बराबर है।'

'खैर, मैं यह नही जानता। मेरी राय है कि सैकड़ों हैं।'

'यदि कोई व्यक्ति यह निष्कर्ष निकाले कि जो ब्रिटिश अधिकारी निरंकुश शक्तियों का प्रयोग कर रहा है, उसे बम की आशा करनी चाहिए, तो आप यही कहते हैं ?'

'नही। एक देश में ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जाती है कि जिससे, जैसे आयरलैंड में, वन बनने लगते हैं।'

'मेरा ख्याल है हमें इस केस में उस देश को नही खीचना चाहिए। क्या बंगाल का विभाजन बमसाजी का कारण था ?'

'ठीक वैसे ही जैसे कि आयरलैंड और आल्सटर।'

'आलस्टर की चिन्ता न करें, वह अपनी चिन्ता आप कर लेगा। इस केस में व्यक्तिगत बातें लाने के प्रयत्न करने से आपको फायदा नही होगा।'

'मैं केस में व्यक्तिगत बातें नहीं ला रहा हूं। आप लेखों में आयरलैंड के हवाले पायेंगे।'

'मि० जैक्सन की हत्या के लिए कितने लोगों को फांसी दी गई थी ?'

'मैं नहीं जानता, पर मैंने सुना था वे तीन थे।'

'क्या वे सब आपकी जाति के थे—चित्तपावन ब्राह्मण ?'

'मैं नहीं जानता।'

'क्या आपने इसे जानने का प्रयत्न किया ?'

'नहीं।'

'क्या वे आपकी जाति के थे ?'

'हो सकते थे।'

'आप चित्तपावन ब्राह्मणों के नेता थे ?'

'मैं चित्तपावन ब्राह्मण हूं।'

'क्या आप उनके नेता नहीं थे ?'

'मैं सभी लोगों का नेता हूं।'

'जैक्सन की हत्या के षड्यन्त्र में नासिक में कितने लोगों को सजा दी गई थी ?'

'नहीं जानता।'

''क्या वे सब ब्राह्मण थे ?''

'नहीं जानता।'

'क्या कभी आपने जांच पड़ताल की थी ?'

'नहीं।'

इस स्थान पर जस्टिस डार्लिंग तक कारसन के उत्तेजक और अपमान जनक ढंग से प्रश्न पूछने के तरीके से तंग आ गए और उन्होंने कहा—'मुझे लगता है कि यही बार-बार दुहराया जा रहा है।'

कारसन—'क्या बम बनाना आसान बात है ?'

तिलक—'हां, बहुत आसान, इसमें रुपया नहीं लगता। बन्दूक पृथक चीज है, बम पृथक।

'क्या आप यह सब ब्रिटिश सरकार की भलाई के लिए लिख रहे थे ?'

'समाज सुधार के लिए।'

'सरकार सोचे कि भारतवासियों को स्वराज देना भारत के लिए हितकर नहीं होगा, तो उसे क्या करना चाहिए ?'

'यदि सरकार इस पर दृढ़ बनी रहे तो गलती होगी क्योंकि इससे सरकार और जनता के बीच में खाई पड़ जायेगी।'

'यह आपकी राय है ?'

'यह वह है जो मैं चाहता हूं।'

'यदि सरकार अन्य प्रकार से सोचे तो उसे क्या करना चाहिए।'

'तब यह चलता रहेगा।'

'बम चलते रहेंगे ?'

'आवश्यक नहीं कि बम, बल्कि असन्तोष।'

'क्या आप बतायेंगे कि क्या आपने कभी लोगों को यह सलाह दी थी कि यदि वैधानिक तरीके असफल हों तो उन्हें शस्त्रों का सहारा लेना चाहिए ?'

'नहीं।'

'क्या आप वी० एम० भट्ट को जानते हैं ?'

'जानता हूं। उन्हें नासिक केस में सजा दी गई और उनकी रिहाई पर उन्हें केसरी-मराठा कार्यालय में काम दिया था। उन्होंने चिरौल केस की फाइलें देखने में भी मेरी सहायता दी है।'

'क्या वे अभी भी आपके यहां काम कर रहे हैं ?'

''हां।'

'आप यहां इंग्लैंड में चीनी का प्रयोग न कर अपने देश का गुड़ प्रयोग करते हैं ?'

इस प्रश्न पर जस्टिस डार्लिंग मजाक के मूड में आकर कहने लगे—'क्या सर जॉन साइमन भी भारतवासी वकील हैं ?'

'क्या विनायक सावरकर को इंग्लैंड आपने ही भेजा था ?'

'नहीं।'

'क्या आपने उन्हें पुरस्कार दिए जाने की सिफारिश की थी जिससे वे इंग्लैंड आ सकें।'

'नहीं।'

'क्या आपको पिछली 31 जुलाई (1918) को सरकार के एक आदेश द्वारा सार्वजनिक भाषण देने से वर्जित कर दिया था।'

'हां।'

इसके बाद बहस समाप्त हो गई। यह केस 11 दिन चला। 21 फरवरी, 1919 को संध्या 5·50 पर इसका फैसला हुआ। फैसला मैकमिलन-एण्ड कम्पनी के पक्ष में हुआ। तिलक हार गए। इस केस में तिलक का 3 लाख रुपया व्यय हुआ, जो इंग्लैंड में ही चन्दे से एकत्र किया गया था।

तिलक ने यह केस लन्दन में किया था। वे 30 अक्तूबर 1918 को इंग्लैंड पहुंचे थे, और 6 नवम्बर 1919 को वहां से भारत के लिए रवाना हुए। वे पहले 10 महीनों तक

हावले प्लेस 10 मेडविले में रहे, और अन्तिम 3 महीने तालवट रोड नं० 60 बेगवाटर में। वे एक मैकनल्टीज परिवार के साथ पेइंगगेस्ट के रूप में रहे थे। श्रीमती मैकनल्टीज और कुमारी मैकनल्टी ने उनके लिए चावल, तरकारियां, पूरियां और कभी-कभी पकवान बनाना सीख लिया था। फिर जब वे तालवट रोड में रहने लगे तो वहां उन्हें एक कन्नड़ ब्राह्मण मिल गया जो पहले कूच विहार के महाराजा की नौकरी में था। उसने तिलक और उनके साथियों की अच्छी सेवा की।

तिलक ने पहले कभी पतलून नहीं पहनी थी, लेकिन अब पहनने लगे थे। उनका कोट लम्बा और बन्द गले का होता था। खुले गले का कोट और टाई कभी नहीं पहनी। सिर पर पगड़ी पहनते थे। उन्हें काले रंग के वस्त्र पसन्द थे। वे प्रातः 6 बजे उठते, चाय पीते और समाचार-पत्र पढ़ते थे। कहीं जाने के लिए बस या घोड़ा गाड़ी का उपयोग करते थे। नामजोशी उनका निजी सेवक, उनके साथ रहता था। घूमने-फिरने या दर्शनीय स्थान, मेला तथा तमाशा वे कभी नहीं गए। पार्लियामेंट में सदस्यों से मिलने कभी-कभी जाते थे। एशियाटिक सोसायटी की लायब्रेरी में प्रायः जाते थे। अमेरिका वे न जा सके। वे इंग्लैंड से 6 नवम्बर 1919 को चल दिए और 27 नवम्बर को बम्बई पहुंचे। बम्बई तट पर लाखों लोगों ने उनका स्वागत किया और कार में बिठाकर भारी जुलूस निकाला गया

अन्तिमवेला

तिलक बम्बई में थे। 12 जुलाई से उन्हें बारी-बारी से मलेरिया ज्वर हो जाता था। दीवान चमनलाल उन दिनों बम्बई क्रानिकल में काम कर रहे थे। वे 20 जुलाई को तिलक को देखने आए। उन्होंने सुझाव दिया कि वे कुछ दिन के लिए काश्मीर चले जाए। पर तिलक ने कहा—मेरा काश्मीर तो सिंहगढ़ का एकान्त स्थान है। यहीं मुझे स्वास्थ लाभ मिलता रहा है।

चमनलाल ने उनसे ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की उपाध्यक्षता स्वीकार करने का आग्रह किया, उन्होंने इसे स्वीकार किया।

दीवान चमनलाल उन्हे मोटर में बैठाकर घुमाने ले गए, पर रात को तिलक को तीव्र ज्वर चढ़ आया और वे सरदार गृह में बिस्तर पर पड़ गए। 23 जुलाई उनका जन्म दिन था। 26 जुलाई की रात से उनका ज्वर अत्यधिक तेज हो गया और यह पता चला कि दायें फेफड़े के नीचे का भाग रोग ग्रस्त है। निमोनिया के लक्षण दीखने लगे। परिवार के लोग उनके पास एकत्र हो गए। 28 जुलाई को उनका टेम्प्रेचर नार्मल हो गया, नाड़ी भी ठीक चलने लगी। परन्तु शाम को फिर ज्वर चढ़ गया और हृदय की गति निर्बल पड़ने लगी। चेतना चली गई, और बेहोशी में बड़बड़ाने लगे। 29 जुलाई को यही स्थिति रही। पेट फूल गया। 30 जुलाई को हृदय रोग का दौरा हुआ, पर डाक्टरों ने कुछ

संभाला। 31 जुलाई को भी बेहोशी की हालत में रहे। नाड़ी की गति ठीक न थी, हृदय निर्बल होता गया। 1 अगस्त को उनके हृदय की गति बहुत ही मन्द पड़ गई और उन्हें सांस लेने में भी कठिनाई होने लगी।

29 जुलाई रात्रि 1 बजे उन्होंने कहा—'यदि स्वराज्य प्राप्त नही किया गया तो भारत सम्पन्न नहीं होगा।'

1 अगस्त की मध्य रात्रि के लगभग जो 5-6 डाक्टर उनकी चिकित्सा में थे, वे तिलक के कमरे से बाहर आए और एकत्र लोगों से कहा—अब तिलक को बचाना हमारी शक्ति से परे है।

तिलक को शैय्या से उतार कर भूमि पर लिटा दिया गया और एक घंटे बाद 1 अगस्त रात्रि 12-10 पर उनकी मृत्यु हो गई।

मृत्यु के समय उनके होठ बड़बड़ा रहे थे—'गांधी देश को कहां ले जाएगा?'

जिन दिनों उनकी मृत्यु हुई, बम्बई सरकार पूना में थी। पुलिस कमिश्नर, म्यूनिसिपल कमिश्नर और अन्य सम्बन्धित लोगों ने तार द्वारा उनसे सम्पर्क किया। पुलिस कमिश्नर को तिलक की शव यात्रा का मार्ग निर्धारित करना पड़ा था। उसी के द्वारा तिलक की अन्त्येष्टी क्रिया चौपाटी पर करने की अनुमति प्राप्त की गई थी, इस शर्त पर कि तिलक के अतिरिक्त फिर किसी व्यक्ति की अन्त्येष्ठी चौपाटी पर न की जायगी। उनकी शव यात्रा में सारी बम्बई उमड़ पड़ी थी। दादाभाई नौरोजी की शव यात्रा इससे फीकी पड़ गई।

कुछ समय बाद अन्त्येष्ठी के स्थान पर तिलक की मूर्ति स्थापित कर दी गई।

तिलक के अवशेष 3 अगस्त को पूना लाए गए और भारी जुलूस में उनके निवास स्थान ले जाए गए। तिलक के ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र और उनके छोटे दामाद डॉ॰ साने उनके फूलों को लेकर इलाहाबाद गए, जहां 8 अगस्त को संगम में प्रवाहित कर दिए गए।

तिलक के बाद

9 जनवरी 1915 को गांधी जी 23 वर्ष तक अफ्रीका में ख्याति प्राप्त कर भारत लौटे। जिस समय वे आए, उस समय प्रथम विश्व युद्ध बड़ी तेजी हो रहा था और सब यह जानना चाहते हैं कि गांधी जी अब क्या करेंगे। गोखले गांधी जी के प्रशंसक बन चुके थे, उन्हीं के कहने से वे अफ्रीका छोड़ भारत आए थे। गांधी जी भी गोखले को अपना पथ प्रदर्शक मानते थे। गोखले ने कहा—मेरे जीवन का यह सौभाग्य है कि मैं गांधी जी को घनिष्ठ रूप से जानता हूं। उन जैसी पवित्र, शुद्ध हृदय, साहसी और उच्च आत्मा इस पृथ्वी पर कम आती हैं। वे पुरुषों के पुरुष, चरित्रनायकों के चरित्रनायक, देशभक्तों के देशभक्त हैं।

गांधी जी के भारत पहुंचने के 2 महीने बाद ही गोखले की मृत्यु हो गई। इसके कुछ दिन पहले गांधीजी तिलक के पास सिंहगढ़ में रहे थे। इन 5 वर्षों में गांधीजी ने भारत का देश व्यापी दौरा कर राजनैतिक वातावरण और जनता का मन अध्ययन कर अपना राजनैतिक जीवन प्रभावशाली बना लिया था। अब तिलक की मृत्यु के बाद वे भारत के एक मात्र शीर्ष नेता थे। उनके अजेय अस्त्र सत्य और अहिंसा की ओर छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष सभी खिचते गए। श्रीमती अवन्तिका गोखले ने भी गांधी जी के चम्पारण सत्याग्रह में स्वयंसेविका बनकर भाग लिया था।

तिलक पर राजद्रोह का केस

तिलक पर एक केस ऐसा चलाया गया जो सर्वथा आधारहीन था। उन्होंने अपने पत्र 'मराठा' और 'केसरी' में कुछ लेख भारतीय स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में लिखे थे। स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का नारा इन पत्रों में गूंजता रहता था। साथ ही उनके कार्यालय से तलाशी में एक पोस्टकार्ड मिला, जिसमें तिलक ने दो पुस्तकों के नाम लिख कर किसी से पूछा था कि क्या यह पुस्तकें पूना या बम्बई के किसी पुस्तकालय में मिल सकें तो मंगालें। इन पुस्तकों की आवश्यकता उन्हें explosive act बनने के कारण जो उस समय सरकार द्वारा बनाया गया था, विस्फोटक पदार्थो की परिभाषा करने के लिए आवश्यकता थी। अदालत में उन पर इसी पोस्टकार्ड के कारण राजद्रोह का केस चला। इस केस में तिलक ने अपनी पैरवी और बहस स्वयं की। तिलक ने आठवें दिन 21 घंटे में अपनी बहस समाप्त की। उनकी बहस के बाद सरकारी वकील बोलने के लिए खड़े हुए। उसने कहा—'मुझे तिलक की बकवास सुबह से सुबह तक सुननी पड़ी। वे जो भी धूल इकट्ठी कर सकते थे, उसे इकट्ठी कर आखों में झोंकना चाहते हैं। तिलक के इन लेखों का पूर्ण लक्ष्य यह हैं कि यदि सरकार ने उनकी मागें नहीं पूरी की तो वे बम बनायेंगे। बम फेंके जाने का सीधा रास्ता वे खोलना चाहते है।'

सरकारी वकील ने अपनी बहस 4 घंटों में समाप्त की।

जज ने 124 ए और 153 ए धारा के अनुसार अपना फैसला देते हुए तिलक से कहा—मैं आपको आजीवन निर्वासन का दण्ड दे सकता हूं। परन्तु आपकी आयु को देखते हुए दोनों अपराधों में तीन-तीन वर्ष निर्वासन की सजा देता हूं। इस प्रकार 6 वर्ष आपका निर्वासन होगा। साथ ही 1000 रुपया जुर्माना भी था।

सजा सुनाते ही जज कुर्सी छोड़ कर चला गया, और पुलिस ने तिलक को अपनी हिरासत में ले लिया। उन्हें पहिले कोलाबा टर्मिनस स्टेशन ले गए और साबरमती जेल भेज दिया गया। उन्होंने अपनी 53 वी वर्ष गांठ 23 जुलाई 1908 जेल में ही मनाई। साबरमती जेल से 23 सितम्बर 1908 को हटाकर मांडले जेल में भेज दिया गया।

मांडले जेल में वे बाहरी दुनिया से पूर्ण रूप से अलग पड़ गए। उन्हें महीने में एक पत्र घर से प्राप्त होता था, और वे 1 महीने में एक पत्र घर भेज सकते थे। उनके भानजे साल में दो बार मिलने आ पाते थे। भेंट जेलर के सामने ही होती थी। जेल के एक मुसलमान वार्डर और ब्राह्मण रसोइए के द्वारा ही उनके 6 वर्ष के कारावास की सत्य कहानी लोगों को ज्ञात हुई।

आरम्भ में उन्हें कठोर कारावास दिया गया था, पर बाद में सरल कर दिया गया। उन्हें लिखने पढ़ने की अनुमति दे दी गई। इस सुविधा का लाभ उन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गीता रहस्य' लिखने में उठाया। बाद में गीता रहस्य का अनुवाद अनेक भाषाओं में हुआ।

वे जो पुस्तकें पढ़ने के लिए मांगते वे उन्हें दी जाने लगी। इससे उनका एकाकीपन जाता रहा। धीरे-2 इनके पास 400 पुस्तकें हो गईं। लिखने के लिए खुले कागज नही दिये जाते थे, जिल्द बंधी पृष्टांकित कापियां दी जाती थीं। कोई कलम तराश चाकू नही दिया जाता था। स्याही या कलम भी नहीं दी जाती थी। पेन्सिल दी जाती थी, घिसने पर जेलर का चपरासी उसे बनाता था।

'गीता रहस्य' अक्टूबर 1910 में लिखना आरम्भ किया और फरवरी 1911 में समाप्त किया। उनके कुछ दांत गिर गए थे।

जेल में कई वर्ष काम करने वाले एक मुसलमान वार्डर ने कहा था— मैंने अपना पूरा जीवन यहीं व्यतीत किया है और बहुत से कैदी देखे हैं। लेकिन तिलक जैसा नही देखा। उनके आसपास की सभी चीजों को नवजीवन प्राप्त हो गया था। जिन पेड़ों पर पहले कभी फल या फूल नहीं आए थे, उनमें फलफूल आने लगे थे।

परन्तु उनके जाने के बाद उनमें फल फूल आने फिर बन्द हो गए।

उनका ध्यान वेदों की ओर गया। उन्होंने जर्मन भाषा सीखी और वेवर मूल रूप में पढ़ा। फ्रेंच भी पढ़ी। ह्यूगो की फ्रेंच ग्रामर पढ़ी।

उनके रसोईए वासुदेव कुल कर्णी ने बताया—

'जेल में वे चावल गेहूं दाल खाते थे, परन्तु मधुमेह बढ़ने पर उसे छोड़ सत्तू या जंगली गेहूं की बनी पूड़िया खाते थे। दूध, दही, घी और फल भी लेते थे। गर्मी में दो बार न्हाते थे, ठंडे पानी का प्रयोग ही करते थे। रात देर तक पढ़ते रहते थे। पर 10 बजे सो जाना अनिवार्य था। मांडले जेल में संध्या करते, गायत्री मंत्रों का पाठ सस्वर करते। शाम को चाय या शर्बत पीते। जेल नियम के अनुसार शाम का भोजन 5 बजे खा लेना होता था। सांयकाल उनका कोठरी का ताला बन्द कर दिया जाता था। सोने से पहले एक घंटे साधना करते। तिलक की पत्नी बीमार रह कर मर गई। उनकी मृत्यु 7 जून 1912 को हुई। तिलक को तार से सूचना दी गई थी। तिलक अपने खाने में से गोरइयों को भी दे देते थे। वे ढीड बनती गईं। वे उनकी मेज कुर्सी किताबों कागजों पर बैठ जाती। जब खाना खाने बैठते तो वे चारों ओर इकट्ठी हो जातीं और कन्धों पर बैठ जातीं।'

रिहाई का समय आने पर रेलवे साइडिंग पर एक डिब्बा और इंजन तैयार खड़े

किए गए। उन्हें जेल से लाकर उसमें बैठा कर डिब्बा रेलगाड़ी से जोड़ दिया गया। प्रत्येक स्टेशन पर डिब्बे की खिड़कियां बन्द कर दी जातीं। फिर उन्हें S.S. MAYO जहाज पर चढ़ा दिया गया। यह जहाज मद्रास तक आया। मद्रास 15 जून को पहुंचे। तुरन्त ही तिलक को दूसरी रेल गाड़ी के द्वितीय श्रेणी के डिब्बे में बैठाया गया। सब दरवाजे-खिड़कियां बन्द कर दी गईं। आधी रात में पूना के पास हड़पर में गाड़ी रोककर उन्हें उतार लिया गया और अर्द्धरात्रि की घोर अंधेरी रात में उनके घर द्वार पर ले जाकर छोड़ दिया गया।

द्वार पर खड़े होकर उन्होंने द्वार खटखटाया, परन्तु पहरेदार ने द्वार नहीं खोला। बार-बार खटखटाने पर उसने पूछा—'कौन है?'

तिलक ने कहा—'मैं हूं तिलक, द्वार खोलो।'

हैरत में पड़कर द्वारपाल ने द्वार खोला और स्वामी को देख चरणों में लोट गया। क्षण भर में ही यह समाचार सारे पूना में फैल गया और सुबह तक दर्शनार्थियों की भारी भीड़ द्वार पर एकत्र हो गई।

मांडले जेल में 6 वर्ष काटकर 16 जून 1914 को वे पूना पहुंचे थे।

तिलक के कुछ प्रेरक प्रसंग

(1)

तिलक का जन्म रत्नगिरि में 23 जुलाई 1856 को हुआ। वास्तविक नाम था—केशव, परन्तु बचपन का नाम—बाल।

फिर नाम रखा गया बाल गंगाधर तिलक। इनके पिता का नाम था रामचन्द्र तिलक।

10 वर्ष की आयु में ही उनकी कुशाग्र बुद्धि का पता चल गया। एक बार पिता ने एक कठिन प्रश्न हल करने को दिया, जिसे वे समझते थे कि 8-10 दिन में भी हल न होगा। परन्तु बालक तिलक ने उसे 2 घंटे में हल करके पिता को दिखा दिया। इनाम में उन्हें 'कादम्बरी' मिली।

अपने बालकाल में जब वे रत्नगिरि के प्राइमरी स्कूल की छोटी कक्षा में थे, तब उनके सहपाठी मूंगफली लाए। आधी छुट्टी में उन्होंने मूंगफलियां खाईं और छिलके फर्श पर इधर उधर फेंक दिए। छुट्टी के बाद जब अध्यापक कक्षा में आये तो छिलकों को देखकर नाराज हुए और लड़कों को छिलके एकत्र कर फर्श साफ करने की आज्ञा दी। अन्य सब लड़के तो छिलके एकत्र करने लगे, परन्तु तिलक ने नहीं किए। उनसे अध्यापक ने [illegible] कहा—मैंने मूंगफली नहीं खाई है। मैंने छिलके नहीं किए। परन्तु सहपाठियों ने विरुद्ध गवाही दी और कहा कि इसने भी मूंगफली खाई है।

(9)

एक बार कालेज के सहपाठी कालेज की छत पर बैठे आपस में बातें कर रहे थे। उनमें से एक ने प्रश्न उठाया कि यदि इमारत में आग लग जाए और सीढ़ियों से नीचे उतरने का प्रश्न ही न रह जाए तो कैसे बचेंगे?

जब सब बच निकलने के सम्भव उपायों पर बहस कर रहे थे, तभी तिलक ने धोती ऊपर बांधी और कहा—'ऐसे।' यह कहकर वे दो मंजिली इमारत से नीचे कूद पड़े।

सब चकित रह गए और शीघ्रता से सीढ़ियों से नीचे उतरे, तो देखा कि तिलक हंसते-हंसते सीढ़ियों से चढ़कर ऊपर आ रहे हैं।

(10)

कालेज के सहपाठियों ने तिलक को 'शैतान' की उपाधि दी थी, क्योंकि उनका कुछ भरोसा नहीं, कब क्या कर बैठें।

(11)

एक विद्यार्थी सौंदर्य का उपासक था, और विचित्र तौर-तरीके अपनाता था। अपने बिस्तर पर गुलाब की पंखुड़ियां बिछाकर सोता और गर्मी में चमेली के फूल। एक बार तिलक उसके कमरे में घुस गए, उसका बिस्तर अस्त-व्यस्त कर दिया, पलंग पर बिछे फूलों को रौंद डाला। उसकी बोतलें और गिलास फोड़ डाले और उसे खेल के मैदान में घसीटकर ले गए। फिर कहा—स्वास्थ्य के लिए व्यायाम आवश्यक है, दवाइयां और फूल नहीं।

(12)

सिंहगढ़ की पहाड़ी पर अपने विश्राम स्थल में जाकर उन्हें बहुत सुख मिलता था। इसी पहाड़ी पर जब गांधीजी भी कुछ दिन रहे, तब श्रीमती प्रेमलीला बाई थैकरसे ने उनके लिए पर्ण कुटी बनाई थी।

(13)

गोपाल कृष्ण गोखले डेकन एजुकेशन सोसाइटी में 1885 में सम्मिलित हुए थे। वे गणित, अंग्रेजी, अर्थशास्त्र, और इतिहास पढ़ाते थे। परन्तु उन्होंने स्वीकार किया कि बौद्धिक योग्यता में वे तिलक से बहुत पीछे हैं।

(14)

तिलक से एक बार एक अंग्रेज ने पूछा—'स्वराज मिलने पर आप क्या करेंगे?'

'मैं किसी विश्वविद्यालय में गणित पढ़ाऊंगा।'

'तिलक अपने सार्वजनिक जीवन के 40 वर्षों में एक बार भी कांग्रेस के अध्यक्ष नहीं बने। चार बार उनके नाम पर विचार किया गया, पर उन्होंने हर बार अस्वीकार कर दिया।

अध्यापक ने अपना आदेश पालन न करने पर बेंतों से मारने की धमकी दी। तिलक ने अपनी पुस्तकों का थैला उठाया और विरोध में कक्षा से निकल गए।

अध्यापक ने तिलक के पिता से शिकायत की, परन्तु पिता ने कहा—तिलक सत्य कहता है, उसे घर से बाहर कोई चीज खाने या खरीदने की आदत नहीं है।

(2)

तिलक के पितामह प्रौढ़ावस्था में संन्यासी हो गए थे। 1857 के भारतीय विद्रोह के दिनों में वह बनारस में थे। वे एक बार रत्नगिरि आए थे, तभी तिलक को नाना साहेब, तांत्या टोपे, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, अवध की बेगम, और दिल्ली सम्राट के बारे में उनकी वीरता की बातें बताया करते थे।

(3)

गोखले के एक अंग्रेज मित्र ने एक बार कहा था कि यदि तिलक अब से 100 वर्ष पूर्व जन्मे होते तो वे अपने लिए एक राज्य निर्मित कर लेते।

(4)

अपने जीवन के अन्तिम 20 वर्षों में वे महाराष्ट्र के मुकुट-विहीन राजा कहे जाते थे।

(5)

उनका शरीर दुबला पतला था, परन्तु कालेज में आते ही उन्होंने अपना शरीर व्यायाम, मालिश और तैयारी से स्वस्थ और पुष्ट बना लिया। इसमें वे बहुत समय लगाते थे— पढ़ाई की ओर उदासीन रहते थे। फलतः कालेज की प्रथम वर्ष की परीक्षा में वे फेल हो गए। इससे उन्हें दुख हुआ, और आगे से पढ़ाई की ओर अधिक ध्यान देने लगे। आगे वे कभी फेल नहीं हुए। 1876 में गणित में प्रथम श्रेणी में आनर्स सहित पास हुए।

ज्योतिष के प्रायोगिक ज्ञान को प्राप्त करने के लिए वे हाथ में टेलिस्कोप लिए प्रोफेसर छत्रे के साथ जागते हुए रातें काट देते थे। जब वे मानव शरीर की रचना का और विशेषकर हृदय और खोपड़ी के सम्बन्ध में अध्ययन कर रहे थे, तब वे एक बैल का हृदय और खोपड़ी अपने कमरे में ले आए और उन्होंने उनका तुलनात्मक अध्ययन किया।

(6)

तिलक अपने परीक्षा पत्रों में से कठिन प्रश्न पहले किया करते थे और सरल प्रश्न छोड़ देते थे।

(7)

अपनी एल०एल०बी० की परीक्षाओं के अध्ययन में उन्होंने अंग्रेज मीमांसकों के हिन्दू लॉ को पढ़ना अस्वीकार कर दिया और मनु, याज्ञवल्क्य और नारद की मूल कृतियों को पढ़ा। वकालत पास करने पर भी उन्होंने किसी न्यायालय में प्रेक्टिस नहीं की।

(8)

एक बार जब वे कक्षा में अपने साथियों को 'इक्विटी' की परिभाषा बता रहे थे, तब अध्यापक रानाडे विद्यार्थियों के अनदेखे ही कक्षा में चले आए और एक कोने में बैठ सुनने लगे। तिलक के विस्तृत ज्ञान पर वे चकित रह गए।

(9)

एक बार कालेज के सहपाठी कालेज की छत पर बैठे आपस में बातें कर रहे थे। उनमें से एक ने प्रश्न उठाया कि यदि इमारत में आग लग जाए और सीढ़ियों से नीचे उतरने का प्रश्न ही न रह जाए तो कैसे बचेंगे ?

जब सब बच निकलने के सम्भव उपायों पर बहस कर रहे थे, तभी तिलक ने धोती ऊपर बांधी और कहा—'ऐसे।' यह कहकर वे दो मंजिली इमारत से नीचे कूद पड़े।

सब चकित रह गए और शीघ्रता से सीढ़ियों से नीचे उतरे, तो देखा कि तिलक हंसते-हंसते सीढ़ियों से चढ़कर ऊपर आ रहे हैं।

(10)

कालेज के सहपाठियों ने तिलक को 'शैतान' की उपाधि दी थी, क्योंकि उनका कुछ भरोसा नहीं, कब क्या कर बैठे।

(11)

एक विद्यार्थी सौंदर्य का उपासक था, और विचित्र तौर-तरीके अपनाता था। अपने बिस्तर पर गुलाब की पंखुड़ियां बिछाकर सोता और गर्मी में चमेली के फूल। एक बार तिलक उसके कमरे में घुस गए, उसका बिस्तर अस्त-व्यस्त कर दिया, पलंग पर बिछे फूलों को रौंद डाला। उसकी बोतलें और गिलास फोड़ डाले और उसे खेल के मैदान में घसीटकर ले गए। फिर कहा—स्वास्थ्य के लिए व्यायाम आवश्यक है, दवाइयां और फूल नहीं।

(12)

सिंहगढ़ की पहाड़ी पर अपने विश्राम स्थल में जाकर उन्हें बहुत सुख मिलता था। इसी पहाड़ी पर जब गांधीजी भी कुछ दिन रहे, तब श्रीमती प्रेमलीला बाई थैकरसे ने उनके लिए पर्ण कुटी बनाई थी।

(13)

गोपाल कृष्ण गोखले डेकन एजुकेशन सोसाइटी में 1885 मे सम्मिलित हुए थे। वे गणित, अंग्रेजी, अर्थशास्त्र, और इतिहास पढ़ाते थे। परन्तु उन्होंने स्वीकार किया कि बौद्धिक योग्यता में वे तिलक से बहुत पीछे हैं।

(14)

तिलक से एक बार एक अंग्रेज ने पूछा—'स्वराज मिलने पर आप क्या करेंगे ?'

'मैं किसी विश्वविद्यालय में गणित पढ़ाऊंगा।'

'तिलक अपने सार्वजनिक जीवन के 40 वर्षों में एक बार भी कांग्रेस के अध्यक्ष नहीं बने। चार बार उनके नाम पर विचार किया गया, पर उन्होंने हर बार अस्वीकार कर दिया।

गांधीजी के स्वातन्त्र्य युद्ध में कुछ गीत जनता में बहुत प्रिय हुए।

1. ओ मरदानों, जंगी जवानो, जल्दी-जल्दी लो हथियार।

2. सर बांधे कफनिया हो, शहीदों की टोली निकली।

3. प्रीतम चली तुम्हारे संग,
जंग में पकडूंगी तलवार।
जेल तोप से नहीं डरूंगी
बिना काम के नही मरूंगी। (डा० ज्ञानसिंह वर्मा)

4. सारे जहां से अच्छा,
हिन्दुस्तान हमारा।
हम बुलबुलें हैं उसकी,
वह गुलिस्तां हमारा। (इकबाल)

5. मेरे चरखे का न टूटे तार,
चरखा चालू रहे।

6. सरफरोशी की तमन्ना,
अब हमारे दिल में है।
देखना है जोर कितना,
बाजुए कातिल मे है। (राम प्रसाद बिस्मिल)

7. सूख न जाए कहीं, पौधा ये आजादी का।
खुश रहो अहले वतन, हम तो सफर करते हैं।

8. मेरा रंग दे बसन्ती चोला।

9. पगड़ी संभाल जट्टा।

(हमारे एक मित्र कैप्टेन शूरवीरसिंह, जो उत्तरप्रदेश में मजिस्ट्रेट भी थे, हमें कुछ बलिदानियों के जीवन चरित 1857 की क्रांति सम्बन्धित दे गए थे, जिन्हें हम इतिहास के शोधार्थियों के अध्ययन के लिए यहां दे रहे हैं)

अमर शहीद ठाकुर जोधासिंह

फतेहपुर जिले में बिन्दकी नगर से खजुहा को जो पुरानी मुगल रोड जाती है, उसकी बाईं ओर मिली हुई एक परती भूमि है, जो बिन्दकी से अढ़ाई मील की दूरी पर है। उसमें एक इमली का पुराना और अकेला ही पेड़ है, जो 'बावनी इमली' के नाम से प्रसिद्ध है। यह वृक्ष सदा हमें सन् 1857 की महान क्रांति एवं स्वतन्त्रता के उस प्रथम संग्राम की याद दिलाता है, जिसमें इस जिले के वीर सेनानी एवं नरकेसरी ठाकुर जोधासिंह अपने 51 साथियों के साथ स्वतन्त्रता की बलि वेदी पर फांसी पर लटककर देश के लिए शहीद हुए थे। आज जब स्वतन्त्र भारत का अपना स्वतन्त्र इतिहास लिखा जा रहा है तो इस शहीद देशभक्त की वीरगाथा पाठकों के सम्मुख इस ध्येय से प्रस्तुत की जाती है कि भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में एक स्वर्ण पृष्ठ यह भी जोड़ लिया जाये।

सन् 1857 में जब भारत भूमि पर स्वतन्त्रता का संग्राम छिड़ा तो 15 मई, 1857 को दिल्ली और मेरठ के वीरता के समाचार फतेहपुर में भी पहुंचे और यहां के वीर बांकुरों ने भी इस महान यज्ञ में भाग लेने का निश्चय किया। देशभक्त आगे बढ़े और स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर अपनी आहुति देने के लिए जुट गये। फतेहपुर जिले ने इस संग्राम में जो ऐतिहासिक भाग लिया वह सबको विदित है।

यहां के इन बांकुरों में नरकेसरी ठाकुर जोधासिंह अटैया का नाम सर्वोच्च है। उन्होंने अपने जीवन की अन्तिम घड़ी तक फतेहपुर में स्वतन्त्रता की ज्योति जागृत रखी। स्वतन्त्रता संग्राम के लोकनायक श्रीमन्त नाना साहब धुन्धुपंत एवं वीर शिरोमणि तांतिया टोपे का उन्होंने पूरा साथ दिया, और भरपूर सहायता की।

ठाकुर जोधासिंह रसूलपुर तहसील खजुहा के निवासी थे। इनके पिता का नाम ठाकुर भवानीसिंह था जो एक सम्पन्न जमींदार परिवार के थे। ठाकुर जोधासिंह अपने काल के बड़े वीर सेनानियों में माने गए हैं। क्षत्रपति शिवाजी की नीति का उन्होंने अच्छा अध्ययन किया था। बाल्यकाल से ही बड़े वीर प्रकृति के थे। युवावस्था प्राप्त करने के समय तक इनके बल व पुरुषार्थ का बोलबाला इस भूभाग में सर्वत्र फैल गया था। आस-

पास के वीर नवयुवक इनको अपना नेता मान चुके थे। यह गरीबों की सहायता भी किया करते थे।

श्री जोधासिंह ने स्वतन्त्रता का संग्राम छिड़ते ही अपने देश से विदेशियों का राज्य अन्त करने की योजना बनाई और स्वतन्त्रता के संग्राम में लगातार जुटे रहे। इनके नेतृत्व में आसपास के निवासियों ने भी सैनिक रूप में स्वतन्त्रता के संग्राम में भाग लिया। इनके अदम्य साहस व गोरिल्ला युद्ध प्रणाली ने इस जिले में वीरशिरोमणि तांत्या टोपे के 6 दिसम्बर, 1857 को कानपुर में लड़ाई हारने के बाद मध्य प्रदेश जाने पर और नाना साहब के अज्ञातवास होने के पश्चात भी, अंग्रेजों के लिए भारी संकट उपस्थित कर रखा था। अंग्रेजों को इन्होंने चैन नहीं लेने दिया और जब-जब मौका मिला तब-तब उन पर हमला करते रहे। मरहठा सरदारों का भी ठाकुर जोधासिंह के ग्राम में आना-जाना व निवास करना, इस ग्राम के एक पुराने शिव मन्दिर की मरहठा कला से विदित होता है।

ठाकुर जोधासिंह के निवास स्थान मे, जो इस समय खण्डहर के रूप में है, एक पुराने पक्के सुगठित भूधरा का पता चला है। वह भूधरा जमीन के अन्दर पुरानी ईंट व चूने का बना हुआ पक्का निवास स्थान है। इसकी पक्की मेहराब अभी भी अच्छी दशा में मौजूद है। यहीं से अंग्रेजों के विरुद्ध गोरिल्ला युद्ध प्रणाली का संचालन ठाकुर जोधासिंह किया करते थे। हो सकता है कि नाना साहब ने तांत्या टोपे के दिसम्बर 1857 ई० में हार कर कालपी की ओर जाने के बाद फतेहपुर जिले में जो अज्ञातवास के दिन बिताये थे और अंग्रेजों के गुप्तचरों के लगातार कोशिश करने पर भी उनका पता नही चला था, वे ठाकुर जोधासिंह के साथ इसी भूघरे में रहते रहे हों। इतना सुदृढ़ और सुरक्षित रहने का स्थान दूसरा इस जिले में उस काल का अब तक पता नही चला है।

दिसम्बर 1857 ई० के बाद से अप्रैल 1858 ई० तक ठाकुर जोधासिंह लगातार अंग्रेजों के विरुद्ध गोरिल्ला ढंग से संग्राम करते रहे। अन्त में धोखे से वे पकड़े गए और स्वतन्त्रता की बलि वेदी पर शहीद हो गये। कहा जाता है नरकेसरी ठाकुर जोधासिंह जब यमुना के उस पार से स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेकर लौट रहे थे, तो एक कहार ने अंग्रेजों को खबर दे दी। अंग्रेजों ने अपनी फौज छिपाकर रास्ते में रख दी और अचानक जोधासिंह और उनके साथियों को घेरकर सहेमलपुर के पास पकड़ लिया। इसके बाद उस वीर सेनानी व देशभक्त को उनके इक्यावन साथियों के साथ फांसी पर लटका दिया गया।

उनके विश्वासपात्र व्यक्ति विपतिया नामक चमार ने उनके घर जाकर यह दुखद समाचार सुनाया। इस पर इनकी पत्नी गंगा पार सेमरी नामक स्थान में चली गई। तीन दिन तक ठाकुर जोधासिंह का शरीर बावन इमली मे लटका रहा। शांति होने पर रामपुर ग्राम के महराजसिंह ने रात को जोधासिंह के मृतक शरीर को बावन इमली से उतारा और शिवराजपुर में गंगा किनारे अन्तिम संस्कार किया। आशादूज के दिन उनको फांसी हुई थी, इसलिए उनके खानदान में आज भी इस दिन को 'खून' मानते हैं। जोधासिंह का पितृ पक्ष में श्राद्ध क्वार बदी दो को ही मनाया जाता है।

विदेशी शासकों ने स्वतन्त्रता संग्राम के इस रणकेसरी देशभक्त को लुटेरा बताया है।

परन्तु हाल ही में खोजने पर सौभाग्य से जो मुझे प्रत्यक्ष लिखित प्रमाण उनके वंशजों से मिला है, वह इसका खण्डन करता है। और यह बात पूरी तौर से सिद्ध होती है कि इस वीर श्रेष्ठ देशभक्त ने जननी जन्मभूमि के लिए मृत्युशैया को फूलों की सेज समझकर अपना सर्वस्व न्योछावर कर संसार के समक्ष अपूर्व बलिदान का परिचय दिया था। ठाकुर जोधासिंह के जीवन से हमें यह शिक्षा मिलती है कि जो जीवित रहना चाहता है, वह पहले मरना सीखे।

मरना भला है उसका जो अपने लिए जिये।
जीता है वह जो मर चुका स्वदेश के लिए॥

उपरोक्त लिखित प्रमाण जो मिला है वह ठाकुर जोधासिंह के महान बलिदान के पश्चात उनकी सम्पत्ति के सम्बन्ध में एक दीवानी दावे फैसले की एक उर्दू लिपि में पुरानी कुछ फटी हुई प्रतिलिपि है। इसका कुछ भाग पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।···
"दरोबस्त 16 आना मौजा रसूलपुर का मालिक व काबिज जोधासिंह तीसरा बेटा भवानी सिंह का रहा, और उसी का नाम रजिस्टर सरकार में दाखिल था। फिर उसने किसी मसलहत से नाम हीरा सिंह अपने बेटे का निस्बत मौजा मजकूर की रजिस्टर सरकार में चढ़वा दिया। जब 1857 ई० में बलवा हुआ जोधा सिंह व हीरासिंह दोनों शख्स मफरूर हुए। तब 2 दिसम्बर सन् 1857 ई० को हुक्म जब्ती मौजा रसूलपुर का सादिर होकर इश्तहारात जब्ती जारी हुई व बाद गुजरने मियाद इश्तहार के मौका मजकूर को सुपुर्द शेख अहमद बक्श के हुआ। आखिरकार जोधा सिंह मजकूर ने गिरफ्तार होकर फांसी पाई और मुताबिक इश्तहार मलका मुअज्जमा मजरिया सन 1858 ई० के हीरा सिंह हाजिर आया। अप्रैल सन् 1859 ई० को फौजदारी में हुक्म आबादी व रिहाई हीरा सिंह मजकूर का सादिर हुआ और सन् 1268 फसली यानी सन् 1860 ई० तक कब्जा अहमद बक्श सिपुर्ददार का रहा। सन् 1861 ई० में सरकार ने मौजा रसूलपुर को सिपुर्द माधो सिंह जमींदार के किया और बाद चन्द महीने के सरकार ने खाम तहसील कर लिया।···"

उस समय का उपरोक्त लिखित प्रमान इस बात की पुष्टि करता है कि ठाकुर जोधा सिंह इस भूभाग के अच्छे भूमिपति थे और देश में स्वतन्त्रता संग्राम प्रारम्भ होने पर उन्होंने भारत से विदेशी प्रभुता को सदा के लिए मिटाने के लिए स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेकर मातृभूमि के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया था। इस नरश्रेष्ठ के महान बलिदान की पुण्य स्मृति में फतेहपुर जनपद के देशभक्त निवासियों ने सन् 1955 ई० से शहीदों के पवित्र रुधिर से सींची हुई बावनी इमली वृक्ष के राष्ट्रीय तीर्थस्थल पर वार्षिक शहीद मेला लगाना प्रारम्भ कर दिया है। हजारों की संख्या में लोग वहां एकत्रित होकर बावनी इमली के चबूतरे पर शहीदों की पुण्य स्मृति में श्रद्धापूर्वक पुष्पांजलि अर्पित करते हैं। उस समय उपस्थित जनसमुदाय की जुबान पर यही शेर रहता है—

"शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मिटने वालों का यही बाकी निशां होगा।"

सत्तावनी शहीद वीर योद्धा ठाकुर दरियावसिंह जी का परिचय

जन्म एवं वंश परिचय

वीर योद्धा ठा० दरियावसिंह जी का जन्म खागा के सिंगरौर क्षत्रिय वंश में एक प्रतिष्ठित घराने में हुआ था। इनके जन्म काल का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। जनश्रुति एवं कुछ प्राचीन लेखों के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि इनका जन्म 1797 ई० और 1802 ई० के बीच में हुआ होगा। इनके पूर्वज बाबू राय ताल्लुकेदार बहुत दिनों से खागा में निवास करते रहे। यह बाबू राय जी की सातवी पीढ़ी में हुए हैं। अवध के नवाबों के यहां इनके कोई पूर्वज किसी फौजी पद पर आसीन रहे कहे जाते हैं। इस ताल्लुका का प्रबन्ध जिसमें शहजादपुर खागा, बहादुरपुर खागा, हरदों, बीदियापुर, लाखीपुर, कुकरा, कुकरी, तिलकापुर, संग्रामपुर, सुजानीपुर, सुनरही, सरसई, सुलतानपुर, त्योंजा, चित्तौली, अकोढ़िया और सरौली का कुछ भाग आदि थे—सन् 1210 फसली (1802 ई०) में अंग्रेजों ने विक्रम सिंह के साथ 1213 फ० (1805 ई०) में मोहन सिंह के साथ तत्पश्चात मर्दन सिंह पिता दरियाव सिंह के साथ नवाब सआदत अली से पाने के बाद जिसे 10-11-1811 ई० में नवाब साहब ने अपनी सुरक्षा हेतु अंग्रेजों को दिया था, दिया। नवाबों के जमाने में भी इन्हीं ठाकुर विक्रमसिंह और उनके पूर्वजों के पास ताल्लुका था।

जीवन की कुछ बातें

ठाकुर साहब का शरीर पुष्ट, छहनना, गठा हुआ, लम्बा कद, विशाल वक्षस्थल, लम्बी भुजाओं वाला था। बड़ी-बड़ी आंखें जिनमें लाल डोरा पड़े हुए थे, देदीप्यमान मुखमंडल में प्रदीप्त होती थी। केश धारण किये हुए थे। धर्म प्रिय व्यक्ति थे। शक्ति एवं हनुमान जी की पूजा करते थे। कहा जाता है कि पूजा करते समय इनकी खड्ग भूमि से 1 हाथ ऊपर उठ जाती थी। गुणियों और साधु-सन्तों का भी आदर करते थे। सदैव कुछ-न-कुछ अतिथि बने रहते थे। आपको घोड़ों के रखने का भी अच्छा शौक था। इनके पास अच्छी संख्या में सिपाही और घुड़सवार थे। 1 हथिनी भी थी। एक तोप (गुरदा) भी थी जो गढ़वा नामक स्थान पर बने कच्चे किले पर लगी रहती थी। इनकी फौज में बहेलिया और वैश्य क्षत्रिय अधिक थे। आपका निवास स्थान भी एक किले के ढंग का बना था। दक्षिण की ओर एक मोटी पक्की दीवार जिसके बीच में बालू भरी थी और पूरब, उत्तर तथा पश्चिम की ओर एक गहरी नहर खुदी थी जो विकृत रूप में अब भी विद्यमान है। आपकी मित्रता रीवा नरेश ठा० रघुराज सिंह एवं आत्मीयता शंकरगढ़ के राना बेनी माधो (रायबरेली) डोंडियाखेर के राव रामबख्शराय (उन्नाव) रानासाहब खजुरगांव जमराया के रघुवंशी क्षत्रिय श्री शिवदयाल जी से थी। रायजादा क्षत्रियों से भी घनिष्ठ प्रेम था। यह अधिकतर गंगा पर रहा करते थे और बैसवाड़े में आपका अच्छा सम्मान था। आप बड़े स्वाभिमानी पुरुष थे। कहा जाता है कि रीवा नरेश ठा०

रघुराज सिंह आपके यहां आपका राजतिलक करने आये। आपने केवल इसलिए तिलक कराने से इन्कार कर दिया कि बायें पैर का अंगूठा मस्तक में छुआया जायेगा। दूसरी किम्वदन्ति यह बताई जाती है कि एक बार एक अंग्रेज आफिसर खागा कचहरी आया और इनको बुलवाया। यह घोड़े पर सवार होकर गये तो किन्तु अभिवादन नहीं किया, इस पर उसने नाराज होकर जिला खारिज कर दिया। बहुत दिनों तक आप जिला खारिज रहे। इस काल में जिला इलाहाबाद के जंगलों में खेमा डाले पड़े रहते थे। आप स्वभावतः युद्धप्रिय थे। आप स्वतन्त्रता के प्रेमी भी थे। देश प्रेम का अनुराग भी नस-नस में भरा था। आप देश को गुलाम नही देखना चाहते थे। अंग्रेजों को देश से निकालने में सतत प्रयत्नशील ही नहीं रहे वरन अपना सर्वस्व न्योछावर कर स्वयं प्राणों की आहुति दे अपने भाई एवं पुत्रों को भी बलिवेदी पर प्रसन्नतापूर्वक चढ़ा दिया। आपके यहां सती की भी प्रथा थी। सती चौरा एक मन्दिर के रूप में अब सरसई नामक गांव में स्थित है और विवाह संस्कार के समय पूजा होती है।

सन् 1857 ई० के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में आपके कार्य

जिस क्रांति का श्रीगणेश मेरठ छावनी से 10-5-1857 ई० को हुआ उसके सम्बन्ध में आप पहले अपने आत्मीय राना वेनीमाधो जी आदि से गोष्ठी में एक रूपरेखा बनाने गये थे। (स्थान का ठीक पता नहीं चलता) वहां (गंगा पार) से ठाकुर साहब लौट भी न पाये थे कि क्रांति की चिनगारी द्रुतगति से खागा में भी पहुंच गई। बहुत से क्रांतिकारी आपके यहां एकत्रित हो गए। इस समय खागा में इनके पुत्र सुजानसिंह और भाई निर्मल सिंह आदि थे। 8 जून सन् 1857 ई० को श्री सुजानसिंह के नेतृत्व में तहसील खागा पर हमला कर दिया गया और तहसील खजाना लूटकर इमारत पर स्वतन्त्रता का झण्डा फहरा दिया गया। रेलवे सड़क पर अंग्रेज कर्मचारी जो काम करते थे उनका भी काम सब बन्द कर दिया गया। तत्पश्चात् श्री सुजान सिंह अपने साथियों और सिपाहियों सहित 9 जून सन् 1857 ई० को फतेहपुर पहुंचे। वहां पर पहले से हजारों क्रांतिकारी एकत्रित थे। सबने मिलकर सदर खजाने पर हमला करके उसे भी लूट लिया और स्वतन्त्रता का झण्डा फहरा दिता। टक्कर साहब ने, जो उस समय के अधिकारी थे कुछ देर तक छत के ऊपर से मुकाबला किया। बाद में उसने आत्महत्या कर ली। जिला का शासन हिकमतउल्ला के हाथों सिपुर्द किया गया। इसके पश्चात् ठा० दरियाव सिंह श्री राना वेनीमाधो जी के साथ स्वतन्त्रता को बनाये रखने के कार्यों में संलग्न रहे। इसी बीच जब इलाहाबाद से मेजर टिनाई काफी सेना लेकर रास्ते में मार-काट करता हुआ 27-6-1857 ई० को कानपुर की ओर चला और रास्ते में 2-7-1857 को उसे पता चला कि कानपुर में क्रांतिकारियों का अधिकार हो गया, तव भयभीत होकर सिरायू में ठहर गया। वहां पर वह उस समय तक ठहरा रहा जब तक कि जनरल हैव्लाक इलाहा-वाद से दूसरी सहायता वाली फौज लेकर नही चला। 7 जुलाई को हैव्लाक ने इलाहाबाद से प्रस्थान किया तव टिनाई भी आगे बढ़ने लगा। श्री दरियावसिंह जी ने इसकी खबर पाते ही अपने जिले के साथियों श्री ठा० शिवदयालसिंह जमरावां, श्री ठा० जोधासिंह

जी रसूलपुर, श्री पं० गयादीन दुबे कोरई आदि बैसवाड़े के साथियों को संगठित किया। इधर कानपुर की ओर से नाना साहिब की फौज भी ज्वाला प्रसाद और टीका सिंह के नेतृत्व में आयी थी, उनसे मिले और अंग्रेजी फौज से मुकाबला करने का निश्चय हुआ। अंग्रेजी फौज बहुत तेजी से आ रही थी अतः श्री, ठा० दरियाव सिंह जी ने महिलाओं को अपने-अपने माता-पिताओं के यहां और लड़के देवसिंह को बाहर भेज दिया। श्री देव सिंह बड़े स्थूलकाय थे। वे और स्वयं अपने भाई पुनरुजान सिंह और अन्य परिवार वालों, सिपाहियों आदि के साथ पूर्णतः तैयार होकर अपने अन्य साथियों के पास खागा छोड़कर पूर्व निश्चित योजनानुसार चले गये। इधर टिनाई ने खागा आकर अपना डेरा कसियाबाग जो खागाके उत्तर-पश्चिम के कोने पर है, डाला। कस्बा तो खाली था जो कुछ थे भी वह बड़ी निर्दयता से मौत के घाट उतार दिये गये और सारा कस्बा तहस-नहस कर डाला गया। टिनाई श्री दरियाव सिंह जी के निवास स्थान पर गया। वहां जो कुछ था उसे लूटा और बाद में अपने सिख सिपाहियों द्वारा सुरंग लगवा-लगवा कर सारे भवन को ध्वस्त कर दिया। किला भी ढहा दिया गया। इसके बाद वह आगे बढ़ा। पीछे 11 जुलाई सन् 1857 ई० को जनरल हैव्लाक भी खागा आ गया। जब वह आया बस्ती उजड़ी हुई उसे मिली। उसने खागा में एक पुलिस स्टेशन बनाकर एक दारोगा के जिम्मे शासन सौंपकर आगे बढ़ा। रास्ते में टिनाई की फौज भी मिल गई और दोनों ने मिलकर 12 जुलाई को बिलन्दा में डेरा डाला। उधर ज्वाला प्रसाद और टीका सिंह के नेतृत्व में नाना साहब की फौज और जिले के वीर योद्धा उनके साथी और सैनिक भी बिलन्दा आ गये, वही पर खूब घमासान युद्ध 12 जुलाई को हुआ। आधुनिक अस्त्र-शस्त्र से सज्जित अंग्रेजी फौज के सामने यह सब न टिक सके और हार गये। वही से अंग्रेजों का हौसला बढ़ा और उन्होंने आगे बढ़कर फतेहपुर में पहुंचकर कत्लेआम शुरू कर दिया और बस्ती को जला दिया।

बिलन्दा से हारने के बाद सभी क्रांतिकारियों के साथ वह भी रहे। आपका अधिक समय गंगा पार में ही व्यतीत हुआ। आपके कुछ आदमियों ने करवी के पेशवा के साथ नादुर किले और पुरवा तरीहा नामक स्थान पर युद्ध किया। इस युद्ध में भी आपके परिवार के श्री बहादुर सिंह खेत रहे। आपकी घोड़ी उछलकर एक झाड़ी पार कर बाहर जाना चाहती थी किन्तु बीच में ही उलझ गई। तब क्या था, चारों ओर से शत्रुओं ने भून दिया।

समय-समय पर मौका देखकर आप और आपके साथी एवं परिवार वाले खागा आते रहे। इधर अंग्रेज भी गिरफ्तारी के चक्कर में थे। यह सभी सदैव हथियार-बन्द चौकस तैयार रहते थे। कहा है कि एक दिन सिक्ख सैनिक ने जो इनके साथ था, यह खबर अंग्रेज अधिकारियों को दी कि दोपहर को भोजन के समय ही सब अपने अस्त्र खोल देते है उसी समय गिरफ्तारी हो सकती है। फलतः यही हुआ और भोजन के अवसर पर दरियांव सिंह जी के अतिरिक्त सभी गिरफ्तार हो गये। सुजानसिंह की गिरफ्तारी खागा से हुई ही बतलाई जाती है। यह गिरफ्तारी कदाचित 10 दिसम्बर सन 57 और 3 अप्रैल सन 58 के मध्य हुई होगी। सुजान सिंह, खुशहाल सिंह, रघुनाथ सिंह, ब्रह्मा खागा और मथुरा सिंह, इश्वरी सिंह, मुन्ने व हिम्मत सरसई को प्राणदंड दिया गया। इन सबकी सम्पत्ति के

जमा करने का भी आदेश दिया गया। श्री ठा० दरियाव सिंह जी अपने साथी ठा० शिव दयायल सिंह के साथ सेमरी में गिरफ्तार हुए और फतेहपुर कचहरी के सामने हंसते-हंसते फांसी के तख्ते पर चढ़ गये। कहा जाता है कि 3 बार रस्सी उलझ गई किंतु निर्दयी हत्यारों ने नहीं छोड़ा। धारा 8 कानून 25 सन 1857 के अनुसार सुजान सिंह और उनके साथियों पर 3 अप्रैल 1858 को निम्नलिखित अभियोग लगाया गया—

अभियोग—'लूटना खजाना सरकारी तहसील खागा, जलाना बंगला साहवान-सड़क अहिनी, लूटना माल व बनाना मोरचा इलाका खुद व दीगरा। जो सम्पत्ति जमा की गई उनमें से बहादुरपुर खागा, तिलकापुर, संग्रामपुर, लाखीपुर, लोकियापुर, फरनन्द अली रिसालदार दिये गये। सरोयी 18 मार्च सन 1864 को देव सिंह के मकरूरी के जुर्म में 5486 रु० 3 आना की नीलाम की जिसे फतेहपुर के राजाबहादुर व वखत-बहादुर व विजय बहादुर बिरानहर सहाय ने लिया। अन्य निम्नलिखित व्यक्तियों को भी दूसरे क्रान्तिकारियों की सम्पत्ति पुरस्कार में मिली (1) शेख अहम्मद बख्श खानबहादुर कोट (2) लालबहादुर व इकबाल बहादुर कोरी (3) बरमोर सिंह कुटिया (4) माधो सिंह सोता (5) लाला मन्नू लाल हस्वा जिन्होंने 12 जुलाई को हैवलाक को विलन्दा में दावत दिया था। (6) गंगा सिंह थानेदार गाजीपुर (7) भोला सिंह अपाई (8) परसादी सिंह (9) रघुनाथ सहाय दारानगर (10) अलीमुद्दीन इलाहाबाद (11) राम प्रसाद (12) रामेश्वर चौधरी श्री दरियाव सिंह जी के सम्बन्ध में अंग्रेजी लेख में दिखाई कि इन्होंने गदर में बड़ा धूम मचाया। इससे कल्पना की जा सकती है कि अंग्रेजों के विरूद्ध सदैव मोर्चा लगाये रहते थे।

इस प्रकार आपने अपने देश और मातृभूमि के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर परिवार एवं पुत्रों समेत शहीद हो गये। आपकी गौरव गाथा का स्मरण निवास स्थान का भग्नावशेष, हनुमान जी का मंदिर गढ़ का टीला सदैव दिलाते रहेंगे। भग्नावशेष के पश्चिमी भाग में आज भी आपके परिवार वाले और ग्रामवासी 15 अगस्त को यज्ञ हवन आदि करके श्रद्धांजलि अर्पित करते है और स्वतंत्रता का झंडा फहराते हैं। यह भाग परिवार वालों के अधिकार में है, शेष मुसलमानों के अधिकार में है। परिवार में उनके पौत्री के पुत्र ठा० बजरंगसिंह किशुनपुर, ठा० गौरीशंकर सिंह, चद्रपाल सिंह, ठा० बलदेव सिंह, ठा० दयाल सिंह, खागा ठा० देवराज सिंह, ठा० महावीर सिंह एवं चन्द्रभूषण सिंह सरसई अब भी विद्यमान है। लगान बन्दी आन्दोलन में परिवार के एक सदस्य रामकुमार सिंह ने अपनी सारी भूमि को दिया। ऐसे अमर शहीद के स्मारक जिला स्तर पर बनाये जावें तो अच्छा है और सरक जब्ती जायदाद वाला मुआवजा इनमें लगा दे। एक्ट नं० 8 सन् 25 रद्द कर दिया जाये।

अमर शहीद जिन्दाबाद
भारत आजाद

उस फाग के गायक जो १८५७ में गाया गया था

श्री जय गोपाल मिश्र 21 सहराराबाद इलाहाबाद लखते हैं—

हाल ही में फतेहपुर जिले के दो सबसे अधिक वयोवृद्ध सज्जन श्री माता दीन (उम्र 112 साल) व श्री सरदार केवट उम्र (110 साल) का पता कैप्टन सूरवीर सिंह जिला नियोजन अधिकारी के प्रयत्नों से चला। यह दोनों बुजुर्ग सन् 1857 ई० के प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम के संबंध को आंखों देखी कहानी रोचक ढंग से कहते हैं।

श्री मातादीन के पिता जी श्री जगन्नाथ व पितामह कालिका प्रसाद दोनों अंग्रेजी फौज में उन दिनों सिपाही थे। श्री जगन्नाथ प्रसाद ने अंग्रेजों की फौज छोड़कर स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया और श्री कालिका प्रसाद लड़ाई में मारे गये। सेमरपहा, बकुलिया जिला रायबरेली व बक्सर जिला उन्नाव की लड़ाइयों का जो राजा बेनी माधो सिंह व राम बक्स सिंह वीर सेनानियों के नेतृत्व में हुई और दो भाई ठाकुर शिवरतन सिंह व जगमोहन तथा पं० शीतल तिवारी ने जो साहसपूर्ण भाग देश को स्वतंत्रता के संग्राम में लिया उनका सही-सही श्री मातादीन वर्णन करते हैं। वीर सेनानी ठाकुर जोधा सिंह अटइया रसूलपुर तहसील खजुहा के देश की स्वतंत्रता के लिए बवनी इमली पेड़ में फांसी पर बलिदान होने के संबंध की घटना का भी वर्णन करते हैं। पं० मातादीन उस समय 14 वर्ष की उम्र के थे। अपने घर टेढ़ा बीघापुर उन्नाव जिले को छोड़कर बाद को फतेहपुर में आकर बस गये थे। यह वृद्ध सज्जन उस समय स्वतंत्रता के संग्राम के संबंध में 1857 ई० में जो फाग लोग गाया करते थे उसको भी रोचकपूर्ण ढंग से सुना कर गाते हैं।

श्री जगन प्रसाद जी रावत उपमंत्री गृह विभाग जब 29 जुलाई सन् 1955 को ग्राम शाह में आये थे तो इनसे प्रेमपूर्वक मिले और उपरोक्त वर्णन उनसे सुना।

श्री सरदार केवट कंधरपुर तहसील खजुहा निवासी भी सन् 1857 ई० की कुछ घटनाओं का विशेष वर्णन करते है। उनसे पता चला है कि वीर सेनानी राव राम बक्स सिंह को चांदी केवट डौडिया खेरे वाले ने सुराग देकर अंग्रेजों से पकड़वाया था, जिनको बाद में अंग्रेजों ने मार डाला। ठाकुर जोधा सिंह रसूलपुर व जोधा चंदेल मोहार की स्वतंत्रता के संग्राम में वीरगति को प्राप्त हुए।

पं० मातादीन वल्द जगन्नाथ ग्राम शाह तहसील फतेहपुर कहते हैं—

आज दिनांक27-7-55 ई० को मेरी उम्र 116 वर्ष की है यह बात मुझे एक याददाश्त जो मेरे घर में मुझे लिखी हुई मिली उससे पता चला। जब अंग्रेजों के खिलाफ गदर सन् 1857 ई० में हुई थी। उस समय मैं 14 साल के उम्र के करीब का हूंगा। मेरा बाप जगन्नाथ प्रसाद व दादा कालिका प्रसाद दोनों अंग्रेजी फौज में नौकर थे। जब अंग्रेजों के खिलाफ सेमरपहा व सेमरी बकुलिहा रायबरेली जिले में व बक्सर उन्नाव जिले में लड़ाई हुई तो मेरे बाप दादा इस लड़ाई में शामिल थे। बक्सर में एक मौहगी बाग में डेरा पड़ा तो मेरे बाप ने अंग्रेजों से कहा कि मैं तुम्हारी नौकरी नही करता मेरी तनख्वाह दे दो। इस पर अंग्रेज अफसर ने कहा कि अगर तुम इस डाल में अपनी

भरी बंदूक से गोली मार दोगे तो हम तुम्हारी तनख्वाह दे देंगें। मेरे बाप ने फौरन गोली मारी और डाल गिर गई। जैसे ही बंदूक की गोली चलने से बंदूक खाली हुई अंग्रेज ने मौका पाकर कहा कि पकड़ो इसको पकड़ो। इतने में मेरे दादा कालिकाप्रसाद ने वहां आकर मेरे बाप से कहा कि अगर तुम्हें नौकरी नहीं करनी है तो तुम चले जाओ और मैं तुम्हारी तनख्वाह ले आऊंगा। जैसे मेरा बाप चलने लगा कि गदर मच गई और फौज मे झगड़ा होने लगा। मेरे बाप के पैर में गोली लगी। मेरा बाप फिर हमारे गांव टेढ़ा विगहपुर में आ गया। दादा का कहीं पता नहीं चला। डौडियाखेरा के रामबक्ससिंह और शंकर पुर के राना बेनीमाधोसिंह ने अंग्रेजों के खिलाफ फौजें लाकर लड़ाई की। डौडियाखेरा के रामबक्ससिंह पकड़े गये और राना बेनीमाधोसिंह अंग्रेजों के हाथ नहीं आये और बाद में नेपाल पहुंच गये। मेरे दादा के भाई फतेहपुर में नौकर थे, मैं यहां उनके पास आ गया। कुटिया के मानसिंह ने अंग्रेजों की मदद की थी और रसूलपुर के जोधा सिंह ने अंग्रेजों से लड़ाई की थी। बाद को जोधासिंह पकड़े गये और अंग्रेजों ने उनको खजुहा के नजदीक एक इमली के पेड़ में फांसी पर लटकाया। तीन बार फांसी पर नही मरे तो एक मेम ने उसके पैर पकड़े और लटक गई। जब तक जोधासिंह की जान नहीं गई तब तक उनके पैर पकड़कर लटकी रही। दो ठाकुर भाई शिवरतन व जगमोहन सेमरपहा मे उन्नाव जिले के 'वैहार' गांव से आकर अंग्रेजों से लड़े थे और बहुत से अंग्रेजों को मार डाला। फिर सेमरपहा के किले के नीचे अंग्रेजों ने गड्ढे खोदकर अपनी फौज छिपा रक्खी और वहीं से गोली मारकर जगमोहन को घायल किया। जगमोहन जब मर रहे थे तो उन्होंने शिव रतन से कहा कि मैं मर रहा हूं तुम चले जाओ। उसने कहा मैं अपनी भौजाई को कैसे मुंह दिखाऊंगा और मैं सेमरी में अंग्रेजों से लड़ूंगा। फिर सेमरी में अंग्रेजों से बड़ी लड़ाई शिव रतन ने की। फिर वहां से बक्सर गये। फिर वहां भी लड़ाई की। शीतल तिवारी उन्नाव वाले ने भी अंग्रेजों से बड़ी लड़ाई लड़ी थी। मस्ती भरा फाग भी इस गदर की लड़ाई का प्यारा गीत था, जो इस तरह है:

'एकहि रंग रगें गुरु चेला, बैहार मुल्क विद्याधर बाबा, जहां लगे विग्धर मेला।
गंगेस्वर को जल भर लाओ, लोधेश्वर का है मेला।
काट गोमती धारा करिगे, पुल बने लोहे केरा॥
गांव लोधौरा कहां लौ बरणों, झुके शिवन्ती का मेला।
चौदह साल में गदर भया है, तोप चली उन्ना झुन्ना।
शीतल तिवारी उन्नाव के झूझे, मदाहिलौरी अनबोला।
एकहि रंग रंगे गुरू चेला॥
लखनऊ शहर अजब बना है, बादशाह है अलबेला,
नाकेन-नाकेन घुमे सिपाही, चहुंदिसि मुल्क पड़ा घेरा।
आलम बाग में डेरा परिगे, कैंसर बाग में गोला चटकै,
गिरा छत्र सोने केरा।
एकहि रंग रगें गुरु चेला।

[illegible] श्री सरदार पुत्र सुकरू केवट साकिन कन्धरपुर (करनपुर) गांव सभा साई तहसील खजुहा, जिला फतहपुर—

ब्यान किया कि जब 1857 ई० को गदर हुआ था, तब उस समय मैं 10-11 साल का था, मुझे सब कुछ याद है। एक भदवरिया ठाकुर मौहार का रहने वाला था जो ठाकुर हनुमानसिह मौहार वालों का सिपाही था। ठाकुर हनुमानसिह मौहार मौजूदा सरपंच ठाकुर रुद्रपाल सिह के परदादा के पिता थे। उसने हमारे गांव में आकर कहा कि अंग्रेजों की फौज आ रही है। तुम सब होशियार हो जाओ। यह खबर सुनकर हम लोग अपने घरों में ताला बन्द करके कटरी में चले गये। यह बात बरसात के मौसम की है। औग में भी हिन्दुस्तानी और अंग्रेजी फौज की लड़ाई हुई थी। उस समय औंग में पुलिस थाना भी था। अंग्रेजों ने इस इलाका में लोगों को पकड़ा जो गड़बड़ कर रहे थे। लोग अंग्रेजों के खिलाफ हो गये थे। चन्दी केवट हमारे यहां आना जाना था, वह डौडियाखेरा का था। डौडियाखेरा के राजा रामबक्स सिंह अंग्रेजों से लड़े थे। जब हार गये तब साधू का भेष बनाकर पड़ोस में एक बाग में छिपे थे। चन्दी केवट की उनसे रंजिश थी क्योंकि राजासाहब ने चन्दी को पिटवाया था। इस पर चन्दी ने अंग्रेजों से इसका सुराग बता दिया, जिस पर राजा पकड़ लिए गये और अंग्रेजों ने उन्हें मार डाला। ठाकुर जोधासिह रसूलपुर के रहने वाले थे। यह रसूलपुर डुण्डरा के पास में है। इन्होंने भी अंग्रेजों से लड़ाई की थी। इनके यहां बहुत से आदमी रहते थे। जब हम लोग गांव में वापस आ गये और गदर बन्द हुआ उसके एक महीना के बाद जोधासिह पकड़े गये। उनके और इनके साथियों को खजुहा के पास बावनी इमली में फांसी दी गई। मैंने सुना था कि इनके पास एक सफेद रंग की घोड़ी थी। गोपाल गंज के पास जो बाग है, वह वैनवा खेरा के ठाकुरों का था, वह ठाकुर भी अंग्रेजों के खिलाफ लड़े थे। उस बाग में बड़ी लड़ाई हुई थी। मौहार का जोधा चन्देल भी अंग्रेजों से लड़ा था उसको मौहार के पास बाग में फांसी दी गई थी।

जिस समय रेलगाड़ी निकली है, उस समय मेरी उम्र लगभग 15-16 साल की थी। मेरे गांव के बहुत मजदूर पटरी में मजदूरी करने आते थे। मैं मजदूरी नहीं करता था क्योंकि मेरे घर में दो हल खेती होती थी। मैं अपने घर का काम करता था। मेरे लड़कपन में मौहार से निकलने वाली सड़क कच्ची थी, इसमें बाद में कंकड़ डाला गया है। इस समय मेरे एक लड़की है, जो बेवा है। वह मेरे साथ रहती है उसके कोई सन्तान नहीं है। वह भी इस समय बुढ़िया है। मेरे दो लड़के हुए थे, एक पहले ही मर गया था। एक लड़का लोलवा परसाल दीवार में दबकर मर गया है। लोलवा के एक लड़की है, जिसकी उम्र 40 साल की है। वह मेरे साथ ही रहती है, उस नातिन के कोई सन्तान नहीं है। मैं मौहार के जंगलिया काछी से 5-6 साल बड़ा हूं। मैं पहले कुश्ती लड़ा करता था और खूब दूध घी खाता था। मैं प्रतिदिन एक पाव चना भिगोकर चबाया करता था और आधा पाव घी व दो सेर दूध भी पीता था।

क्रान्तिकारी परमानन्द

एक दिन प्रातः क्रान्तिकारी श्री परमानन्द जी हम से मिलने आए। अपना परिचय दिया और फिर अपने कारावास की कहानी सुनाई। पाठकों में ज्ञानार्थ उसे हम यहां दे रहे हैं—

1 जनवरी, 1915—लाहौर सेन्ट्रल जेल के चारों ओर 3000 फौजी सैनिक घेरा डाले पड़े थी। अमरीकी गदर पार्टी के 63 व्यक्ति भारत की भिन्न-भिन्न जेलों से वहां लाए गए थे। 19 तारीख को 12 बजे रात की क्रान्ति असफल हो चुकी थी। मैं 1915 में जर्मनी से Top secret war maps लाया था। उसके साथ भारत की मिलिटरी के नक्शे भी थे, जो कपूरथला की रानी के मन्दिर में गुप्त रूप से तैयार किए गए थे। भारत की सैनिक छावनियों पर निशान लगाए गए थे। पेशावर, रावलपिंडी, पीझमीर, लाहौर, फिरोजपुर, दिल्ली, मेरठ, झांसी, इलाहाबाद, बनारस, पूना, फोर्ट विलियम आदि छावनियां थीं। इन छावनियों में देशी सैनिक भी थे। क्रान्ति दिवस 19 फरवरी 1915 रात्रि 12 बजे को निश्चित हुआ था। परमानन्द, करतारसिंह, विष्णु गणेश, पिंगले, रामसरनदास (कपूरथला वाले), भाई निदानसिंह (60 वर्ष) रासबिहारी बोस मंदिर में उपस्थित थे।

योजनानुसार सब लोगों को छावनियों में भेजा गया। परमानन्द को झांसी, इलाहाबाद परमानन्द जी पार्टी के स्पीकर थे। उन्होंने 2000 वायर कटर खरीदे, जिससे रात्रि में 12 बजे तार-सम्बन्ध कटऑफ करके छावनियों पर कब्जा कर लिया जाय। 17 फरवरी को रासबिहारी को तथा अन्य पांच साथियों को लाहौर में सामान की निगरानी में छोड़ दिया। जगतसिंह, कृपालसिंह वहां आए। जिनका रासबिहारी से झगड़ा हो गया और उन्हें बाहर निकाल दिया। वे दोनों बाहर खड़े बातें कर रहे थे कि पुलिस ने detect किया, और मकान को चारों ओर से घेर लिया। योजना विफल हो गई। मकान धोबी मंडी में था। कृपालसिंह को गिरफ्तार किया तो उसने पुलिस को सब बता दिया। सब पकड़े गए। 24-25 तारीख तक लाहौर सेन्ट्रल जेल में 63 आदमी ठूंस दिए गए। परमानन्द भी उन्हीं में पकड़े गए।

तीन जजों के ट्रिब्यूनल में केस जेल में हुआ। यह Summary case था। 5 महीनों में फैसला हुआ। 500 पुलिस मैनों ने हमें कोर्ट में Tower के पास खड़ा किया। करतारसिंह ने परमानन्द जी से गाना सुनाने को कहा। उस समय परमानन्द जी की आयु 21 वर्ष और करतारसिंह की 19 वर्ष थी। सबने मिलकर गाया—

> ख़ुशी के दौर-दौरे में, हैं यहां रंजोमहन पहले।
> बहार आती है पीछे से, खिजां गर्दे चमन पहले।
>
> मुनत्वा अन्जुमन होती है, महफिल गर्म होती है।
> मगर कब ? जबकि खुद जलती शमायें अन्जुमन पहले।

हमारा हिन्द भी फूले फलेगा एक दिन,
लेकिन मिलेंगे खाक में लाखों, हमारे गुलवदन पहले।

उन्हीं के सिर बंधे सेहरा, उन्ही पर ताज कुर्बां हो।
जिन्होंने फाड़कर कपड़े, रखा सिर पर कफन पहले।

हमारा हिन्द भी योरोप से ले जायगा शफकत।
तिलक जैसे मुहब्बे वामे वतन हो इंडियन पहले।

मुसीबत आ, कयामत आ, कहां जंजीरें जिन्दा हैं ?
यहां तैयार बैठे हैं, गरीबाने वतन पहले।

हमें दुःख भोगना, लेकिन हमारी नस्ल सुख पावे।
यह दिल में ठान लो अपने, ऐ हिन्दी मर्दों जन पहले।

गीत सुनकर जज घवड़ा गया। उसने हुक्म दिया—कि पांच-पांच कैदियों को लाया जाय। पांच-पांच आदमी उसके सामने पहुंचते। वह सबको फांसी का हुक्म सुनाता। उसका order इस प्रकार था—You have abited and conspired to wage war against king Emperor. You have collected Arms & Ammunition. You have collected materials for bombs. You have organised a revolutionary party to overthrow British Empire from India. So you are sentenced to death.

हुक्म सुनकर करतारसिंह ने कहा—We have never attacked British Empire, what so ever 'we have done. We have done in self defence. So we plead no guilty.

इस पर जज ने 26 को फांसी देने का हुक्म दिया, 3 व्यक्तियों को रिहा कर दिया। शेष को आजन्म देश निकाला दिया गया।

गवर्नर ओडायर तीसरे दिन फांसी की कोठरियों में गये। उन्होंने हमसे कहा—Mercy Petition लिखकर दो। सबने उत्तर दिया—

We are prepared to be hanged. We do not want to send any mercy petition to King.

भाई परमानन्द तथा अन्य 6 आदमी अमृतसर से निकाल दिए गए थे, इन्होंने Mercy Petition भेजी। कोठरियां पास-पास थी। एक कोठरी में एक ही व्यक्ति को रखा गया। प्रत्येक कोठरी के सामने सन्तरी का पहरा रहता था।

पं० मदन मोहन मालवीय, सर अलीइमा और रघुनाथ सहाय के प्रयत्नों से हमारा केस प्रीवी कौन्सिल में भेजा गया। प्रीवी कौन्सिल ने 13 Sep. 1915 को फैसला दिया कि सात को जो सशस्त्र पार्टी में पकड़े गये थे, जिन पर खून का अपराध प्रमाणित हुआ, उन्हें (करतारसिंह, सराबा, विष्णु गरौत, पिंगल, जगतसिंह, बक्सीस सिंह, सुरेन्द्रसिंह) फांसी का हुक्म हुआ।

ये लोग बहुत सवेरे स्नान कर फांसी की ओर चले। करतारसिंह गा रहे थे—

जो कोई पूछे कि कौन हो तुम,
कह दो कि बागी, यह नाम अपना।
जुल्म मिटाना हमारा पेशा, गदर का करना,
यह काम हमारा।
नवाज संध्या यही हमारी,
और पाठ पूजा भी यही है।
धर्म कर्म सब यही है भाइयो, यही खुदा और राम अपना।

आजन्म देश निकालों में जगतसिंह ने यह गाना गाया—

फक्र है भारत को ऐ करतार तू जाता है आज,
जगत और पिंगल को भी तू साथ ले जाता है आज।
हम तुम्हारे मिशन को पूरा करके बागियों,
कसम हर हिन्दी तुम्हारे खून की खाता है आज।

प्रातः सात बजे फांसी दे दी गई। उसी दिन रात को 8 बजे एक स्पेशल रेलगाड़ी सेन्ट्रल जेल के फाटक के पास लाई गई और काले पानी वालों को बैठाकर रात ही रात कलकत्ता ले गई। वहां उन्हें प्रेसीडेन्सी जेल में रखा गया। 3-4 दिन उसमें रहे, बाद में 'Maharaja Ship' (जोकि कैदियों को ही ले जाता लाता है) में बैठाकर काले पानी भेज दिए गए। इस जहाज में भी जेल की भांति कोठरियां बनी थीं। सबको बैठाकर जहाज अण्डमान चल दिया।

चौथे दिन वहां पहुंचे। खाड़ी में जहाज खड़ा किया। चीफ कमिश्नर जनरल मरे जहाज पर आए और कैदियों से मिले। सबको उतारकर सेलूर जेल ले जाया गया। जेल के दरवाजे पर सबको जोड़ी जोड़ी जमीन पर बैठा दिया गया। चीफ जेलर मि० बेटे, मोटा ताजा, अन्दर से आया और हमारे सामने भाषण दिया—

'तुम लोग साकार का दुश्मन है। अब यहां पर आकर कोई बदमाशी न करना। मैं यहां बीस वर्ष से जेलर हूं। यहां दूसरा कोई खुदा नहीं है। जेल का खुदा मैं हूं। अगर तुम कोई बदमाशी करोगे तो हम तुमको बिल्कुल ठीक कर देगा।'

परमानन्द पीछे बैठे थे, उन्हें यह सुनकर हंसी आ गई।

जेलर ने कहा—यह छोकरा, जो हंस रहा है, काम चोर होगा। बहुत बदमास है।

सबकी बेड़ियां उतारने का हुक्म हुआ। जेल में 9 ब्लाक थे, वहां छः-छः, सात-सात, आठ-आठ आदमी बांट-बांट कर अलग-अलग कोठरियों में बन्द कर दिए गए। दूसरे दिन इतवार था। तीसरे दिन जेलर फिर आया तो सब कोठरियों के अन्दर एक एक मोगरी, एक-एक लकड़ी दी गई। नारियल का छिलका एक-एक मन सबको कूटने के लिए दिया गया। उसी दिन परमानन्द जी से झगड़ा हुआ। गुलाम रसूल जमादार ने परमानन्द से कहा—'तुम छिलका क्यों नही कूटता ?'

'मैं तुम्हारा गुलाम नहीं हूं। मैं यहां छिलका कूटने नहीं आया हूं।'

वह तुरन्त गया और चीफ हेड वार्डर राजकुमारसिंह को लिवा लाया। सिंह बोला— 'समझ लो, काम करो नहीं तो पिटोगे और सजा मिलेगी।'

परमानन्द जी ने कहा—'मैं यहां काम करने नहीं आया हूं।'

इस पर उन्हें कोठरी से निकाल कर साहब के पास ले गये।

साहब ने परमानन्द को देखा, हंसा और कहा—यह तो वही कामचोर छोकरा है। मैंने पहले ही कह दिया था।

'तू काम क्यों नहीं करता ? बड़ा शैतान है तू।'

'मैं शैतान नहीं हूं, तू ही शैतान है।

यह उत्तर सुन वह परमानन्द जी को मारने अपनी कुर्सी से उठा और बोला—'साले, हम तुझे अभी ठीक करेगा।' परमानन्द जी ने उसकी कुर्सी में हाथ डालकर उसे गिरा दिया और उस पर चढ़ बैठे और घुटनों से 5-6 घूंसे मारे। हथकड़ी बेड़ी खुली थी। गर्दन पकड़कर घुटने मारे। परमानन्द जी की आंख के पास चोट लगी और खून निकलने लगा।

सिपाही परमानन्द जी को पकड़ कर मारने लगे। एक पटियाले का थम्मनसिंह डाकू था, उसने बीस साल जेल में काटे थे, अब उसके रिहा होने के दिन थे। गेट कीपर चाय पीने चल दिया था, चाबी थम्मनसिंह को दे गया था। सो थम्मनसिंह ने दोनों गेट बन्द कर दिए और ऊपर आ गया।

थम्मनसिंह ने उसी समय डाक्टर नायडू को आवाज लगाई और कहा—आप आइये, यहां मारपीट हो गई है।

डाक्टर को अन्दर बन्द करके थम्मनसिंह ने फिर गेट बंद कर दिया। डाक्टर आए और जेलर से कहा— What is the naunsance ? Why you have brought him here ? Why are you healing ? I have not examined them, those are New Comers. (बिना examine किए काम नहीं दिया जाता है।) They are still in Quror time, All right, I am just going to report about this management and misbehaviour to col. Murray.'

डा० नायडू परमानन्द जी का हाथ पकड़कर अस्पताल ले गए और उनकी मरहम पट्टी की। अस्पताल की कोठरी नं० 1 में बन्द कर चाबी अपने पास रख ली।

बैरे ने Murry को फोन किया तो एक मील दूर Rose Island वे आ गए। सब स्टाफ को लेकर परमानन्द जी के पास आए बोले—'तुम बड़ा शैतान है, तुमने साहब को मारा ? परमानन्द जी ने उत्तर दिया—'मेरा ताला खोलो तो तुमको बताऊं।'

'Very Ferocious' कहकर वे चले गए। उस दिन और कोई नहीं आया। अगले दिन C. C. DUGLAS और Col. Murray तथा स्टाफ के कुछ आदमी आए और सबसे पहले भाई परमानन्द जी से मिले। फिर सावरकर से मिले, फिर परमानन्द जी से मिले और कहा—Well Mr. Parmanand, you have been inforceing certris. You should not trouble Jail Authorities. You are an educated men.

परमानन्द ने उत्तर दिया—Pl. you warn these of ficials not to trouble

us. We have not begged for mercy. It these people will misbehave, I hope we will be complled to be hanged here.

यह सुनकर वे चले गए और आफिस में जाकर परमानन्द जी के जेल टिकट पर 20 कोड़े लगाने और सात दिन तक हथकड़ी लगाकर खड़े रहने और एक वर्ष की एकान्त काल कोठरी की सजा देकर चले गए।

अगले दिन सवेरे 200 अंग्रेज सैनिक जो वहां थे, हथियार बन्द होकर जेल के अन्दर आ गए। वेंत लगाने की टिकटिकी बीच में रखी गई। कर्नल मरे हाथ मे घड़ी लेकर खड़े हो गए। वहां पर एक अफ्रीकी कैदी काला भूत सिद्दी को बुलाया। उसे बेंत मारने का पारिश्रमिक 1 सेर दूध, आधा सेर गोश्त मिलता था। परमानन्द जी को कोठरी से बाहर निकाल लाए। सैनिकों ने उन्हें पकड़कर टिकटिकी में बांध दिया। कर्नल मरे ने अपने मुंह से एक एक मिनट पर बोलकर एक एक बेंत मरवाए। 20 बेत 20 मिनट में। वेंत एक गज लम्बा होता था और पानी मे भीगा रहता था। वेंत इतनी जोर से मारे जाते थे कि कैदी दो महीने में ठीक होते थे, जबकि दूसरी मार 15 दिन में ठीक होती थी। वेंत लग चुकने पर परमानन्द जी ने मरे से कहा—Don't forget these thugs, and I will see you.

इसके बाद सारी जेल में struggle आरम्भ हो गया। परमानन्द जी के 80 साथियों ने काम और खाना-पीना छोड़ दिया। यह struggle सात बरस तक जारी रही। उसमे पृथ्वीसिंह (5 महीनों तक), सोहनसिंह जसवन्तसिंह, केशरसिंह, रुद्रसिंह ने तीन तीन महीने हड़ताल रखी। सरकार ने इन्हें बड़ी कठिनाई से मनाया। आशुतोष लहरी M. A. को 15 बेंत की सजा दी गई। हड़ताल तीन तीन, चार चार महीने तक चलती रही।

रामरखा का जनेऊ छीन लिया गया, इस पर उसने भूख हड़ताल कर दी। भूख हड़ताल से उनकी मृत्यु हो गई। मंगलवार को सब कैदियों की परेड होती थी। एक वर्ष वाद परमानन्द जी ने इसी परेड पर अपनी टोपी छुपा ली।

मरे ने पूछा—Where is your cap?

I don't know.

You must put on your cap.

फिर कालर पकड़ कर एक तमाचा मार दिया। इस पर सभी कैदी statf पर टूट पड़े। खूब घूंसेबाजी हुई। इस पर 7 आदमियों को छः-छः महीने की बेड़ी और सात सात दिन की हथकड़ी और छः-छः महीने की एकान्त कालकोठरी की सजा लिख दी।

भोजन में प्रातः चावल और गुड़ मिलता था। दोपहर 11 बजे खाने में चावल, 4 रोटी, भाजी और दाल। सप्ताह में एक बार मछली और दही भी दिए जाते थे।

डाकू फकीरा, साथ में 4 चमार डाकू, 1 जाट, 1 मुसलमान और 1 पठान मिर्जा खान। पठान ने सेवाराम जाट को मूंछ पकड़ कर उठाया। जाट ने विरोध किया। बाद में वह बैरक में से राइफल चुराकर जेल तोड़ कर भाग गया। 5-6 दिन बाद मिर्जा खान

का सिर काट कर ले गया। बाद में पकड़ा गया और फांसी हुई।

परमानन्द जी 7 वर्ष अण्डमान में और 2½ वर्ष कन्नानूर जेल रहे। पूना जेल में (1921) गांधी जी, बापट, सावरकर भी थे। बाद में रत्नगिरि जेल में ढाई वर्ष रहे। साबरमती जेल में 7 वर्ष रहे। विमली गंज (विम्बरली गंज) में पगले रहते थे। वहां कैदी डेढ़ दो वर्ष ही जीवित रह पाता, क्योंकि वहां काली जोंकें बहुत थीं। यहां की लकड़ी सबसे उत्तम और कीमती होती है।

□□